देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
April 2026
Vol.-23, Issue-4
Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

Vol. 23 | **ISSUE-4, Part-3** | **(अप्रैल 2026)** | **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२
ISSN : 2395-7115
बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमाणिका – अप्रैल 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09–09
2.	चंबल क्षेत्र की डकैत समस्या के समाधान में डॉ. एस. एन. सुब्बाराव की भूमिका पर एक ऐतिहासिक अध्ययन	हिमांशु जैन	10–13
3.	इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति के वैचारिक आधार : एम. एन. रॉय (तर्कवादी) और दीनदयाल उपाध्याय (सांस्कृतिक) की अवधारणाओं का तुलनात्मक विश्लेषण	कमलेश्वर, प्रो. मधुरेन्द्र कुमार	14–22
4.	मुंशी नवल किशोर और प्रेस : लखनऊ के साहित्यिक इतिहास में एक योगदान	उमेश कुमार	23–38
5.	मुगल काल की शिक्षा प्रणाली, औपचारिक शिक्षा का आंरभिक काल	डॉ. अनीता रानी	39–45
6.	1857 के स्वाधीनता संग्राम में शीतल पाल : एक ऐतिहासिक अध्ययन	शुभांगी श्रीवास्तव, प्रो. बालकेश्वर	46–50
7.	**Deendayal Upadhayay's Vision of Social Harmony Reflected in India's Inclusive Development Schemes**	**Mohar Singh**	**51-67**
8.	**Unpacking India's Policy Shift on the Palestine Question**	**Harsha Kaushal, Dr. Mini Pathak Dogra**	**68-84**
9.	जनजातीय समाज में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता : छत्तीसगढ़ का विश्लेषण	डॉ. पायल पोद्दार	85–93
10.	जाति जनगणना की माँग : राजनीतिक अर्थशास्त्र का विश्लेषण **Caste Census Demand : An Analysis of Political Economy**	डॉ. प्रशांत कुमार	94–105
11.	बिहार के जन आंदोलनों में नारी शक्ति : संघर्ष एवं योगदान	श्रुति कुमारी, डॉ. प्रीति रंजन	106–111
12.	बंगाल में स्थायी बंदोबस्त और जमींदारों का उदय : एक ऐतिहासिक विश्लेषण	बबलू कुमार डॉ. नागेश्वर कुमार	112–117
13.	स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार के महिलाओं की भूमिका और बौद्धिक चेतना का विकास	नेहा राय, डॉ. संतोष कुमार अनल	118–123
14.	स्त्री विमर्श के संदर्भ में ललितांबिका अंर्तजनम के उपन्यास और जयश्री रॉय के उपन्यास तुलना	चिक्कू टी के	124–126
14.	श्रीरामचरितमानस का भारतीय परंपरा पर सांस्कृतिक प्रभाव	पूनम, प्रोफेसर संजीव कुमार	127–130

15.	**Evaluating the Role of Integral Humanism in the Working Mechanism of DAY-NRLM**	**Dr. Rakesh Singh, Hemant Sharma**	**131-135**
16.	कुमाऊँ में चंद वंश की प्रशासनिक व्यवस्था (13वीं-18वीं शताब्दी) : एक ऐतिहासिक विश्लेषण	किशोर कुमार	136-141
17.	आचार्य विनोबा भावे विचार में भक्तियोग का केन्द्रीय रहस्य - एक विवेचन	डॉ. संदीप ठाकरे, डॉ. भारत भूषण सिंह	142-153
18.	राजनीति का मौसम वैज्ञानिक : रामविलास पासवान	वीरू पासवान	154-159
19.	**Global Partnerships in Transition : Emerging Trends, Strategic Realignments, and the Future of International Cooperation**	**Dr. Ritesh Kumar Chaurasia**	**160-167**
20.	नशा मुक्ति केंद्र के मरीजों की मानसिक स्वास्थ्य पर राजयोग मेडिटेशन के द्वारा पढ़ने वाला सकारात्मक प्रभाव	यश पाल सिंह,	168-170
21.	विद्यार्थी जीवन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का प्रभाव एवं परिणाम	डॉ. शिवलाल मीना	171-174
22.	**Digital Pedagogy and Blended Learning : Transforming Education in the 21st Century**	**Dr. SWATI DIXIT**	**175-179**
23.	काव्यशास्त्रीय आलोचना का स्वरूप	डॉ. रेखा कुमारी त्रिपाठी	180-186
24.	सरकारी महाविद्यालयों के प्रति विद्यार्थियों का घटता रूझान : एक शोध-पत्र	डॉ. कविता शर्मा	187-190
25.	**Parental Stress, Mental Health, and Coping Strategies (A Review Paper)**	**Akanksha Tiwari, Snehlata Jaiswal, Minaxi Sharma**	**191-200**
27.	रूप सिंह चंदेल के उपन्यास 'नटसार' में सामाजिक मूल्य-विघटन	मनीषा पाठक, डॉ. वंदना चराटे	201-208
28.	हरियाणा में विवाह-विच्छेद का बदलता स्वरूप और कारण	डॉ. जोगिंदर	209-211
29.	अमृतलाल नागर के ग़दर के फूल में 1857 का विद्रोह	रोहित कुमार सिंह	212-216

संपादकीय...

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति और आधुनिक विज्ञान के अंतर्संबंधों पर केंद्रित बोहल शोध मंजूषा का यह अप्रैल 2026 अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। यह अंक विशेष रूप से उस विमर्श को आगे बढ़ाने का प्रयास है, जिसमें परंपरा और आधुनिकता का समन्वय केवल सैद्धांतिक न होकर व्यवहारिक और प्रासंगिक रूप में सामने आए।

आज का युग तीव्र परिवर्तन का युग है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विस्तार ने मानव जीवन को अभूतपूर्व सुविधाएँ प्रदान की हैं, परंतु इसके साथ ही अनेक जटिल प्रश्न भी उत्पन्न हुए हैं – मानवीय मूल्यों का क्षरण, सांस्कृतिक असंतुलन, और प्रकृति से बढ़ती दूरी। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परम्परा केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक दिशा–सूचक के रूप में हमारे सामने आती है। वेदों, उपनिषदों, आयुर्वेद, दर्शन और लोक परंपराओं में निहित ज्ञान आज भी जीवन के समग्र विकास की प्रेरणा देता है।

इस अंक का एक प्रमुख आकर्षण आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) विशेष विमर्श है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शिक्षा, चिकित्सा, साहित्य, और सामाजिक संरचनाओं में नई संभावनाओं के द्वार खोले हैं। किंतु यह भी आवश्यक है कि हम AI को केवल तकनीकी उपकरण न मानकर, नैतिकता और मानवीय संवेदनाओं के साथ जोड़कर देखें। भारतीय चिंतन में 'बुद्धि' और 'विवेक' का जो संतुलन बताया गया है, वही आज AI के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी भारतीय ज्ञान परम्परा का पुनर्पाठ अत्यंत आवश्यक है। नई शिक्षा नीति में जिस प्रकार मातृभाषा, बहुभाषिकता, और समग्र विकास पर बल दिया गया है, वह हमारे प्राचीन शिक्षा दर्शन की ही पुनर्प्रतिष्ठा है। शिक्षा केवल सूचना का संप्रेषण नहीं, बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व, चरित्र और चिंतन का निर्माण है–यह भाव इस अंक के अनेक शोध पत्रों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

साहित्य, समाज का दर्पण होते हुए भी, केवल प्रतिबिंब नहीं देता, बल्कि दिशा भी प्रदान करता है। समकालीन हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थ, स्त्री विमर्श, पर्यावरण चेतना, और डिजिटल युग की चुनौतियों पर जो गंभीर चिंतन हो रहा है, उसे इस अंक में स्थान दिया गया है। विशेष रूप से अंतर्जाल पर उभरते साहित्यकारों की रचनात्मकता और उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता इस अंक की विशिष्ट पहचान है।

विभिन्न पद्धति पर आधारित शोध लेख भी इस अंक की विशेषता हैं। वैश्विक स्तर पर स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता ने आयुर्वेद की प्रासंगिकता को पुनः स्थापित किया है। 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्' की अवधारणा आज के समय में और अधिक सार्थक प्रतीत होती है।

हम इस अवसर पर सभी विद्वान लेखकों, शोधार्थियों, समीक्षकों और पाठकों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से यह अंक संभव हो सका। आपका सतत मार्गदर्शन और रचनात्मक सहयोग ही इस शोध पत्रिका की वास्तविक शक्ति है।

अंततः, हमारा यह प्रयास है कि बोहल शोध मंजूषा केवल एक शोध पत्रिका न रहकर, एक वैचारिक मंच बने– जहाँ संवाद, विमर्श और नवाचार का सतत प्रवाह बना रहे। हम आशा करते हैं कि यह अंक पाठकों के ज्ञानवर्धन के साथ–साथ चिंतन को भी प्रेरित करेगा।

आपके सुझावों और प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी। **–संपादक**

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 10-13
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

चंबल क्षेत्र की डकैत समस्या के समाधान में डॉ. एस. एन. सुब्बाराव की भूमिका पर एक ऐतिहासिक अध्ययन

हिमांशु जैन
एम.ए. (इतिहास)
भोज मुक्त विश्विद्यालय।

शोध सारांश :–

चंबल घाटी भारतीय उपमहाद्वीप के उन विशिष्ट क्षेत्रों में से एक रही है, जहां भौगोलिक दुर्गमता, ऐतिहासिक अन्याय, सामाजिक–आर्थिक विषमताएं तथा प्रशासनिक उपेक्षा ने डकैत समस्या को दीर्घकाल तक जीवित रखा। औपनिवेशिक काल से लेकर स्वतंत्रता के बाद तक चंबल क्षेत्र में डकैतवाद केवल एक आपराधिक गतिविधि न रहकर सामाजिक प्रतिरोध, जातीय उत्पीड़न और ग्रामीण सत्ता संरचनाओं की अभिव्यक्ति बन गया था। स्वतंत्र भारत में भी यह समस्या राज्य की वैधानिक शक्ति के लिए एक गंभीर चुनौती बनी रही। वर्ष 1972 में चंबल क्षेत्र में घटित डकैतों के सामूहिक आत्मसमर्पण की घटना इस दीर्घकालिक समस्या के समाधान की दिशा में एक ऐतिहासिक और वैचारिक परिवर्तन का प्रतीक थी। यह घटना पारंपरिक दमनात्मक पुलिस नीति से भिन्न एक मानवीय नैतिक और संवाद आधारित प्रशासनिक दृष्टिकोण को रेखांकित करती है। इस आत्मसमर्पण अभियान में तत्कालीन प्रशासनिक अधिकारी व गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक डॉ. सलेम नंजुदेया सुब्बाराव तथा उनके सहयोगी जयप्रकाश नारायण जी की निर्णायक भूमिका रही। इन्होंने राज्य शक्ति के कठोर प्रयोग के स्थान पर विश्वास ,पुनर्वास और सामाजिक पुनरसंयोजन को नीति का आधार बनाया। डकैतों को सामाजिक मुख्यधारा में पुनः सम्मिलित करने की अवधारणा ने यह सिद्ध किया कि अपराध का इतिहास केवल दंड के माध्यम से नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और मानवीय दृष्टि से भी पुनरू लिखा जा सकता है कुख्यात डकैतों का आत्मसमर्पण इस तथ्य का प्रमाण बना की नैतिक अपील और सामाजिक स्वीकार्यता, हिंसा की संस्कृति को चुनौती दे सकती है। यह शोध पत्र 1972 के चंबल आत्मसमर्पण अभियान का विश्लेषण करता है तथा यह तर्क स्थापित करता है कि यह घटना भारतीय प्रशासनिक इतिहास में अहिंसक राज्य हस्तक्षेप, सामाजिक सुधार और नैतिक राजनीति का एक दुर्लभ उदाहरण है।

मुख्य शब्द :–

चंबल क्षेत्र, डकैत समस्या, आत्म समर्पण अभियान व पुनर्वास नीति 1972, एस एन सुब्बाराव का योगदान

प्रस्तावना :-

मध्य भारत में विस्तृत चंबल क्षेत्र जिसमें वर्तमान मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के सीमावर्ती भू–भाग सम्मिलित है– औपनिवेशिक काल से ही डकैत गतिविधियों का केंद्र रहा हैं। उस क्षेत्र की दुर्गम बनावट, प्रशासनिक पहुंच की कमी तथा सीमांत स्थिति ने इस क्षेत्र को लंबे समय तक राज्य नियंत्रण से आंशिक रूप से अलग–अलग बनाए रखा ऐतिहासिक दृष्टि से चंबल का डकैतवाद केवल कानून व्यवस्था की समस्या नहीं थी, बल्कि यह ग्रामीण समाज में व्याप्त संरचनात्मक असमानता, जातीय उत्पीड़न, भूमि विवादों और औपनिवेशिक तथा उत्तर औपनिवेशिक शासन की विफलताओं का परिणाम थी। अनेक इतिहासकारों और समाजशास्त्रियों ने डकैतों को सामाजिक डाकू श्रेणी में रखकर देखा है, जिनकी गतिविधियां राज्य विरोध और स्थानीय अन्याय के प्रतिरोध के रूप में उभरी इस दृष्टिकोण से चंबल का डकैतवाद अपराध और प्रतिरोध के बीच स्थित एक जटिल ऐतिहासिक परिघटना प्रतीत होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यह अपेक्षा की गई थी कि लोकतांत्रिक शासन, भूमि सुधार और सामाजिक न्याय की नीतियां इस समस्या का समाधान करेंगी, किंतु वास्तविकता इसके विपरीत रही। प्रशासनिक दमन, पुलिस कार्रवाई और सैन्यकृत अभियानों के बावजूद डकैतवाद समाप्त नहीं हो सका। इससे यह स्पष्ट हुआ की समस्या की जड़े केवल सुरक्षा व्यवस्था में नहीं ,बल्कि सामाजिक संरचना और राज्य समाज संबंधों में निहित थी।

1. चंबल की डकैत समस्या व प्रमुख डकैत :

- **इतिहास में कार्य** – कारण सिद्धांत समानांतर रूप से चलता है चंबल की संघर्षशील भूमि, ब्रिटिश सरकार की जमींदारी व्यवस्था ने दस्यु के लिए एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार की, जिसमें दुर्गम भौगोलिक संरचना, भूदान आंदोलन से जमींदारी व्यवस्था में व्याप्त असन्तोष और सामाजिक अपमान व न्याय में शिथिलता, प्रशासनिक उपेक्षा तथा आर्थिक पिछड़ापन व न्यून शैक्षणिक साक्षरता जैसे गंभीर कारणों से यह समस्या और गंभीर हो गई समय के साथ–साथ डकैत केवल अपराधी न रहकर सामाजिक असंतुष्ट के प्रतीक के रूप में देखे जाने लगे।

मोहर सिंह डकैत – (आतंक का दशक 1958–1972) – भिंड जिले के खूंखार डकैत जो जमीन विवाद में हत्या के बाद बागी बने। 1960 के दशक में उन्हें दुश्मन नंबर एक कहा जाता था उनके ऊपर लगभग 2 लाख का इनाम था तथा 300 से अधिक आपराधिक मामले दर्ज थे।

माधो सिंह 18वी राजपूताना राइफल्स के मेडिकल कोर में सेवाएं दी सेना में चोरी के आरोप में मामला दर्ज के बाद सेना को छोड़ दिया और बागी बने उनके गिरोह में 500 से अधिक बागी थे। सरकार ने उनके ऊपर 3 लाख का इनाम घोषित किया था।

1980 के दशक मै बागी मलखान सिंह (बेंडिंड किंग), फूलन देवी (बैंडिट क्वीन), पान सिंह तोमर, छविराम, निर्भय सिंह गुर्जर, तहसीलदार सिंह, पुतली बाई, वीर सिंह, गब्बर सिंह, जगमोहन गैंग, अमृतलाल किरार, हजरत रावत, हन्नी मुसलमान, जगजीवन राम, हरीबाबा, कलेक्टर सिंह, कुसमा नाइन, केदार गूजर, सीमा परिहार, शीला धोबी, जैसे प्रमुख डकैत हुए। 1960 से 1985 तक का कालखंड बागियों की दहशत का चरमोत्कर्ष का काल था।

2 1972 का आत्मसमर्पण अभियान व इसके प्रमुख प्रावधान :- सरकार द्वारा आजादी के उपरांत दस्यु

मुक्त चंबल क्षेत्र बनाना प्रमुख लक्ष्य था। जिसे त्मसमर्पण नीति द्वारा हरी झंडी दी गई। तथा सरकार द्वारा हृदय परिवर्तन के माध्यम से सैकड़ो डकैतों का आत्म समर्पण करवाया गया, जिसमें एस एन सुब्बाराव जी व जय प्रकाश नारायण जी की निर्णायक भूमिका रही।

14 अप्रैल, 1972 का ऐतिहासिक आत्मसमर्पण तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री प्रकाश चंद्र शेट्टी जी के समक्ष मुरैना के जोरा तहसील (धोरेरा गाँव) में स्थित गांधी सेवा आश्रम में 600 से अधिक बागियों ने औपचारिक रूप से आत्मसमर्पण किया जिसमें प्रमुख रूप से मोहर सिंह, माधो सिंह व उनके साथी थे। इसी क्रम में 1982 में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अर्जुन सिंह के समक्ष डकैत मलखान सिंह (डाकू राजा), फूलन देवी व उनके साथियों ने आत्मसमर्पण किया।

आत्मसमर्पण नीति के प्रमुख प्रावधान :

- **पुनर्वास तथा आर्थिक सहायता –** आत्म समर्पित बागियों को शिविरों में रखा जाएगा व उनके परिवार की सुरक्षा हेतु पृथक कॉलोनी वसाई गई (श्योपुर) व व्यवसाय प्रशिक्षण दिया जाएगा। तथा तत्काल अनुदान (घोषित ईनाम राशी) व मासिक वजिफा प्रदान किया जाएगा। इसके अलावा उत्तर प्रदेश के बटेश्वर और राजस्थान के तालाबशाही में भी बड़े पैमाने पर समर्पण समारोह आयोजित करवाए गए।
- **कानूनी प्रक्रिया –** किसी भी बागी को फांसी नहीं दी जाएगी तथा गंभीर मामलों जैसे (हत्या, अपहरण) को माफ नहीं किया जाएगा तथा फास्ट ट्रैक कोर्ट के माध्यम से सुलझाया जाएगा।

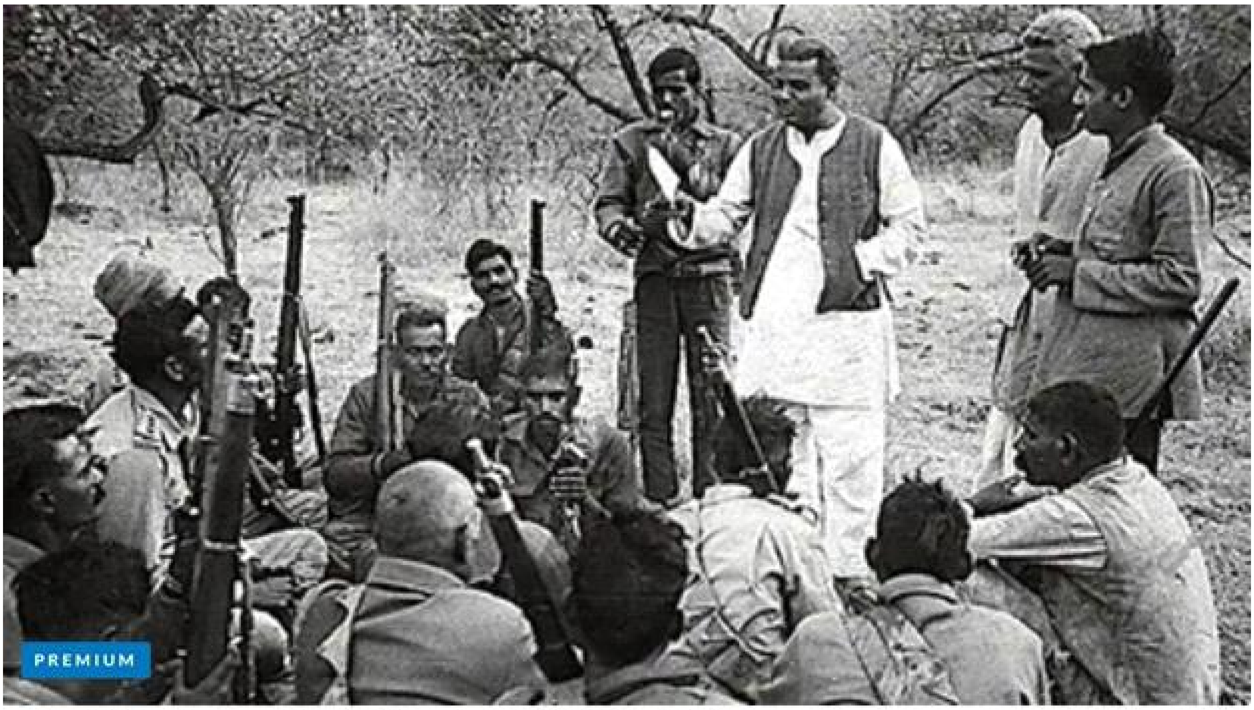

Over 200 dacoits surrendered in Dhorera in April 1972. (HT Archives)

- **हथियार के लिए प्रोत्साहन राशि –** बागियों द्वारा जमा किए गए हथियार के प्रकार के आधार पर मौद्रिक प्रोत्साहन दिया जायेगा।

3. डॉ. एस. एन सुब्बाराव का योगदान :

भाई जी के उपनाम से प्रख्यात डॉक्टर एस एन सुब्बाराव जी ने 13 वर्ष की आयु में भारत छोड़ो आंदोलन

में सक्रिय भूमिका निभाई व गांधीवादी विचारधारा का प्रचार प्रसार कर अहिंसावादी रास्ता अपनाया। मुरैना को कर्मस्थली बनाकर चंबल क्षेत्र की समस्या का अध्ययन किया जिसमें बागियों के आत्म समर्पण, कुपोषण समस्या, जनजातीय उत्थान को जागरूकता के माध्यम से समाधान किया।

1969 में गांधी शताब्दी के अवसर पर उन्होंने गांधीवादी संदेशों के प्रचार–प्रसार हेतु गांधी दर्शन ट्रेन का निर्देशन दिया तथा 1970 में मुरैना के जोरा में महात्मा गांधी सेवा आश्रम की स्थापना की जो आज भी खादी उत्पादन और ग्रामीण विकास का एक बड़ा केंद्र है।

युवाओं को राष्ट्रीय एकता और सांप्रदायिक सद्भाव से जोड़ने के लिए 1971 में नेशनल यूथ प्रोजेक्ट का संचालन किया जिसके द्वारा देश–विदेश में राष्ट्रीय एकता शिविर का आयोजन किया गया, वर्तमान में 64 से अधिक देशों में इसकी शाखाएं हैं। इसके साथ ही त्रिवेणी संगम घाट पर गांधी जी की तेहरवी का आयोजन शुरू कराया व जनजातियों व कुपोषित बच्चों के लिए कार्य किये, इसके साथ ही गांधी शांति प्रतिष्ठान के माध्यम से श्रम शिविरों का आयोजन किया जो युवाओं को डाकुओं के हृदय परिवर्तन अभियान से जोड़ता है।

डॉ. एस. एन. सुब्बाराव जी के अतुल्यनीय योगदान से प्रभावित होकर सरकार द्वारा राजीव गांधी सद्भावना पुरस्कार 2003, जमुनालाल बजाज पुरस्कार 2006, महात्मा गांधी पुरस्कार 2008, लाइफटाइम अचीवमेंट अवार्ड 2014 से सम्मानित किया गया इसके उपरांत इन्हें पदमश्री से भी सम्मानित किया गया, इनके द्वारा गांधी जी की जीवन गाथा, युवा जागो, देश की पुकार जैसी प्रमुख पुस्तक भी लिखी गई है जो आज भी जनमानस को समाजसेवा हेतु ओत–प्रोत करती हैं।

निष्कर्ष :

चंबल घाटी में संपन्न डकैतों का सामूहिक आत्म समर्पण भारतीय इतिहास में मील का पत्थर साबित हुई। यह राज्यशक्ति और सामाजिक संघर्ष के संबंधों को पुनर्परिभाषित करने वाली एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में उभरती है। दीर्घकालिक सामाजिक संघर्षों का समाधान केवल बल प्रयोग से नहीं, बल्कि, संरचनात्मक सुधार, नैतिक नेतृत्व और मानवीय प्रशासन के समन्वय से संभव है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि चंबल का आत्मसमर्पण अभियान एक अपवादात्मक उदाहरण प्रस्तुत करता है, जहां राज्य और समाज के बीच टूटे हुए विश्वास को आंशिक रूप से पुनर्स्थापित किया गया। यह न केवल अतीत की एक महत्वपूर्ण घटनाएं है, बल्कि समकालीन भारत में उग्रवाद, संगठित अपराध और सामाजिक असंतोष जैसी समस्याओं के समाधान हेतु एक ऐतिहासिक नैतिक और प्रशासनिक मॉडल के रूप में विचारणीय है। भले ही आज यह समाजसेवी हमारे बीच ना हो किंतु उनके अद्भुत विचार हृदय में सदैव वैचारिक प्रकाश पुंज बनकर समाज को जगमगाते रहेगें।

संदर्भ :

1. Ruhal, Randhir singh .chambal Ghati, Dacoit & police. Notion press 2021 New delhi (chapter 3, Chapter 5, Chapter 6)
2. Khan, Mohammad Zahir. Dacoity in chambal valley. New delhi: National, 1981
3. Ruhal, Randhir singh. Chambal ke Bagi va Atam Samarpan. Notion 2021 press New delhi
4. http:// snsfoundation.org 1976 ANAND GROUP
5. The Better India portal
6. Online sources
7. Mass surrender of chambal dacoits 15 April, 1972 https://timesofindia.Com

मेल आईडी –
jainhimanshu273@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 14-22

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति के वैचारिक आधार : एम. एन. रॉय (तर्कवादी) और दीनदयाल उपाध्याय (सांस्कृतिक) की अवधारणाओं का तुलनात्मक विश्लेषण

कमलेश्वर, शोधार्थी,
प्रो. मधुरेन्द्र कुमार, शोध निर्देशक,
राजनीति विज्ञान विभाग, डी. एस. बी. परिसर कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

सारांश :

इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति उन बौद्धिक परंपराओं के जटिल मेल से प्रभावित है, जो गहरी सांस्कृतिक चेतना को तार्किक वैश्विक भागीदारी के साथ जोड़ती हैं। यह अध्ययन भारत की विदेश नीति की बौद्धिक नींव की पड़ताल करने के लिए मानवेंद्र नाथ रॉय और दीनदयाल उपाध्याय के सिद्धांतों की तुलना करता है। रॉय की 'नव–मानवतावाद' विचारधारा, जो राष्ट्रीय सीमाओं के पार नैतिक सहयोग पर आधारित एक वैश्विक व्यवस्था को बढ़ावा देती है, तर्क, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अंतर्राष्ट्रीयता पर जोर देती है। दूसरी ओर, उपाध्याय की 'एकात्म मानववाद' विचारधारा, राष्ट्रीय निर्णयों 'विशेष रूप से विदेश नीति' को निर्धारित करने में नैतिक सिद्धांतों, सांस्कृतिक जड़ों और सभ्यतागत पहचान के महत्व पर जोर देती है। अध्ययन के अनुसार, ये देखने में अलग–अलग लगने वाले दृष्टिकोण आज की भारतीय विदेश नीति में एक साथ समाहित हैं। एक तरफ, भारत अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में सक्रिय रूप से शामिल होकर, बहुपक्षवाद का समर्थन करके और लोकतांत्रिक आदर्शों को आगे बढ़ाकर रॉय के तार्किक और वैश्विक दृष्टिकोण को दर्शाता है। हालाँकि, उपाध्याय के सांस्कृतिक दृष्टिकोण के अनुरूप, यह अपनी सभ्यतागत लोकाचार पर आधारित सांस्कृतिक कूटनीति, 'सॉफ्ट पावर' के प्रदर्शन और रणनीतिक स्वायत्तता को भी तेजी से प्राथमिकता दे रहा है। यह अध्ययन दर्शाता है कि भारत की विदेश नीति केवल यथार्थवादी या आदर्शवादी न होकर, तर्क और सांस्कृतिक पहचान का एक व्यावहारिक मेल है, इसकी पुष्टि रणनीतिक गठबंधनों, वैश्विक शासन में भागीदारी और विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रचार जैसे महत्वपूर्ण नीतिगत रुझानों की जाँच से होती है।

मुख्य शब्द : नव–मानवतावाद, एकात्म मानववाद, भारतीय विदेश नीति, सांस्कृतिक कूटनीति।

प्रस्तावना :–

इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति एक गतिशील और विकसित होते दृष्टिकोण को दर्शाती है, जिसे ऐतिहासिक विरासत और समकालीन वैश्विक वास्तविकताओं दोनों ने मिलकर आकार दिया है। तेजी से

बहुध्रुवीय होते विश्व में एक उभरती हुई शक्ति के रूप में, भारत ने स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दौर के आदर्शवादी 'गुट निरपेक्षता' के ढाँचे से आगे बढ़कर, अब एक अधिक व्यावहारिक, अपने हितों पर केंद्रित और 'बहु–संरेखित' रणनीति अपना ली है। हालाँकि, इस बदलाव का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि भारत ने अपनी बौद्धिक परंपराओं को पूरी तरह से त्याग दिया है। इसके विपरीत, भारत के बाहरी जुड़ाव आज भी एक समृद्ध राजनीतिक चिंतन–धारा से ही प्रेरित हैंय इसमें मानवेंद्र नाथ रॉय और दीनदयाल उपाध्याय जैसे विचारकों का योगदान भी शामिल है, जिनके विचार भारत की विदेश नीति की दिशा को समझने के लिए एक मजबूत वैचारिक आधार प्रदान करते हैं।

एम.एन. रॉय का 'नव–मानवतावाद' का दर्शन एक तर्कसंगत और सार्वभौमिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है, जो वैज्ञानिक सोच, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर जोर देता है। रॉय ने एक ऐसे विश्व–व्यवस्था की परिकल्पना की थी जो नैतिक सिद्धांतों और तर्कसंगत संवाद पर आधारित हो, और जो संकीर्ण राष्ट्रवाद तथा वैचारिक कट्टरता की सीमाओं से परे हो। उनके विचार भारत की विदेश नीति के समकालीन तत्वों से पूरी तरह मेल खाते हैं– जैसे कि बहुपक्षवाद, वैश्विक शासन–संस्थाओं को मजबूत करने और लोकतांत्रिक मूल्यों व मानवाधिकारों को बढ़ावा देने के प्रति भारत की प्रतिबद्धता। इस प्रकार, रॉय का चिंतन भारत के अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण के तर्कसंगत और विश्व–बंधुत्व वाले आयाम को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' का सिद्धांत एक ऐसा सांस्कृतिक रूप से जड़ित ढाँचा प्रस्तुत करता है, जो भारत की प्राचीन सभ्यतागत चेतना पर आधारित है और व्यक्ति, समाज तथा राज्य के बीच सामंजस्य स्थापित करने पर जोर देता है। उपाध्याय ने राष्ट्रीय नीतियों को आकार देने में सांस्कृतिक पहचान, नैतिक मूल्यों और आत्मनिर्भरता के महत्व पर विशेष बल दिया था। विदेश नीति के संदर्भ में, उनके विचारों की झलक भारत के बढ़ते हुए 'सांस्कृतिक कूटनीति' पर जोर देने, अपनी 'सॉफ्ट पावर' का प्रदर्शन करने और वैश्विक मंच पर अपनी अद्वितीय सभ्यतागत पहचान को मुखरता से प्रस्तुत करने की नीतियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।[1]

यह शोध–पत्र इन दोनों वैचारिक दृष्टिकोणों 'रॉय के तर्कसंगत सार्वभौमिकतावाद और उपाध्याय के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का एक तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, ताकि इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति को आकार देने में इनकी प्रासंगिकता को भली–भांति समझा जा सके। इस शोध–पत्र का मुख्य तर्क यह है कि समकालीन भारतीय कूटनीति किसी एक अकेले वैचारिक ढाँचे द्वारा निर्देशित नहीं है, बल्कि यह तर्कसंगतता और सांस्कृतिक चेतना के एक अद्भुत 'संश्लेषण' का प्रतिनिधित्व करती है। ऐसा संश्लेषण भारत को अपनी राष्ट्रीय पहचान को अक्षुण्ण रखते हुए भी वैश्विक स्तर पर सक्रिय रूप से जुड़ने में सक्षम बनाता है, जिसके परिणामस्वरूप, अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भारत स्वयं को एक 'जिम्मेदार वैश्विक कर्ता' के साथ–साथ एक विशिष्ट 'सभ्यतागत राष्ट्र' के रूप में भी स्थापित करने में सफल होता है।

एम. एन. रॉय के दार्शनिक आधार (तर्कवादी दृष्टिकोण) :

मानबेन्द्र नाथ रॉय की दार्शनिक नींव आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन में सबसे महत्वपूर्ण बौद्धिक योगदानों में से एक है। उनके विचार, विशेष रूप से कट्टरपंथी मानवतावाद के माध्यम से व्यक्त किए गए,

तर्कवाद, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, नैतिक सार्वभौमिकता और वैज्ञानिक जांच के प्रति गहरी प्रतिबद्धता में निहित हैं। रॉय की बौद्धिक यात्रा 'क्रांतिकारी राष्ट्रवाद से मार्क्सवाद तक और अंततः एक स्वतंत्र मानवतावादी दर्शन तक' एक ऐसा ढांचा विकसित करने के उनके निरंतर प्रयास को दर्शाती है जो सामाजिक और राजनीतिक जीवन के केंद्र में मानवीय गरिमा और तर्क को रखता है।

रॉय के दर्शन के मूल में तर्कवाद निहित है, जिसे उन्होंने मानवीय प्रगति का मौलिक आधार माना। उनका मानना था कि वास्तविकता को समझने और समाज को व्यवस्थित करने के लिए तर्क सबसे विश्वसनीय साधन है। रॉय ने अंधविश्वास, धार्मिक रूढ़िवादिता और हठधर्मी विचारधाराओं का कड़ा विरोध किया, यह तर्क देते हुए कि ये बौद्धिक विकास और सामाजिक उन्नति में बाधा डालते हैं। उनके लिए, तर्कवाद केवल एक दार्शनिक दृष्टिकोण नहीं था, बल्कि जीवन के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शक था, जो व्यक्तियों को सत्ता पर सवाल उठाने, स्वतंत्र रूप से सोचने और साक्ष्य तथा तर्क के आधार पर निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित करता था। वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर यह जोर व्यापक आधुनिकतावादी परियोजना के अनुरूप है और लोकतांत्रिक तथा धर्मनिरपेक्ष आदर्शों के साथ दृढ़ता से मेल खाता है।[1]

रॉय का सबसे उल्लेखनीय योगदान, कट्टरपंथी मानवतावाद, व्यक्ति को सभी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के केंद्र में रखता है। मार्क्सवादी सामूहिकता के विपरीत 'जो व्यक्ति के ऊपर वर्ग को प्राथमिकता देती है' या उदार पूंजीवाद के विपरीत 'जो अक्सर व्यक्तियों को केवल आर्थिक अभिकर्ताओं तक सीमित कर देता है' रॉय का मानवतावाद प्रत्येक व्यक्ति के आंतरिक मूल्य और स्वायत्तता पर जोर देता है। उन्होंने तर्क दिया कि सच्ची स्वतंत्रता केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं है, बल्कि व्यक्तियों की बिना किसी दबाव के सोचने, कार्य करने और अपनी क्षमता विकसित करने की क्षमता है। इस अर्थ में, स्वतंत्रता एक नैतिक और बौद्धिक स्थिति दोनों है। रॉय ने एक विकेंद्रीकृत और सहभागी लोकतांत्रिक प्रणाली की परिकल्पना की, जहाँ व्यक्ति शासन में सक्रिय रूप से संलग्न होते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि सत्ता जवाबदेह और उत्तरदायी बनी रहे।

रॉय के दर्शन का एक और महत्वपूर्ण पहलू राष्ट्रवाद की उनकी आलोचना है। यद्यपि उन्होंने शुरू में औपनिवेशिक–विरोधी संघर्ष में भाग लिया था, बाद में रॉय राष्ट्रवाद के संकीर्ण और आक्रामक रूपों के आलोचक बन गए। उनका मानना था कि राष्ट्रीय पहचान पर अत्यधिक जोर संघर्ष, असहिष्णुता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के दमन का कारण बन सकता है। इसके बजाय, रॉय ने एक विश्वबंधुत्व और अंतर्राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण की वकालत की, जहाँ संकीर्ण राष्ट्रीय चिंताओं के ऊपर संपूर्ण मानवता के हितों को प्राथमिकता दी जाती है। यह दृष्टिकोण राष्ट्र–राज्य को अस्वीकार नहीं करता, बल्कि उसे वैश्विक सहयोग और नैतिक जिम्मेदारी के एक व्यापक दायरे में रखने का प्रयास करता है।

इससे गहराई से जुड़ा हुआ रॉय का अंतर्राष्ट्रीयतावाद का सिद्धांत है, जो तर्कसंगत संवाद और साझा मानवीय मूल्यों पर आधारित एक लोकतांत्रिक और सहयोगी विश्व व्यवस्था की परिकल्पना करता है। उन्होंने ऐसे अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के विकास का समर्थन किया जो संघर्षों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने और वैश्विक कल्याण को बढ़ावा देने में सक्षम हों। रॉय का मानना था कि स्थायी शांति केवल सहयोग और आपसी समझ के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है, न कि सत्ता की राजनीति या सैन्य वर्चस्व से। उनके विचार वैश्विक शासन में कई समकालीन विकासों की पहले से ही झलक देते हैं, जैसे कि बहुपक्षीय संगठन, अंतर्राष्ट्रीय कानून और

सामूहिक सुरक्षा तंत्र।

रॉय के चिंतन में नैतिकता का केंद्रीय स्थान है। उन्होंने तर्क दिया कि राजनीति का मार्गदर्शन विचारधारा, परंपरा या सत्ता की चाहत के बजाय तर्क से व्युत्पन्न नैतिक सिद्धांतों द्वारा होना चाहिए। रॉय के लिए, नैतिक आचरण धर्म या सत्ता द्वारा थोपा नहीं जाता, बल्कि मानवीय आवश्यकताओं और संबंधों की तर्कसंगत समझ से उत्पन्न होता है। यह नैतिक आयाम व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और वैश्विक सहयोग के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को और मजबूत करता है। यह राजनीतिक प्रणालियों और नीतियों के मूल्यांकन के लिए एक मानक आधार भी प्रदान करता है।

पूंजीवाद और रूढ़िवादी मार्क्सवाद दोनों को रॉय द्वारा अस्वीकार किया जाना उनके दार्शनिक दृष्टिकोण की विशिष्टता को और भी उजागर करता है। उन्होंने पूंजीवाद की आलोचना इसलिए की क्योंकि उसमें आर्थिक असमानता पैदा करने और मानवीय श्रम का शोषण करने की प्रवृत्ति होती हैय वहीं उन्होंने मार्क्सवाद को इसलिए अस्वीकार किया क्योंकि इतिहास के प्रति उसका दृष्टिकोण नियतिवादी है और उसमें सत्तावादी शासनों को सही ठहराने की क्षमता निहित है। इन प्रणालियों के स्थान पर, रॉय ने सहयोग, स्वतंत्रता और तर्कसंगत नियोजन पर आधारित एक विकेंद्रीकृत सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था का प्रस्ताव रखा। उनका दृष्टिकोण केंद्रीकृत नियंत्रण के बजाय व्यक्तियों और समुदायों के सशक्तिकरण पर जोर देता है।

दीनदयाल उपाध्याय के दार्शनिक आधार (सांस्कृतिक दृष्टिकोण) :

दीनदयाल उपाध्याय की दार्शनिक नींव भारत की सभ्यतागत भावना में गहराई से निहित है, और इसे उनके एकात्म मानववाद के सिद्धांत के माध्यम से सबसे व्यापक रूप से व्यक्त किया गया है। बीसवीं सदी के मध्य में विकसित यह दर्शन, पूंजीवाद और समाजवाद जैसी पश्चिमी राजनीतिक विचारधाराओं की कथित कमियों के जवाब के रूप में उभरा। उपाध्याय ने विचार का एक ऐसा स्वदेशी ढांचा प्रस्तुत करने का प्रयास किया जो मानवीय अस्तित्व के भौतिक और आध्यात्मिक आयामों में सामंजस्य स्थापित करता है, और साथ ही व्यक्ति, समाज और राज्य की जैविक एकता पर भी जोर देता है। उनके विचार एक सांस्कृतिक रूप से आधारित और नैतिक रूप से संचालित दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं, जिसका इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति को समझने के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ है।

उपाध्याय के दर्शन के मूल में एकात्म मानववाद है, जो मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के एक समग्र रूप के तौर पर देखता है। पश्चिमी भौतिकवादी दृष्टिकोणों के विपरीत, जो अक्सर आर्थिक विकास या राजनीतिक सत्ता को प्राथमिकता देते हैं, एकात्म मानववाद विकास के एक समग्र मॉडल की वकालत करता है, जो मानवीय जीवन के सभी पहलुओं के संतुलित विकास को सुनिश्चित करता है। उपाध्याय का तर्क था कि किसी भी एक आयाम की उपेक्षा करने से असंतुलन और सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न होती है। इसलिए, राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियों को इस प्रकार से डिजाइन किया जाना चाहिए कि वे भौतिक कल्याण और आध्यात्मिक संतुष्टि, दोनों का पोषण करें। यह समग्र दृष्टिकोण उनके दर्शन को संकीर्णतावादी विचारधाराओं से अलग करता है, और शासन तथा नीति–निर्माण के लिए एक व्यापक ढांचा प्रदान करता है।[2]

उपाध्याय के चिंतन का एक केंद्रीय स्तंभ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है, जो राष्ट्र को केवल एक भौगोलिक या राजनीतिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि साझा परंपराओं, मूल्यों और ऐतिहासिक अनुभवों द्वारा निर्मित एक

जीवंत सांस्कृतिक जीव के रूप में परिभाषित करता है। उनका मानना था कि भारत की पहचान उसकी प्राचीन सभ्यता और सांस्कृतिक निरंतरता में निहित है, और यही उसकी विकास यात्रा का मार्गदर्शन करना चाहिए। पश्चिमी मॉडलों के विपरीत, जो राज्य की प्रकृति को एक संविदात्मक (अनुबंध–आधारित) इकाई के रूप में देखते हैं, उपाध्याय राष्ट्र को एक जैविक इकाई के रूप में देखते थे, जहाँ व्यक्ति एक साझा सांस्कृतिक चेतना के माध्यम से आपस में जुड़े होते हैं। यह दृष्टिकोण एक व्यापक सभ्यतागत ढांचे के भीतर विविधता को संरक्षित रखते हुए, एकता और सामूहिक उद्देश्य की भावना को प्रोत्साहित करता है।

उनके दर्शन की एक और प्रमुख अवधारणा धर्म है, जिसकी व्याख्या उन्होंने उस नैतिक और आचार–संबंधी सिद्धांत के रूप में की है जो सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखता है। उपाध्याय के चिंतन में, धर्म धार्मिक सीमाओं से परे है, और यह एक ऐसे सार्वभौमिक आचार संहिता के रूप में कार्य करता है जो व्यक्तिगत और सामूहिक व्यवहार को नियंत्रित करता है। यह कर्तव्यों, जिम्मेदारियों और सदाचार पर जोर देता है, और यह सुनिश्चित करता है कि सत्ता का प्रयोग न्यायसंगत और नैतिक तरीके से किया जाए। राजनीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में, 'धर्म' का अर्थ है कि राष्ट्रों को जिम्मेदारी से काम करना चाहिए, न्याय को बनाए रखना चाहिए और प्रभुत्व जमाने के बजाय सद्भाव की तलाश करनी चाहिए। यह नैतिक दृष्टिकोण विदेश नीति के निर्णयों के लिए एक नैतिक आधार प्रदान करता है और उपाध्याय के दृष्टिकोण को पूरी तरह से शक्ति–संचालित या स्वार्थ–आधारित ढाँचों से अलग करता है।

उपाध्याय ने स्वदेशी या आत्मनिर्भरता के सिद्धांत की भी जोरदार वकालत की, जो स्वदेशी विकास और आर्थिक स्वतंत्रता के महत्व पर जोर देता है। उन्होंने तर्क दिया कि पश्चिमी आर्थिक मॉडलों की आँख बंद करके नकल करने से भारत का सांस्कृतिक और सामाजिक ताना–बाना कमजोर हो जाएगा। इसके बजाय, उन्होंने एक विकेंद्रीकृत आर्थिक प्रणाली का प्रस्ताव रखा जो स्थानीय संसाधनों, लघु उद्योगों और समुदाय–आधारित विकास को प्राथमिकता देती है। आत्मनिर्भरता पर इस जोर का उन नीतियों में समकालीन महत्व है जिनका उद्देश्य बाहरी निर्भरता को कम करना और घरेलू क्षमताओं को मजबूत करना है। विदेश नीति के संदर्भ में, इसका अर्थ है रणनीतिक स्वायत्तता को प्राथमिकता देना, जहाँ भारत अपनी संप्रभुता से समझौता किए बिना अपनी शर्तों पर वैश्विक प्रणाली के साथ जुड़ता है।

व्यक्ति और समाज के बीच सद्भाव की अवधारणा उपाध्याय के दर्शन की एक और विशिष्ट विशेषता है। उन्होंने अत्यधिक व्यक्तिवाद 'जो सामाजिक विखंडन का कारण बन सकता है' और कठोर समष्टिवाद जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को दबा देता है – दोनों को अस्वीकार कर दिया। इसके बजाय, उन्होंने एक संतुलित दृष्टिकोण का प्रस्ताव रखा जहाँ व्यक्ति और समाज को परस्पर एक–दूसरे को मजबूत करने वाले के रूप में देखा जाता है। उनके विचार में, समाज व्यक्तियों का केवल एक यांत्रिक समूह नहीं है, बल्कि अपनी पहचान और उद्देश्य वाला एक जैविक संपूर्ण है। यह दृष्टिकोण ऐसी नीतियों को प्रोत्साहित करता है जो व्यक्तिगत गरिमा का सम्मान करते हुए सामाजिक एकता, सहयोग और सामूहिक कल्याण को बढ़ावा देती हैं।

उपाध्याय का दार्शनिक ढाँचा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक भी फैला हुआ है, जहाँ यह सांस्कृतिक कूटनीति और सभ्यतागत जुड़ाव के महत्व पर जोर देता है। उनका मानना था कि भारत को वैश्विक संवादों में अपनी सांस्कृतिक विरासत और मूल्यों को शक्ति के स्रोत के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। पूरी तरह से भौतिकवादी या

सत्ता–केंद्रित दृष्टिकोण अपनाने के बजाय, इस दृष्टिकोण से, भारत की विदेश नीति को अपनी अनूठी पहचान को दर्शाना चाहिए और वैश्विक सद्भाव में योगदान देना चाहिए। यह दृष्टिकोण 'सॉफ्ट पावर' (नरम शक्ति) के बढ़ते उपयोग में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जैसे कि अंतर्राष्ट्रीय जुड़ाव के साधनों के रूप में योग, आयुर्वेद और भारतीय परंपराओं को बढ़ावा देना।

उपाध्याय के विचारों में व्यावहारिक यथार्थवाद का एक तत्व भी शामिल है, जो बदलते वैश्विक हालात के अनुसार ढलने की आवश्यकता को पहचानता है, साथ ही मूल मूल्यों में भी दृढ़ रहता है। उन्होंने अलगाववाद की वकालत नहीं की, बल्कि दुनिया के साथ एक संतुलित जुड़ाव की बात की, जो राष्ट्रीय हितों की रक्षा करते हुए सहयोग को भी बढ़ावा देता है। आदर्शवाद और व्यावहारिकता के बीच यह संतुलन उनके दर्शन को समकालीन वैश्विक संदर्भ में विशेष रूप से प्रासंगिक बनाता है, जहाँ राष्ट्रों को अपनी सांस्कृतिक पहचान खोए बिना जटिल भू–राजनीतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

तुलनात्मक विश्लेषण : रॉय बनाम उपाध्याय

आयाम	एम.एन. रॉय (तर्कवादी)	दीनदयाल उपाध्याय (सांस्कृतिक)
मूल विचार	नव–मानवतावाद	एकात्म मानववाद
दृष्टिकोण	तर्कसंगत, वैज्ञानिक, सार्वभौमिक	सांस्कृतिक, नैतिक, सभ्यतागत
राष्ट्र–दृष्टिकोण	वैश्विक मानवता के अधीन	सांस्कृतिक इकाई के रूप में केंद्रीय
विदेश नीति	अंतर्राष्ट्रीयतावाद, बहुपक्षवाद	सांस्कृतिक कूटनीति, आत्मनिर्भरता
आर्थिक दृष्टिकोण	उदार–मानवतावादी	स्वदेशी, विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था
दर्शन	धर्मनिरपेक्ष, तर्कसंगत	नैतिक–आध्यात्मिक (धर्म–आधारित)

संश्लेषण

रॉय – वैश्विक जुड़ाव, तार्किक सहयोग।

उपाध्याय – सांस्कृतिक पहचान, सभ्यतागत आत्मविश्वास।

21वीं सदी की भारतीय विदेश नीति पर वैचारिक प्रभाव :

21वीं सदी में भारत की विदेश नीति विविध वैचारिक परंपराओं का एक सूक्ष्म मिश्रण दर्शाती है, विशेष रूप से मानवेंद्र नाथ रॉय के तर्कसंगत मानवतावाद और दीनदयाल उपाध्याय के सांस्कृतिक दर्शन का। किसी एक सिद्धांत पर सख्ती से टिके रहने के बजाय, भारत ने एक व्यावहारिक और बहुआयामी दृष्टिकोण विकसित किया है, जो तर्कसंगत वैश्विक जुड़ाव को सांस्कृतिक पहचान और सभ्यतागत चेतना की गहरी भावना के साथ जोड़ता है।

सबसे महत्वपूर्ण वैचारिक प्रभावों में से एक भारत की रणनीतिक स्वायत्तता के प्रति उसकी प्रतिबद्धता में दिखाई देता है, जो तर्कसंगत निर्णय लेने और राष्ट्रीय आत्म–दृढ़ता के बीच संतुलन को दर्शाता है। तर्क और स्वतंत्र निर्णय पर रॉय के जोर से प्रेरणा लेते हुए, भारत किसी एक शक्ति गुट के साथ जुड़ने से बचता है, जबकि कई वैश्विक पक्षों के साथ लचीले ढंग से जुड़ा रहता है। साथ ही, उपाध्याय का आत्मनिर्भरता पर जोर इस

स्वायत्तता को और मजबूत करता है, क्योंकि यह ऐसी नीतियों को बढ़ावा देता है जो राष्ट्रीय हितों की रक्षा करती हैं और बाहरी निर्भरता को कम करती हैं। यह दोहरा प्रभाव भारत की BRICS, G20 और QUAD जैसे विविध समूहों में भागीदारी में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जबकि वह वैश्विक मुद्दों पर अपना स्वतंत्र रुख बनाए रखता है।[3]

एक और प्रमुख आयाम बहुपक्षवाद और वैश्विक शासन में भारत की सक्रिय भूमिका है, जो रॉय के अंतर्राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण के साथ गहराई से मेल खाता है। भारत एक नियम–आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की वकालत करता है, वैश्विक संस्थानों में सुधार का समर्थन करता है, और जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद और सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसी वैश्विक चुनौतियों से निपटने में योगदान देता है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में उसकी भागीदारी सहयोग, संवाद और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के प्रति उसकी प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करती है– ये ऐसे सिद्धांत हैं जो तर्कसंगत मानवतावादी सोच में गहराई से निहित हैं।

सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर पर बढ़ता जोर उपाध्याय के सांस्कृतिक दृष्टिकोण के प्रभाव को दर्शाता है। भारत योग, आयुर्वेद और भारतीय परंपराओं के वैश्विक प्रचार जैसी पहलों के साथ–साथ भारतीय प्रवासियों के साथ जुड़ाव के माध्यम से अपनी सभ्यतागत विरासत को तेजी से प्रस्तुत कर रहा है। यह सांस्कृतिक पहुंच भारत की वैश्विक छवि को बढ़ाती है और लोगों के बीच गहरे जुड़ाव को बढ़ावा देती है, जिससे देश अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में एक अद्वितीय पहचान वाले सभ्यतागत राष्ट्र के रूप में स्थापित होता है।

भारत की आर्थिक कूटनीति भी इस वैचारिक मिश्रण को दर्शाती है। रॉय के तर्कसंगत दृष्टिकोण के अनुरूप वैश्वीकरण, व्यापारिक साझेदारी और तकनीकी सहयोग को अपनाते हुए, भारत साथ ही साथ आत्मनिर्भर भारत जैसी पहलों को भी बढ़ावा देता है, जो उपाध्याय के आत्मनिर्भरता और स्वदेशी विकास पर दिए गए जोर को दर्शाती हैं। यह दृष्टिकोण भारत को अपनी घरेलू प्राथमिकताओं की रक्षा करते हुए वैश्विक अर्थव्यवस्था में एकीकृत होने में सक्षम बनाता है।[4]

भारत की विदेश नीति व्यावहारिक यथार्थवाद का एक रूप प्रदर्शित करती है, जो नैतिक विचारों को रणनीतिक हितों के साथ जोड़ती है। जहाँ रॉय का दर्शन नैतिक और तर्कसंगत जुड़ाव को प्रोत्साहित करता है, वहीं उपाध्याय का चिंतन सांस्कृतिक अखंडता और राष्ट्रीय उद्देश्य को बनाए रखने के लिए एक ढाँचा प्रदान करता है। ये दोनों मिलकर एक ऐसी विदेश नीति को आकार देते हैं जो न तो पूरी तरह से आदर्शवादी है और न ही पूरी तरह से यथार्थवादी, बल्कि समकालीन वैश्विक जटिलताओं के अनुरूप एक संतुलित और अनुकूलनीय रणनीति है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन :

इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति के वैचारिक आधारों का, मानवेन्द्र नाथ रॉय और दीनदयाल उपाध्याय के नजरिए से किया गया एक गहन मूल्यांकन, तर्कसंगत सार्वभौमिकता को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के साथ जोड़ने की खूबियों और सीमाओं, दोनों को उजागर करता है। रॉय का 'रेडिकल ह्यूमनिज्म' (मूलगामी मानवतावाद) का दर्शन एक ऐसा मजबूत ढाँचा प्रस्तुत करता है जो तर्क, नैतिक सार्वभौमिकता और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर आधारित है, यह ढाँचा भारत की बहुपक्षीय संस्थाओं में भागीदारी और लोकतांत्रिक मूल्यों तथा वैश्विक शासन की वकालत के साथ भली–भांति मेल खाता है। हालाँकि, राष्ट्रवाद पर उनकी आलोचना और विश्वबंधुत्व

पर उनका जोर, आज की ऐसी दुनिया में जहाँ अभी भी सत्ता की राजनीति, रणनीतिक प्रतिस्पर्धा और राष्ट्रीय हित हावी हैं, कुछ हद तक आदर्शवादी लग सकता है, जिससे, अत्यधिक दाँव वाली भू–राजनीतिक स्थितियों में इसकी व्यावहारिक उपयोगिता सीमित हो सकती है। दूसरी ओर, उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' एक ऐसा दृष्टिकोण प्रदान करता है जो सांस्कृतिक रूप से जड़ित और नैतिक रूप से सुदृढ़ हैय यह राष्ट्रीय पहचान, आत्मनिर्भरता और सभ्यतागत आत्मविश्वास को मजबूत करता है जो रणनीतिक स्वायत्तता और एक विशिष्ट वैश्विक आवाज बनाए रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। फिर भी, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर अत्यधिक जोर देने से वैचारिक जड़ता, अलगाववादी प्रवृत्तियाँ, या वैश्विक मानदंडों के प्रति विरोध का जोखिम बना रहता है, यदि इसे सावधानीपूर्वक संतुलित न किया जाए। समकालीन भारतीय विदेश नीति में इन दोनों दृष्टिकोणों के मेल ने एक व्यावहारिक और लचीला नजरिया संभव बनाया है, जो वैश्विक जुड़ाव को सांस्कृतिक अस्मिता के साथ जोड़ता है, लेकिन साथ ही, यह सार्वभौमिक मूल्यों और विशिष्ट पहचानों के बीच अंतर्निहित तनाव भी पैदा करता है। उदाहरण के लिए, जहाँ एक ओर भारत अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकतांत्रिक आदर्शों को बढ़ावा देता है, वहीं दूसरी ओर वह अपने रणनीतिक निर्णयों में राष्ट्रीय हितों और संप्रभुता को प्राथमिकता देता है जो किसी पूर्णतः सुसंगत वैचारिक ढाँचे के बजाय, एक अत्यंत नाजुक संतुलन–साधन को दर्शाता है। इन विचारधाराओं का चयनात्मक अनुप्रयोग 'कुछ संदर्भों में बहुपक्षवाद को अपनाना और अन्य संदर्भों में यथार्थवादी रणनीतियों को अपनाना' नीति–निर्माण की अनुकूलनशील, किंतु कभी–कभी असंगत प्रकृति को उजागर करता है। तथापि, इस मिश्रित प्रकृति को एक शक्ति के रूप में भी देखा जा सकता है, जो भारत को एक जटिल और तेजी से बदलते वैश्विक परिवेश में लचीलेपन और दृढ़ता, दोनों के साथ आगे बढ़ने में सक्षम बनाती है।[5]

अंततः, यह गहन मूल्यांकन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि न तो रॉय का तर्कवाद और न ही उपाध्याय का सांस्कृतिक दृष्टिकोण, अपने आप में पर्याप्त है, बल्कि, इन दोनों का संयुक्त प्रभाव ही भारत की विदेश नीति के लिए एक सूक्ष्म और संदर्भ–संवेदनशील आधार प्रदान करता है। हालाँकि, उभरती हुई वैश्विक चुनौतियों का सामना करने और नैतिक प्रतिबद्धताओं तथा रणनीतिक अनिवार्यताओं के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए, इसमें निरंतर समायोजन की आवश्यकता बनी रहती है।

निष्कर्ष :

इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति विविध वैचारिक परंपराओं का एक गतिशील मेल दिखाती है, खासकर मानवेंद्र नाथ रॉय के तर्कसंगत मानवतावाद और दीनदयाल उपाध्याय के सांस्कृतिक दर्शन का। रॉय का तर्क, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, नैतिक सार्वभौमिकता और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर जोर भारत के वैश्विक संस्थानों, बहुपक्षवाद और लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ जुड़ाव की नींव रखता है, वहीं उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' का सिद्धांत राष्ट्रीय नीतियों को आकार देने में सांस्कृतिक पहचान, नैतिक व्यवस्था और आत्मनिर्भरता के महत्व को उजागर करता है। ये दोनों दृष्टिकोण मिलकर एक संतुलित ढांचा तैयार करते हैं, जो भारत को वैश्विक व्यवस्था में सक्रिय रूप से शामिल रहते हुए भी रणनीतिक स्वायत्तता बनाए रखने में सक्षम बनाता है। यह मेल भारत की व्यावहारिक कूटनीति को सांस्कृतिक जुड़ाव के साथ जोड़ने की क्षमता में साफ दिखता है, जिससे राष्ट्रीय हित व्यापक वैश्विक जिम्मेदारियों के साथ तालमेल बिठा पाते हैं। आज की तेजी से जटिल होती और बहुध्रुवीय दुनिया में, ऐसा दृष्टिकोण भारत को अपनी विशिष्ट सभ्यतागत पहचान बनाए रखने के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय शांति,

सहयोग और विकास में रचनात्मक योगदान देने का अवसर देता है, इस तरह भारत खुद को एक जिम्मेदार वैश्विक कर्ता और सांस्कृतिक रूप से अपनी जड़ों से जुड़ा राष्ट्र–राज्य, दोनों ही रूपों में स्थापित करता है।

सन्दर्भ सूची :

1. रॉय, एम. एन. (1952). तर्क, रोमांटिसिज्म और क्रांति।
2. सिंह, आर. के. (2025). एकात्म मानववाद : नए भारत की ओर।
3. पांडे, ए. (2025). एकात्म मानववाद और भारतीय विदेश नीति।
4. नेशनल हेराल्ड (2018). सांस्कृतिक कूटनीति और उपाध्याय।
5. इंडिया पॉलिसी फाउंडेशन. एकात्म मानववाद और शासन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
April 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 23-38
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मुंशी नवल किशोर और प्रेस : लखनऊ के साहित्यिक इतिहास में एक योगदान

उमेश कुमार (शोधार्थी)
पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय।

सारांश :

19 वीं शताब्दी के मध्य में अवध की राजधानी लखनऊ में साहित्यिक, बौद्धिक एवं समाज सुधारकों के इतिहास में मुंशी नवल किशोर का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनके द्वारा की गयी प्रेस की स्थापना ने लखनऊ को मुद्रण और प्रकाशन के क्षेत्र में विश्व पटल पर ला दिया और इसके अलावा लाहौर, कानपुर और इलाहाबाद में भी शाखाएं खोली। अपनी समृद्ध पारिवारिक पृष्ठभूमि के चलते मुंशी नवल किशोर ने इस प्रेस के माध्यम से हिंदी, उर्दू, फारसी, अरबी, मराठी, बंगाली और गुरुमुखी भाषाओँ में हजारों पुस्तकें प्रकाशित करके शिक्षा के साथ–साथ आपसी भाईचारे के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। मुंशी नवल किशोर ने धार्मिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक और शैक्षिक पुस्तकों को बड़े पैमाने पर आम जनता की पहुँच में लाने के उद्देश्य से कम कीमत पर उपलब्ध करवाया। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुंशी जी ने लखनऊ में एक पेपर मिल की स्थापना की और उसके लिए कच्चे माल और तैयार माल को आसानी से अपने गंतव्य तक पहुँचाने के लिए रेल विभाग की सहायता ली। उनके द्वारा किये गए सामाजिक योगदान के कारण सरकार द्वारा उनको कई पदवियों से विभूषित किया गया। मुंशी जी ने अपने सार्वजानिक कार्यों में आगरा कॉलेज, पुस्तकालयों, अस्पतालों, जुबली कॉलेज, कैनिंग कॉलेज और अलीगढ़ कॉलेज जैसे संस्थानों में आर्थिक रूप से सहायता दी। उन्होंने सरकारी कार्यो से सम्बन्धित पुस्तकों का उर्दू, बंगाली और हिंदी में अनुवाद करवाया। मुंशी जी के उत्तराधिकारियों की कम आयु में मृत्यु के कारण नवल किशोर एस्टेट को कोर्ट ऑफ वार्डस के अधीन कर दिया गया। वार्डस से संपत्ति वापस मिलने के बाद पारिवारिक मतभेदों और बंटवारे ने इस प्रेस के अस्तित्व को खत्म कर दिया। मुंशी जी के योगदान स्वरूप भारत सरकार ने उनके नाम पर डाक टिकट जारी किया।

सूचक शब्द : मुंशी नवल किशोर, नवल किशोर प्रेस, मुद्रण एवं प्रकाशन, तालुकदार, लखनऊ, अवध, शिक्षा, हिंदी और उर्दू साहित्य, औपनिवेशिक भारत।

परिचय :

मुंशी नवल किशोर के व्यक्तित्व और उनके प्रेस की जानकारी से पूर्व प्रिंटिंग प्रेस के इतिहास और उसके विकास के चरण को भी समझना जरुरी है। प्रिंटिंग प्रेस के अविष्कार से पूर्व घोषणाओ को शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा भोजपत्रों के माध्यम से दर्शाया जाता था, जबकि कागज के अविष्कार ने इन घोषणाओं को दूरगामी बना दिया। चीन में कागज के अविष्कार और नकारात्मक उभरी हुई सतहों से मुद्रण की कला विकसित हो चुकी थी, जिसने 11 वीं शताब्दी तक चल अक्षरों का रूप ले लिया था। इसके पश्चात 16 वीं शताब्दी में गुटेनबर्ग ने लकड़ी के ब्लॉकों के स्थान पर धातु के चल–अक्षरों और उपयुक्त स्याही का भी आविष्कार कर लिया, जिसने इस क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया।[1]

अगली कड़ी में शहरी शिक्षित वर्ग, अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक केन्द्र, सरकारों और चर्चों के माध्यम से प्रिंटिंग प्रेस स्थापित होने लगे, उदाहरण स्वरूप मिशनरियों ने गोवा में पहला प्रिंटिंग प्रेस लेकर आए। अगले कई वर्षो में भारत में कई प्रिंटिंग प्रेस स्थापित हुए, जो मुख्यतः धार्मिक पुस्तकों के मुद्रण तक ही सीमित रहा। यूरोप के आन्दोलनों ने प्रिंटिंग प्रेस को गति प्रदान की और साक्षरता का दायरा उन थोड़े से पादरियों और विद्वानों से आगे बढ़ गया, जो लेटिन भाषा जानते थे। 1813 से 1835 ई. के बीच तीन प्रमुख परिवर्तन हुए, पहला भारत के लिए अंग्रेजी शिक्षा प्रसार, दूसरा मिशनरियों का आगमन, और तीसरा स्वतंत्र व्यापारी समुदाय। भारत में प्रारम्भिक रूप से स्थापित तीनो प्रेसीडेंसियों में प्रिंटिंग प्रेस का व्यापक स्तर पर प्रयोग हुआ, जिसने भारत में नये माध्यम वर्ग को जन्म दिया और जिसने आगे चलकर यूरोपीय साहित्य और इतिहास के अध्ययन से वहां की मूल भावना समानता, स्वतन्त्रता और भागीदारी को आत्मसार कर लिया।[2]

अवध में निजी स्तर पर प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना का श्रेय अगर किसी को जाता है, तो वह निश्चित रूप से मुंशी नवल किशोर ही थे। मुंशी जी का जन्म 3 जनवरी 1836 ई. को मथुरा के रीढ़ा गाँव में अपने ननिहाल में हुआ था। मुंशी जी के पिता पं० जमुना प्रसाद एक जमींदार थे और उनके पितामह पं० बालमुकुन्द मुगल सम्राट शाह आलम के कोषाध्यक्ष थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई तथा उर्दू फारसी और अरबी का अध्ययन उन्होंने मकतब में प्राप्त किया, इसके अलावा अपनी उच्च शिक्षा आगरा कॉलेज से प्राप्त की।

बहुत ही कम आयु में मुंशी जी ने लाहौर में छापेखाने के मालिक मुंशी हरसुख राय के प्रभाव में मुद्रण कला सीखी और वहां के प्रबन्धक बन गये। 1857 की क्रान्ति के अंतिम चरण में मुंशी जी लखनऊ आ गये, क्योंकि इस दौरान उत्तर भारत के कई लेखकों, शायरों और कवियों ने लखनऊ को अपना गढ़ बना लिया था। इस समय तक उत्तर भारत में उर्दू भाषा का काफी प्रभाव था।[3]

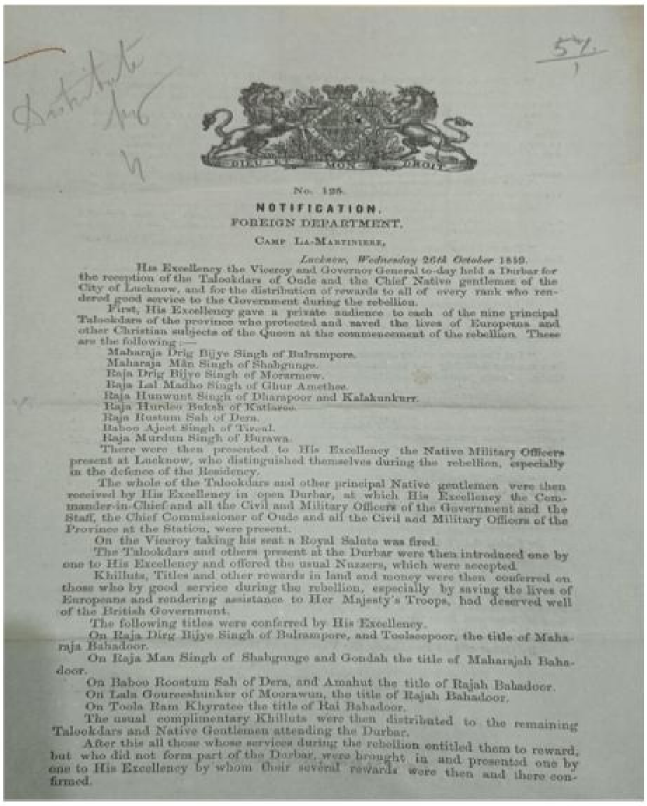

DIEU ET MON DROIT

No. 128.

NOTIFICATION.

FOREIGN DEPARTMENT.

CAMP LA-MARTINIERE,

Lucknow, Wednesday 26th October 1859.

His Excellency the Viceroy and Governor General to-day held a Durbar for the reception of the Talookdars of Oude and the Chief Native gentlemen of the City of Lucknow, and for the distribution of rewards to all of every rank who rendered good service to the Government during the rebellion.

First, His Excellency gave a private audience to each of the nine principal Talookdars of the province who protected and saved the lives of Europeans and other Christian subjects of the Queen at the commencement of the rebellion. These are the following :—

Maharaja Drig Bijye Singh of Bulrampore.
Maharaja Mân Singh of Shahgunge.
Raja Drig Bijye Singh of Morarmow.
Raja Lal Madho Singh of Ghur Amethee.
Raja Hunwunt Singh of Dharapoor and Kalakunkurr.
Raja Hurdeo Buksh of Katiaree.
Raja Rustum Sah of Dera.
Baboo Ajeet Singh of Tiroal.
Raja Murdun Singh of Burawa.

There were then presented to His Excellency the Native Military Officers present at Lucknow, who distinguished themselves during the rebellion, especially in the defence of the Residency.

The whole of the Talookdars and other principal Native gentlemen were then received by His Excellency in open Durbar, at which His Excellency the Commander-in-Chief and all the Civil and Military Officers of the Government and the Staff, the Chief Commissioner of Oude and all the Civil and Military Officers of the Province at the Station, were present.

On the Viceroy taking his seat a Royal Salute was fired.

The Talookdars and others present at the Durbar were then introduced one by one to His Excellency and offered the usual Nuzzers, which were accepted.

Khilluts, Titles and other rewards in land and money were then conferred on those who by good service during the rebellion, especially by saving the lives of Europeans and rendering assistance to Her Majesty's Troops, had deserved well of the British Government.

The following titles were conferred by His Excellency.

On Raja Dirg Bijye Singh of Bulrampore, and Toolseepoor, the title of Maharaja Bahadoor.

On Raja Man Singh of Shahgunge and Gondah the title of Maharajah Bahadoor.

On Baboo Roostum Sah of Dera, and Amahut the title of Rajah Bahadoor.

On Lala Goureeshunker of Moorawun, the title of Rajah Bahadoor.

On Toola Ram Khyratee the title of Rai Bahadoor.

The usual complimentary Khilluts were then distributed to the remaining Talookdars and Native Gentlemen attending the Durbar.

After this all those whose services during the rebellion entitled them to reward, but who did not form part of the Durbar, were brought in and presented one by one to His Excellency by whom their several rewards were then and there confirmed.

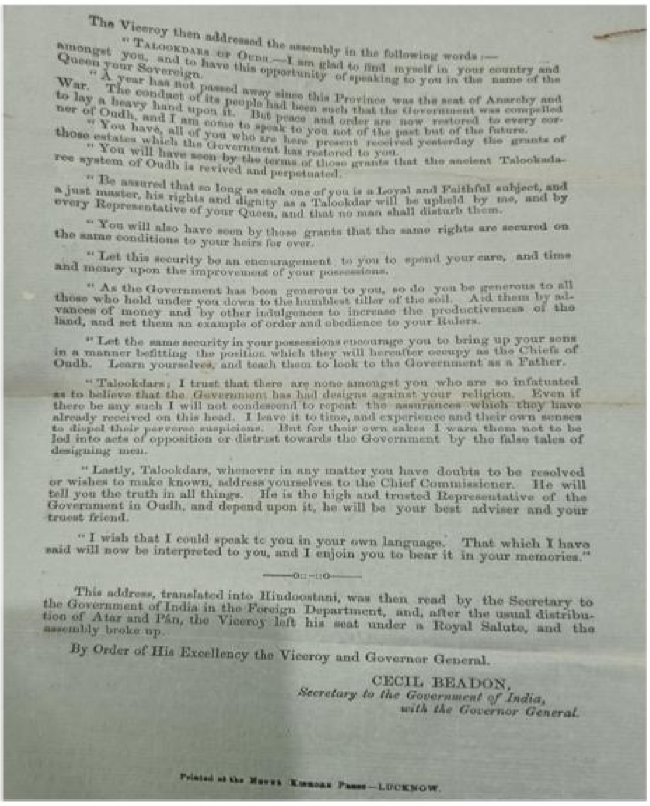

The Viceroy then addressed the assembly in the following words :—

"TALOOKDARS OF OUDH.—I am glad to find myself in your country and amongst you, and to have this opportunity of speaking to you in the name of the Queen your Sovereign.

"A year has not passed away since this Province was the seat of Anarchy and War. The conduct of its people had been such that the Government was compelled to lay a heavy hand upon it. But peace and order are now restored to every corner of Oudh, and I am come to speak to you not of the past but of the future.

"You have, all of you who are here present received yesterday the grants of those estates which the Government has restored to you.

"You will have seen by the terms of those grants that the ancient Talookadaree system of Oudh is revived and perpetuated.

"Be assured that so long as each one of you is a Loyal and Faithful subject, and a just master, his rights and dignity as a Talookdar will be upheld by me, and by every Representative of your Queen, and that no man shall disturb them.

"You will also have seen by those grants that the same rights are secured on the same conditions to your heirs for ever.

"Let this security be an encouragement to you to spend your care, and time and money upon the improvement of your possessions.

"As the Government has been generous to you, so do you be generous to all those who hold under you down to the humblest tiller of the soil. Aid them by advances of money and by other indulgences to increase the productiveness of the land, and set them an example of order and obedience to your Rulers.

"Let the same security in your possessions encourage you to bring up your sons in a manner befitting the position which they will hereafter occupy as the Chiefs of Oudh. Learn yourselves, and teach them to look to the Government as a Father.

"Talookdars; I trust that there are none amongst you who are so infatuated as to believe that the Government has had designs against your religion. Even if there be any such I will not condescend to repeat the assurances which they have already received on this head. I leave it to time, and experience and their own senses to dispel their perverse suspicions. But for their own sakes I warn them not to be led into acts of opposition or distrust towards the Government by the false tales of designing men.

"Lastly, Talookdars, whenever in any matter you have doubts to be resolved or wishes to make known, address yourselves to the Chief Commissioner. He will tell you the truth in all things. He is the high and trusted Representative of the Government in Oudh, and depend upon it, he will be your best adviser and your truest friend.

"I wish that I could speak to you in your own language. That which I have said will now be interpreted to you, and I enjoin you to bear it in your memories."

———o:–:o———

This address, translated into Hindoostani, was then read by the Secretary to the Government of India in the Foreign Department, and, after the usual distribution of Atar and Pân, the Viceroy left his seat under a Royal Salute, and the assembly broke up.

By Order of His Excellency the Viceroy and Governor General.

CECIL BEADON,
Secretary to the Government of India, with the Governor General.

Printed at the Nawal Kishore Press—LUCKNOW.

1858 ई. के बाद नवल किशोर प्रेस द्वारा छापे गये पहले सरकारी आदेश में से एक की प्रति [4]:-

मुंशी नवल किशोर ने अपने छापेखाने की शुरुआत लखनऊ के रकाबगंज से की, जिसका अंतिम स्थान हजरत गंज में जाकर समाप्त हुआ। अपने प्रारम्भिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुंशी जी ने देशी भाषा में 'अवध अखबार' नाम से एक समाचार–पत्र की स्थापना की, जिसकी प्रसिद्धि ने इस अखबार को उत्तर भारत के अलावा पश्चिम भारत, अफगानिस्तान और ईरान तक पहुँचा दिया। इस अखबार की प्रगति को देखकर मुंशी जी ने एक अंग्रेजी भाषा में साप्ताहिक 'अवध रिव्यू' का प्रकाशन भी शुरू कर दिया।[5]

इस समाचार पत्र के पश्चात मुंशी जी द्वारा देशी भाषाओँ में पुस्तकों का प्रकाशन किया, क्योंकि उस दौर में देशी भाषाओं में गिनी–चुनी पुस्तकें ही छापी जाती थी। हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी, गुरमुखी, जैसी कई भाषाओँ में लिखे गये कई प्राचीन ग्रन्थ तथा समृद्ध घरानों के सैकड़ों ग्रन्थ बिना छपे अपने अस्तित्व की तलाश रहे थे। 19 वी शताब्दी के मध्य में मुंशी जी ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने अपने विवेक से इस ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। मुंशी जीने सर्वप्रथम अपने क्षेत्र के पारंगत लोगो से सम्पर्क किया और सर्वप्रथम प्रकाशन के लिए धार्मिक ग्रन्थो और उनके अनुवाद को प्राथमिकता दी। मुंशी जी ने कुरान शरीफ जैसे धार्मिक ग्रन्थों को बहुत ही सुन्दर और साफ ढंग से छापा। नवल किशोर प्रेस द्वारा 'दास्तान अमीर हमजा', 'फसाने आजाद', 'दास्तान ईरज नामा, 'तूरज नामा' आदि ग्रन्थो को छापा गया, साथ ही इसी प्रेस ने 'गुरु ग्रन्थ साहिब' का प्रकाशन भी किया था।[6]

नवल किशोर प्रेस द्वारा संस्कृत और हिंदी के महान कवियों और उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थों जैसे—रामायण, महाभारत, सुखसागर, बिहारी—सतसई, जगत विनोद का प्रकाशन किया गया। मुंशी जी के कार्यकाल में 4,000 से अधिक पुस्तके प्रकाशित की गई, जिसके कारण मुंशी जी ने लगातार पुस्तकों की बढ़ती मांग और कागज की कमी को देखते हुए लखनऊ में 'अपर इंडिया कूपर पेपर मिल लिमिटेड' की स्थापना की।[7] शुरुआत में इस मिल में मुख्यतः बायब घास (Baib) से कागज का निर्माण किया जाता था, लेकिन नई तकनीकों के प्रयोग के पश्चात कागज की विभिन्न किस्मों जैस—व्हाइट प्रिंटिंग पेपर, सरकारी वॉटरमार्क कागज, अनब्लिच्ड, बदामी और ब्राउन (50% उत्पादन) का उत्पादन शुरू किया। इस मिल में शेयर धारकों ने आठ लाख रुपये निवेश किये, जो उनको 7 प्रतिशत लाभांश देती थी। इस दौरान कम्पनी का कागज उत्पादन प्रतिदिन लगभग 13 टन था, जो पूर्व में 30 टन प्रति सप्ताह होता था।[8] कम्पनी ने 1903 ई. में पूरे वर्ष 2,677 टन कागज का उत्पादन किया, जिसकी कीमत 7,35,100 रुपये थी।[9] यह कंपनी एक भारतीय उद्यम था, लेकिन इसमें चार यूरोपीय फोरमैन कार्यरत थे, जो यहाँ दो पालियों में काम करते थे।

इस मिल में प्रयुक्त मुख्य कच्चे माल की पूर्ति संयुक्त प्रान्त, पंजाब, राजपूताना, मध्य प्रान्त, नेपालगंज, खीरी तथा देहरादून के वनों से पूर्ति की जाती थी। कच्चे माल के संग्रह के लिए ठेकेदार नियुक्त किए जाते थे, जो माल को बादशाहनगर रेलवे स्टेशन से मिलों तक पहुँचाते थे।[10] इस मिल के व्यापार को बढ़ाने के लिए रेलवे के साथ अनुबन्ध किया गया, जिसके तहत बादशाहनगर रेलवे स्टेशन से साइडिंग[11] का निर्माण किया गया, जिसकी भूमि और निर्माण का खर्च मिल को ही उठाना था।[12] इस पेपर मिल की कार्यप्रणाली कागज की नियमित आपूर्ति और पुस्तकों के वितरण पर निर्भर थी, जिसके तहत 1936 ई. में पुनः समझौता हुआ कि यदि मिल छोटे माल की बुकिंग चाहेंगी, तो उन्हें स्टाफ का खर्च (लगभग 700 रुपये वार्षिक) देना होगा।[13]

मुंशी नवल किशोर द्वारा किये गये अद्वितीय कार्यों के कारण उन्हें 1875 ई. में लखनऊ की नगरपालिका का सदस्य मनोनीत किया गया, साथ ही सरकार द्वारा उन्हें कैसर—ए—हिन्द और ब्रिटिश सम्राट द्वारा उन्हें कम्पैनियन ऑफ दि मोस्ट एक्जाल्टेड आर्डर ऑफ दि इंडियन इम्पायर (C.S.I) की पदवी दी गई। मुंशी नवल किशोर स्वयं एक प्रभावशाली लेखक और विद्वान थे, जिन्हें उर्दू शायरियों का बहुत शौक था तथा कई पुस्तकों की भूमिकाओं में उन्होंने अपना योगदान दिया था।[14] 19 फरवरी 1895 ई. की तारीख को इस महान हस्ती ने इस दुनिया से विदाई ली तथा उनकी मृत्यु के बाद प्रागनारायण भार्गव इस प्रेस और मुंशी जी के उत्तराधिकारी बने।

मुंशी नवल किशोर का सामाजिक योगदान :

आगरा कॉलेज, जिसकी स्थापना का श्रेय पंडित गंगाधर शास्त्री को दिया जाता है, जिन्होंने 1796 ई. में पेशवा माधो राव द्वारा अलीगढ़ और मथुरा के कुछ गाँव शिक्षा एवं धार्मिक कार्यो हेतु अनुदान के रूप प्रदान किए थे। 1813 ई. में उनके निधन के बाद इन अनुदानों को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ। अनुदान का एक भाग उनके पुत्रों को, जबकि शेष भाग से आगरा में एक कॉलेज की स्थापना का निर्णय लिया गया।

1827 ई. में छह शिक्षकों और मुख्य भवन की सहायता से कॉलेज स्थापित किया गया। मुंशी नवल किशोर ने स्वयं इस कॉलेज में 1852 ई. में अध्ययन किया था।[15] 1857 की क्रान्ति के दौरान इस कॉलेज को भारी क्षति पहुँची और मूल्यवान पुस्तकालय, दुर्लभ पांडुलिपियाँ और जेम्स थॉमसन द्वारा भेंट की गई पुस्तकें भी नष्ट हो गयी। छात्रों की गिरती संख्या के बाद 1882 ई. में कॉलेज को बंद करने और उसकी निधि का एक भाग अलीगढ़ के मोहम्मडन कॉलेज को देने के प्रस्ताव के विरुद्ध व्यापक जन–आंदोलन हुआ। इस आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभाने वालों में बुलंदशहर के राजा लक्ष्मण सिंह, आगरा के मुंशी शिवनारायण और लखनऊ के मुंशी नवल किशोर शामिल थे, जिनके नेतृत्व में एक समिति गठित हुई। इस समिति ने कॉलेज के संरक्षण के लिए एक लाख रुपये से अधिक की निधि एकत्र की और जनसमर्थन के परिणामस्वरूप आगरा कॉलेज का अस्तित्व बना रहा।[16]

इस कॉलेज में बाहरी छात्रों के लिए छात्रवृत्ति भी शुरू की गयी, जिसमें रिपन (15रु.), लयाल (10रु.), भिंगा (5रु.) और मुंशी नवल किशोर (12रु.) छात्रवृत्ति नाम के अलावा कुल 16 छात्रवृत्तियां दी जाता थी।[17] इसके बाद ट्रस्टियों का प्रथम मंडल चुना गया, जिसमें सरकारी सदस्य के रूप में मंडलायुक्त, जिला कलेक्टर, लोक शिक्षा निदेशक तथा गैर–सरकारी सदस्यों में राजा लक्ष्मण सिंह बहादुर, मीर इमदाद अली खान और मुंशी नवल किशोर के साथ–साथ कुल 52 सदस्य मौजूद थे। [18]

1885 ई. में लेफ्टिनेंट गवर्नर और चीफ कमिश्नर सर अल्फ्रेड लयाल द्वारा सीतापुर से लखनऊ रेलवे लाइन के निर्माण के पूर्ण होने पर सीतापुर में एक समारोह आयोजित किया गया, जिसमें सीतापुर में एक सभागार और लाइब्रेरी के निर्माण की योजना तैयार की गई थी। इस लाइब्रेरी के लिए मुंशी नवल किशोर ने अत्यंत उदारता के साथ 2,000 से 3,000 रुपये मूल्य की देशी भाषाओँ की पुस्तकें भेंट करने की हामी व्यक्त की।[19]

4 अप्रैल 1888 ई. को लेफ्टिनेंट गवर्नर सर ऑकलैंड कॉल्विन ने महिलाओं के स्वास्थ सेवा के लिए बने डफरिन फण्ड की लखनऊ में आयोजित एक सभा में संबोधन करते हुए कहा कि, लखनऊ में बलरामपुर अस्पताल की सहायता से नर्सो और दाइयों को ट्रेनिंग देने के लिए एक स्कूल शुरू किया गया है। मुंशी नवल किशोर की दरियादिली (जो उनकी एक खास पहचान थी) की वजह से, इस स्कूल

के लिए बहुत अधिक मात्रा में धन एकत्र करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।[20] इसी अन्तराल में लखनऊ में मुंशी नवल किशोर, जो इसके संस्थापक सदस्य थे, उनके द्वारा एक प्रस्ताव लाया गया, जिसके अंतर्गत लखनऊ में एक एंग्लो–वर्नाक्युलर (अंग्रेजी–देशी भाषा) विद्यालय के निर्माण के लिए मुंशी नवल किशोर ने 15,000 रुपये की धनराशि ट्रस्ट के रूप में प्रदान की। यह विद्यालय 15 जून 1887 ई. को जुबिली हाई स्कूल, लखनऊ के नाम से स्थापित किया गया, जो इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया की जयंती (जुबिली) के सम्मान में किया गया था।[21]

वर्ष 1888 ई. में जहाँ प्रान्त में हर तरफ हिन्दू और मुसलमानों में कांग्रेस को लेकर काफी मतभेद उजागर हो रहे थे, इसके विपरीत यूनाइटेड पैट्रियॉटिक एसोसिएशन के प्रयासों से इन अस्थायी मतभेद को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और दोनों पक्षों के नेता सर सैय्यद अहमद खान और मुंशी नवल किशोर ने आपसी सौहार्द के साथ मिलकर कार्य किया। इस कड़ी में अवध के हिन्दू और मुसलमानों की ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ऑफ अवध की ओर से 22 नवम्बर 1888 ई. को लखनऊ में एक महत्वपूर्ण सभा आयोजित की गई।[22] कैसरबाग में आयोजित इस सभा में 50 से अधिक तालुकदार और चार सौ से अधिक किसानों (बराबर मात्रा में हिन्दू और मुस्लमान) की मौजूदगी में एसोसिएशन के उद्देश्य तय किये गए, साथ ही कांग्रेस विरोधी संगठन बनाने पर प्रस्ताव रखे गये। इस सभा में मुंशी नवल किशोर ने एक अन्य प्रस्ताव के तहत हिन्दू–मुसलमानों में एकता बनाये रखने के लिए के लिए विशेष समिति बनाने की बात रखी, जिससे उनमे आपसी विचार–विमर्श किया जा सके।[23]

मुंशी नवल किशोर प्रेस को प्राप्त सरकारी आदेश :

मुंशी नवल किशोर ने 11 जनवरी 1867 को कर्नल टॉड की "Annals & Antiquities of Rajasthan or the Central & Western Rajpoot States of India" के तीन खंडों का एक दुर्लभ संस्करण प्राप्त किया, जो 1829 ई० में लंदन में मुद्रित हुआ था। इस पुस्तक की प्रतियाँ अत्यंत सीमित और महंगी होने के कारण सहजता से उपलब्ध नहीं थी। मुंशी नवल किशोर ने इस पुस्तक को छह महीनों में मुद्रित करने का प्रस्ताव रखा और इसके लिए खरीदारों को अग्रिम रूप से भुगतान करने पर 100 रुपये, तथा प्रकाशित होने के बाद 125 रुपये कीमत तय की गई।[24] इसी बीच 1870 ई. में लेखा–पुस्तकों और बांड पत्रों की आपूर्ति को लेकर ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ऑफ अवध के साथ अनुबन्ध किया गया था, जिसकी अनुबंध की शर्तों और आपूर्ति में अंतर की स्थिति ने एक वाद को जन्म दिया। मुंशी नवल किशोर द्वारा 5,746 रुपये की वसूली के लिए वाद दायर किया गया, जिसमें निचली अदालत में न्याय न मिलने के बाद आयुक्त ने साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन कर मुंशी नवल किशोर के पक्ष में डिक्री कर दी।[25]

1903 ई. में किंग एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में दिल्ली में एक दरबार आयोजित किया गया था। इस आयोजन को लिखितबद्ध करने के लिए मुंशी नवल किशोर प्रेस को "दिल्ली दरबार के आधिकारिक इतिहास" के उर्दू अनुवाद के मुद्रण का कार्य सौंपा गया था। इस कार्य के दौरान कई चुनौतियां सामने आयी, जैसे नगर एवं उसके उपनगरों में ज्वर (बुखार) के अभूतपूर्व प्रकोप के कारण प्रेस के अनेक कर्मचारी बीमारी के कारण कार्य से अनुपस्थित रहे, लेकिन इस कार्य को आगे बढ़ाते हुए पुस्तकों की किश्तों में आपूर्ति की गयी। पहली किश्त में 125 प्रतियाँ सरकारी मुद्रणालय, कलकत्ता भेजी गयी।[26]

प्रारम्भ में 1,160 प्रतियाँ 3 रुपये 8 आने की दर से छापने का प्रस्ताव था, जिनकी संख्या बढ़कर 1,208 कर दी गई तथा इसमें चित्रों का व्यय भी जोड़ दिया गया था। साथ ही संभावित अतिरिक्त मांग को ध्यान में रखते हुए प्रेस ने 300 अतिरिक्त प्रतियाँ भी मुद्रित कर लीं। इन प्रतियों के सम्बन्ध में सरकार और प्रेस के बीच स्पष्ट व्यवस्था नहीं थी, लेकिन सरकार के विचार से इन प्रतियों को 5 रुपये की दर से बेचना उचित था।[27] अगली कड़ी में दिल्ली दरबार के आधिकारिक इतिहास के उर्दू अनुवाद की प्रतियाँ स्थानीय सरकारों और देशी रियासतों द्वारा खरीद की शिफारिश की गयी। नेपाल दरबार, मद्रास सरकार, बर्मा सरकार, मैसूर सरकार, सिक्किम, निजाम सरकार, राजपूताना, बलूचिस्तान, पूर्वी बंगाल और असम सरकार द्वारा अपनी आवश्यकतानुसार सरकार के समक्ष इन प्रतियों को उपलब्ध करने की मांग रखी।[28]

भारत के विदेश विभाग की ओर से मुंशी नवल किशोर प्रेस के तत्कालीन स्वामी राय बहादुर प्रागनारायण भार्गव को 22 जुलाई 1911 में "भारत में ब्रिटिश शासन के पिछले पचास वर्षों के दौरान भारतीय प्रशासन के कुछ परिणामों पर स्मरण–पत्र" का उर्दू, हिंदी, एवं बंगाली भाषा में अनुवाद की एक–एक हजार प्रतियों के मुद्रण का अधिकार प्राप्त हुआ। इसकी जाँच के लिए हरकोर्ट बटलर ने प्रेस का निरीक्षण किया और अपने विचार रखे कि," मैंने इस प्रेस में बहुत अच्छा कार्य देखा था, यह एक विधिक पत्र प्रकाशित करता था। मेरा विचार है कि हमें यह योजना नहीं छिननी चाहिए। मैं इसके पत्र की एक प्रति संयुक्त प्रान्त और पंजाब को भेजूँगा और उनसे पूछूँगा कि यदि अनुवाद प्रकाशित हो तो वे कितनी प्रतियाँ लेना चाहेंगे।[29] इस दिशा में देशी भाषाओं के अनुवाद के लिए ग्वालियर दरबार, पंजाब सरकार, बंगाल सरकार, हैदराबाद, राजपूताना, बलूचिस्तान, अजमेर, मारवाड़, उत्तर–पश्चिम सीमांत प्रान्त, बड़ौदा, नेपाल एवं कश्मीर की ओर से संयुक्त प्रान्त की सरकार से सम्पर्क किया गया।[30] इसी के साथ दिल्ली में आयोजित दरबार के अवसर पर विद्यालयों में मिठाइयों और पदकों के वितरण के अलावा, विभिन्न प्रान्तों के अधिकारी प्रत्येक बच्चे को *"तुजुक–ए–शाहंशाही"* (किंग एडवर्ड सप्तम का जीवन–वृत्त) नामक पुस्तक दी जाए, जिसे लखनऊ के नवल किशोर प्रेस में मुद्रित किया गया हो।[31]

भारत सरकार द्वारा सेन्ट्रल प्रोविन्सस और बरार में विद्यालयी शिक्षा के लिए पुस्तकों के निर्माण के लिए मुंशी नवल किशोर प्रेस से अनुबन्ध किया गया था, लेकिन मुख्य आयुक्त इस समझौते को समाप्त करना चाहते थे, क्योंकि उनका मत था कि जब तक इस प्रेस के हाथों में एकाधिकार रहेगा, तब तक वे उच्च कोटि की पाठ्य–पुस्तकें उपलब्ध कराने के अपने प्रयासों में बाधित रहेंगे। 22 अगस्त 1911 ई. को सेन्ट्रल प्रोविन्सस के लोक शिक्षा निदेशक द्वारा लिखे पत्र के अनुसार प्रेस के पास केवल उत्पादन और विक्रय का एकाधिकार था, जबकि न तो उनके पास कॉपीराइट सामग्री का कोई भंडार उपलब्ध था और न ही अनुभवी संपादकों का समूह। इसके विपरीत इंग्लैंड की श्रेष्ठ प्रकाशन फर्में जैसे मैकमिलन, नेल्सन, ब्लैकी, फ्रूड और लॉन्गमैन्स पहले ही आयुक्त के संपर्क में थी और अपनी क्षमता सिद्ध कर चुकी थी, जो निश्चित रूप से इस बात को औपनिवेशिक सोच का परिचायक सिद्ध कर रही थी।[32]

यह अनुबन्ध 1893 को व्यक्तिगत रूप से सरकार और मुंशी नवल किशोर के बीच हुआ था, जिसमें किसी फर्म, साझेदार या उत्तराधिकारी का कोई उल्लेख नहीं था। इस प्रकार सरकार ने तर्क दिया कि प्रेस को केवल पुस्तकों के प्रकाशन का अधिकार दिया गया था, और उनकी मृत्यु के बाद यह अनुबन्ध समाप्त करने का निर्णय लिया गया। चूँकि यह अनुबन्ध स्थायी अथवा हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता था, जिसके पश्चात यह अनुबन्ध 1 जुलाई 1913 ई. से समाप्त कर दिया गया।[33]

1 जुलाई 1914 ई. को संयुक्त प्रान्त सरकार के पत्र के माध्यम से लखनऊ स्थित नवल किशोर प्रेस के स्वामी को भारत सरकार के प्रकाशनों की बिक्री हेतु एजेंट के रूप में नियुक्त किया गया। इस समझौते की अवधि के दौरान, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का कार्य समय दर समय पर, बिना किसी शुल्क के, भारत सरकार द्वारा जारी किए गए नवीन प्रकाशनों की सूची एजेंट को उपलब्ध करना था और यह अनुबन्ध 3 माह की लिखित सूचना देकर समाप्त किया जा सकता था। इस अनुबन्ध में भारत सरकार की ओर से एल. सी. पोर्टर, नवल किशोर प्रेस की ओर से प्रागनारायण भार्गव और गवाह के रूप में प्रेस के प्रबन्धक मोहन लाल भार्गव ने हस्ताक्षर किये थे।[34] इस पत्र की प्रति भारत सरकार मुद्रणालय, (कलकत्ता) के अधीक्षक तथा संयुक्त प्रान्त को छोड़कर सभी स्थानीय सरकारों एवं प्रशासनों को सूचना हेतु प्रेषित की जानी चाहिए।[35]

मुंशी प्रागनारायण ने अपने कार्यकाल में कई सरकारी ठेके प्राप्त किए और बड़ी सूझ–बूझ से एस्टेट और प्रेस का प्रबंधन संभाला था। प्रागनारायण कई संस्थाओं जैसे– यूनाइटेड प्रोविन्सेस चौम्बर ऑफ कॉमर्स, ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ऑफ अवध, प्रांतीय विधान परिषद् के सदस्य थे। 1916 ई में इनकी मृत्यु होने के पश्चात उनके पुत्र बिशननारायण भार्गव अगले उत्तराधिकारी बने।

10 मार्च 1920 ई. को लेफ्टिनेंट गवर्नर सर हरकोर्ट बटलर ने नवल किशोर प्रेस की डायमंड जुबिली (60 वर्ष) वर्षगाठ के अवसर पर मुंशी बिशननारायण भार्गव की उपस्थिति में निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए कि, "मुझे आपके दादाजी, मुंशी नवल किशोर, को जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जो अत्यंत उद्यमी और जनहितैषी व्यक्ति थे। मुंशी नवल किशोर द्वारा स्थापित यह प्रेस अवध का पहला औद्योगिक उपक्रम था, जो सदैव अपने कार्य की गुणवत्ता और मात्रा के लिए प्रसिद्ध रहा। मुंशी नवल किशोर सदैव सरकार की सहायता के लिए तत्पर रहते थे और उन्होंने एक ऐसा समाचार–पत्र प्रारम्भ किया, जो हमेशा सरकार के इरादों को जनता के समक्ष रखता था। इसके बाद रायबहादुर मुंशी प्रागनारायण भार्गव, जो अत्यंत जनहितैषी थे और जिन्होंने मुंशी जी द्वारा स्थापित पेपर मिल्स के सामने घाट का निर्माण कराया था" ।[36]

मुंशी नवल किशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें –

क्रम सं	पुस्तक का नाम	भाषा, अनुवादक
1.	भागवत गीता	उर्दू, पंडित श्यामसुन्दर
2.	महाभारत मंजूम	उर्दू, लाला जय गोपाल
3.	शिव पुराण	उर्दू, मुंशी शंकरदयाल
4.	मारकंडे पुराण	उर्दू, पंडित रघुराज
5.	पोथी रहस बिंद्राबन	उर्दू, लाला शिव राघन
6.	रामायण अध्यात्म विचार	हिंदी, यमुना शंकर नागर
7.	केनोपनिषद	पंडित यमुनाशंकर पंचौली
8.	प्रश्नोपनिषद	हिंदी, रायबहादुर बाबू जालिमसिंह
9.	श्रीभगवद्गीता	हिंदी, पंडित गिरिजाप्रसाद
10.	बैताल पच्चीसी	अंग्रेजी, कैप्टेन डब्ल्यू. होल्लिंग्स

कोर्ट ऑफ वार्डस के आधीन मुंशी नवल किशोर प्रेस का स्वरूप :

10 जनवरी 1931 ई. को बिशननारायण भार्गव की बहुत ही कम उम्र में मृत्यु हो गयी। इस समय उनके दो पुत्र रामकुमार (जन्म 1915 ई.) और तेजकुमार भार्गव (जन्म 1925 ई.) नाबालिग थे, जिसके कारण नवल किशोर एस्टेट को कोर्ट ऑफ वार्डस के प्रबंधन में कर दिया गया। यह संस्था तब कार्य करती थी, जब किसी एस्टेट के मालिक अनुपस्थित हो या उसके उत्तराधिकारी नाबालिग हो। इस स्थिति में सरकार उस एस्टेट को अपने प्रबन्धन में ले लेती थी और उस एस्टेट के समस्त प्रबन्धन और उनके उत्तराधिकारियों का संरक्षण करती थी।[37]

एस्टेट के कोर्ट ऑफ वार्डस के संरक्षण में आने के पश्चात मिस्टर डी. डब्ल्यू क्रिग्टन ने 25 जुलाई 1932 ई. में प्रेस का प्रारम्भिक सर्वेक्षण किया तथा एस्टेट के प्रबन्धन से सम्बन्धित कई

प्रश्नावलियाँ तैयार करके विशेष प्रबन्धक को भेजी, ताकि विभागों से वित्तीय, कार्य–प्रणाली, कर्मचारियों की संख्या, वेतन तथा सेवा शर्तें सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जा सके। 22 अगस्त 1932 ई. को विशेष प्रबन्धक द्वारा कानपुर बुक डिपो का निरीक्षण किया गया, और लखनऊ वापस आने के पश्चात प्रबन्धक ने प्रेस के विभिन्न विभागों में स्थित मशीनरी के पुनर्विन्यास तथा अधिक पद्धतिगत कार्य–प्रणाली सुनिश्चित करने के लिए कई परिवर्तन के सुझाव दिए।[38]

वार्डस प्रबन्धन के अन्तर्गत नवल किशोर प्रेस जो, हजरत गंज में नवल किशोर रोड पर स्थित थी, जिसमें मुख्य प्रेस, कार्यालय, एक बड़ा भण्डार गृह तथा अधीक्षक का बंगला स्थित था, और प्रेस के प्रशासनिक अधिकारियों का विवरण सारणीबद्ध है।

क्र. सं.	मुख्य स्टाफ	कर्मचारियों की संख्या	मासिक वेतन (रु.)
1.	प्रशासनिक स्टाफ	2	535
2.	लिपिकीय स्टाफ	21	786
3.	चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी	45	422-8

नवल किशोर प्रेस के अन्तर्गत कार्यरत कर्मचारियों और उनके मासिक भत्तों का विवरण:-

क्र. सं.	कार्यालयी स्टाफ	कर्मचारियों की संख्या	मासिक वेतन (रु.)
1.	अंग्रेजी कम्पोजिंग	75	898
2.	हिंदी कम्पोजिंग	55	1,014
3.	रीडर एवं कॉपीहोल्डर	28	675
4.	लेटरप्रेस मुद्रण	86	1,573
5.	लिथोग्राफी	65	1,003
6.	बाइंडरी	30	329-8
7.	प्रोसेस ब्लॉक निर्माण	6	236
8.	मरम्मत कार्यशाला	14	381
9.	टाइप फाउंड्री	8	178
10.	विद्युतकर्मी	3	49-8

लखनऊ बुक डिपो में तीन बड़े गोदाम तथा समस्त लेखा कार्य निवास के नीचे स्थित कार्यालय में संपन्न किए जाते थे। बुक डिपो का स्टाफ वाणिज्यिक और साहित्यिक शाखा में विभाजित था, जिसकी व्यवसाय पद्धति मुख्यतः थोक पर आधारित थी। इसके साथ ही विद्यालयी पुस्तकों तथा धार्मिक प्रकार की पुस्तकों का भी प्रकाशन यही से किया जाता था। विद्यालयी पुस्तकें योग्य शिक्षाविदों के सहयोग से तैयार की जाती थी।

कचहरी के निकट स्थित कानपुर बुक डिपो जहां भार्गव आइस फैक्ट्री तथा एस्टेट की कई आवासीय इमारतें स्थित थी। इसका संचालन भी लखनऊ बुक डिपो के तर्ज पर किया जाता था और 1917 ई. तक कानपुर में एक पृथक प्रेस हुआ करती थी। माधुरी पत्रिका[39] का एक स्वतंत्र विभाग था, जिसका मुद्रण नवल किशोर प्रेस में किया जाता था। इस विभाग में एक संपादक सहित कई कर्मचारी कार्यरत थे। माधुरी पत्रिका का मासिक मुद्रण 2,500 प्रतियों का था। अवध अखबार का भी स्वतंत्र विभाग था, जो आवासीय संपत्ति के निकट एक अलग गोदाम में स्थित था। इस अखबार के स्टाफ में संपादक, उप–संपादक, दो अनुवादक, तीन लिपिक, तीन कैलीग्राफर, दो प्रूफरीडर, तीन पूर्णकालिक और एक अंशकालिक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, तथा दो अस्थायी पंखा–कुली उपस्थित थे। इस अखबार के दैनिक संस्करण में 180 प्रतियाँ जबकि साप्ताहिक संस्करण की 240 प्रतियाँ प्रकाशित की जाती थी।[40]

वार्डस द्वारा नियुक्त विशेष अधीक्षक ने प्रेस और बुक डिपो का नियंत्रण अधीक्षक, श्री के. डी. सेठ को देने का प्रस्ताव रखा गया। प्रेस द्वारा लाभ अर्जित करने की स्थिति में सार्वजानिक प्रतिस्पर्धा में अपना स्थान बनाये रखना जरुरी था, जिसके लिए सुधारों की कई व्यवस्थाएं लागू की गई और मुद्रण तथा प्रकाशन के लिए नए बाजार आउटलेट खोजे गये। इस रिपोर्ट में माधुरी और अवध अखबार के संपादकीय और व्यावसायिक पक्षों को अलग करने का प्रस्ताव रखा गया। माधुरी और अवध अखबार के संपादक ही उनके व्यवसायिक प्रबंधक भी थे और अपने प्रकाशनों की व्यावसायिक सफलता के लिए उत्तरदायी थे। पत्रकारिता और व्यवसाय दोनों को एक साथ समान दक्षता से निभा पाना अत्यंत दुर्लभ था। पत्रकारिता–प्रधान व्यक्ति में व्यावसायिक विस्तार का अभाव रह जाता है, जबकि व्यवसाय–प्रधान व्यक्ति पत्रकारिता की वैचारिक गुणवत्ता को क्षति पहुँचाता है।[41]

समाचार–पत्र और उसकी नीति पर सरकारी नियंत्रण जितना कम होगा, उसका विकास और विश्वास उतना ही सुदृढ होगा। कोर्ट ऑफ वार्ड्स के अधीन होने के कारण समाचार–पत्र जनता की दृष्टि में संदिग्ध बना दिया था। इसी कारण से माधुरी आदि के आवरण और शीर्षक से कोर्ट ऑफ वार्ड्स का हर संदर्भ हटाने का सुझाव दिया गया। माधुरी का संपादन पंडित रामसेवक त्रिपाठी के हाथों में बना हुआ था, लेकिन एक अन्य अवस्था यह थी कि बुक डिपो या अवध अखबार के स्टाफ में कोई ऐसा व्यक्ति हो जो माधुरी के कार्य से परिचित हो, तथा आवश्यकता पड़ने पर संपादक को अवकाश दिया जा सके और प्रकाशन की निरंतरता बाधित न हो।[42]

उस दौरान पत्रिकाओं के स्वरूप और सज्जा में केवल छोटा–सा शीर्षक ही उन्हें अलग करता था। माधुरी और सरस्वती की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि दोनों के मुखपृष्ठ पर प्रायः तीन–रंगों वाले धार्मिक या रूपकात्मक चित्र होते थे, माधुरी के लिए भी एक विशिष्ट आवरण अपनाना और प्रमुख लेखों व लेखकों को मुखपृष्ठ पर उभारना संभव था, और रंगीन चित्र बनाना भी जरुरी समझा गया।

कल्पनाशक्ति और विवेकपूर्ण संपादन के साथ यह आवरण स्वयं प्रभावी प्रचार का माध्यम बन सकता था। माधुरी के संपादक ने सुविधाओं का उपयोग करते हुए अवध अखबार के साप्ताहिक संस्करण में पत्रिका–पृष्ठ को सम्मिलित करने का प्रस्ताव रखा। एक अन्य सुझाव के तहत बिक्री की संभावनाओं को विस्तृत करने के लिए पत्र को उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में तथा पत्र छह पृष्ठों के बजाये चार पृष्ठों में समेटना उचित समझा गया।[43]

नवल किशोर प्रेस के कर्मचारियों का कार्य–समय कुछ अपवादों को छोड़कर प्रातः 9 बजे से सायं 5:30 बजे तक था और औद्योगिक श्रमिकों को कारखाना अधिनियम के तहत विश्राम एवं भोजन हेतु एक घंटे का अवकाश दिया जाता था। एक अन्य अपवाद 15 वर्ष से कम आयु के लड़के थे, जिन्हें अधिनियम के अनुसार दिन में केवल छह घंटे काम कराया जाता था। पूर्व में मालिकों के समय अवकाश अधिक उदारता से दिए जाते थे, किंतु कोर्ट ऑफ वार्ड्स के अधीन आने के बाद नवल किशोर प्रेस में हिंदू वर्ग को 18 पूर्ण दिन और 3 दिनों पर आधा अवकाश, मुस्लिम वर्ग को 13 पूर्ण दिन और 5 दिनों पर आधा अवकाश तथा ईसाई वर्ग को 10 पूर्ण दिन और 5 दिनों पर आधा अवकाश दिया जाता था।[44]

अंग्रेजी कंपोजिंग अनुभाग में फोरमैन, लिपिक, कंपोजिटर के साथ कई कर्मचारी कार्यरत रहते थे, इस अनुभाग के कक्ष में फर्नीचर पुराने हो गये थे और एस्टेट नए खरीदने की स्थिति में नहीं थी, जबकि हिंदी कंपोजिंग अनुभाग में उत्पादन की मात्रा (पीस वर्क प्रणाली) के अन्तर्गत उत्पादन किया जा रहा था। दूसरी ओर लेटरप्रेस मशीन कक्ष आधुनिक मशीनरी से सुसज्जित था, जिसने विशेष रूप से प्रेस को लाभान्वित किया था। ये मशीनें पुरानी मशीनों से बहुत अधिक महंगी नहीं होती थी, किन्तु उनकी गति कम से कम छह गुना अधिक होती थी। इसके अतिरिक्त, नंबरिंग और फोल्डिंग जैसे कई कार्य छपाई के साथ–साथ किए जा सकते थे, जिससे समय और श्रम की बचत होती थी।[45]

लिथोग्राफिक अनुभाग वर्तमान में दो पृथक समूहों में विभाजित था। पहला समूह, मुंसारिम के अधीन, लेखन, ड्राइंग तथा पत्थरों की छपाई से पूर्व तैयारी से संबंधित कार्य करता था, जबकि दूसरा समूह, मशीन कक्ष के फोरमैन के अधीन, वास्तविक छपाई प्रक्रिया संचालित करता था। स्टाफ संरचना में कैलिग्राफर, लिथो कलाकार, स्टोन करेक्टर, ट्रांसफर प्रेसमैन, प्रूफ–रीडर आदि अपनी–अपनी भूमिकाओं में कार्यरत थे। इसके साथ ही एक अन्य समस्या पत्थरों (लिथो स्टोन) के उपयोग से जुड़ी थी। पत्थर भारी, स्थान–घेरने वाले, क्षति–प्रवण तथा पुनः उपयोग से पूर्व सफाई की मांग करते थे। इसके विपरीत जिंक या एल्युमिनियम प्लेटें हल्की और टिकाऊ होती थी। प्लेट–प्रणाली अपनाने से श्रम तथा समय दोनों की बचत संभव थी। अतः 30 × 40 इंच शीट छापने में सक्षम एक डायरेक्ट रोटरी लिथोग्राफिक मशीन की खरीद सबसे व्यवहारिक और लाभकारी समाधान प्रतीत होती थी। ऐसी मशीन उत्पादन को चार से छह गुना तक बढ़ा सकती थी, विशेषकर यदि उसमें स्वचालित फीडर हो।[46]

प्रोसेस ब्लॉक–मेकिंग अनुभाग एक नया छोटा और स्वतंत्र अनुभाग था। इसमें मुख्य ब्लॉक–मेकर, कैमरा ऑपरेटर, ब्लॉक प्रिंटर तथा एक कुली कार्यरत था। इस तकनीक के लिए

आवश्यकता थी कि परिसर स्थित टाइप–स्टोर वाले भवन को पुनर्निर्मित कर, प्रोसेस कार्य के लिए उपयुक्त स्टूडियो बनाया जाए, साथ ही वर्तमान प्रोसेस डार्क–रूम, फिनिशिंग रूम और लिथोग्राफिक लेखकों के कक्षों का पुनर्निर्माण कर उन्हें एक समुचित लिथोग्राफिक अनुभाग में बदला जाए।[47]

प्रेस की इमारतें काफी जर्जर अवस्था में थी, और तत्कालीन अवधि में नई इमारत खड़ी करना संभव नहीं था, लेकिन उनकी व्यापक मरम्मत की आवश्यकता थी, साथ ही प्रेस अधिगृहीत परिसर में एस्टेट की संपत्ति को किराये पर देने तथा प्राप्त राशि को निवेश करने पर विचार किया गया, क्योंकि प्रेस के लाभ अर्जित करने से एस्टेट को भी लाभ हो सकता था। 1932 ई. में बुक डिपो के स्टॉक में नवल किशोर प्रेस की 3,098 तथा अन्य भारतीय प्रकाशकों की 277 कृतियाँ दर्ज थी। इसके अलावा 1857 की क्रान्ति के पश्चात मुद्रित पुस्तकें भी स्टॉक में थी, जिनकी जर्जर अवस्था को देखते हुए उनके रख रखाव के निर्देश दिए गये।[48]

तमाम परेशानियों के बाद प्रेस का लक्ष्य लखनऊ को छोड़कर पूरे संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बिहार–उड़ीसा, मध्य प्रान्त और भारतीय रियासतों के सभी बड़े नगरों में प्रभावशाली एजेंटों को नियुक्त करके उनको स्पष्ट क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर एकमात्र एजेंसी के रूप में अधिक बिक्री पर छूट प्रदान करना था। कानपुर बुक डिपो, लखनऊ की अपेक्षाकृत खराब स्थिति में था, इसे बंद करके यहां एक भवन बनाकर वार्षिक 2,580 रुपये का शुद्ध लाभ अर्जित किया जा सकता था, जबकि इतने लाभ की पुस्तकें बेच पाना कठिन था ।

विशेष प्रबन्धक ने इस सर्वेक्षण में तत्कालीन बुक डिपो प्रबंधक तथा साहित्यिक स्टाफ के अधीक्षक को सम्मिलित नहीं किया था। साहित्यिक स्टाफ में अतिरिक्त छह व्यक्ति शामिल थे, जो प्रकाशनों की तैयारी, अनुशंसा तथा वितरण से संबंधित साहित्यिक एवं अन्य कार्यों में लगे हुए थे। प्रबंधक और अधीक्षक के पदों के विलय के प्रस्ताव के पश्चात सहायक अधीक्षक के पद के लिए पं. चुन्नू लाल द्विवेदी और उनके अभाव में पं. माता दीन शुक्ल (माधुरी के सहायक संपादक) को यह दायित्व सौंपा जाना चाहिए, जबकि साहित्यिक विभाग के मुख्य सहायक के रूप में श्री के. सी. चक्रवर्ती का नाम उपर्युक्त था।[49]

निष्कर्ष :

बालिग होने के पश्चात रामकुमार भार्गव को वार्ड्स द्वारा नवल किशोर एस्टेट का दायित्व सौंप दिया था।[50] इस बदलते हुए दौर में रामकुमार भार्गव ने एस्टेट के साथ–साथ सार्वजनिक कार्यों में भी योगदान दिया और उनकी सेवाओं के बदले, उन्हें 'राजा' की उपाधि दी गई। आजादी के बाद उर्दू, अरबी और फारसी के पाठकों की संख्या कम हो गई और जमींदारी उन्मूलन के साथ–साथ सरकारी ठेके मिलना बंद हो गये, जिससे प्रेस को घाटा होना शुरू हो गया। इसके पश्चात रामकुमार भार्गव और तेजकुमार भार्गव के बीच संपत्ति का बंटवारा हो जाने से, इस प्रेस का भविष्य अँधेरे में चला गया। इस

प्रकार लखनऊ के सुनहरे इतिहास में अपना नाम दर्ज कराने वाली मुंशी नवल किशोर प्रेस का अध्याय समाप्त हो गया, जो अब उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तकों तक सिमट कर रह गया।

17 जनवरी 1968 को लखनऊ नगर निगम सभागार में मुंशी नवल किशोर पर महामहिम डॉ. बी. गोपाल रेड्डी द्वारा भाषण दिया गया कि "आज हम यहाँ मुंशी जी के निधन के लगभग 72 या 73 वर्ष बाद एकत्रित हुए हैं। वे एक ऐसे विद्वान थे, जिन्होंने पत्रकारिता और साहित्य को एक महान प्रेरणा और गति प्रदान की। वे उस समय नगर पालिका से जुड़े हुए थे और आज हम उनके चित्र का अनावरण कर उन्हें इस सभागार की दीवारों की शोभा बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। यदि हम पीछे मुड़कर देखें, तो मुंशी जी का योगदान वास्तव में अत्यन्त महान था। आज समाचार–पत्र स्थापित करना बहुत सरल है। 100 वर्ष पूर्व की कल्पना कीजिए, सम्भवतः उन्होंने 1858 ई. के आसपास एक समाचार–पत्र की कल्पना की। पहले साप्ताहिक, फिर दैनिक, और फिर अनेक भाषाओं में पुस्तकों का प्रकाशन। आज यह बात हमारी समझ से परे लगती है।

मुझे बताया गया है कि कुरान का प्रथम प्रकाशन उनके प्रकाशन गृह से हुआ, गुरु ग्रंथ साहिब का प्रकाशन भी उन्होंने किया, और फारसी व अरबी से संस्कृत तथा हिंदी में अनुवाद भी प्रकाशित किए गए। इसका अर्थ यह है कि वे भारत की समन्वित (संयुक्त) संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि थे। मुंशी जी स्वयं हिंदू थे, परन्तु उन्हें किसी अन्य भाषा या धर्म के प्रति कोई 'नफरत' नहीं थी। उन्होंने इस्लाम, सिख धर्म और हिंदू धर्म के पवित्र ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए समान रूप से प्रयास किए।

इस प्रकार उन्होंने भारतीय भाषाओं के विकास में योगदान दिया और वस्तुतः भारत में भाषाई और साहित्यिक पुनर्जागरण की नींव रखी। उन्होंने अरबी, फारसी और संस्कृत जैसी भाषाओं को एक–दूसरे के निकट लाया, जिससे लोग भगवद्गीता को फारसी में भी समझ सकें। उन्होंने लखनऊ नगर के लिए भी महान सेवाएँ दी और हजरतगंज को सँवारा था, जो आज का हजरतगंज लखनऊ नगर का 'दिल' बन चुका है । मुझे विश्वास है कि आने वाला नगर निगम भी नगर की सुंदरता और विकास के लिए समर्पित भाव से कार्य करेगा।"[51]

इस महान अग्रदूत, विद्वान की स्मृति में दिनांक 19 फरवरी 1970 ई. को भारत सरकार के पोस्ट्स एंड टेलीग्राफस विभाग द्वारा मुंशी नवल किशोर की तस्वीर के साथ एक विशेष डाक टिकट जारी कर उनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।[52]

सन्दर्भ :–

[1] एस. नटराजन, *ए हिस्ट्री ऑफ द प्रेस इन इंडिया,* एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, 1962, पृ. 3।

[2]वहीं, पृ. 6–9।

[3]फाइल स. 24–33/69–एच/1970, सूचना विभाग (डा० ज० ऑफ पो० एंड टेली०), राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 22।

[4]क्रम सं. 6, बण्डल सं. 85, कमिश्नरेट ऑफ फैजाबाद, उत्तर प्रदेश क्षेत्रीय अभिलेखागार, प्रयागराज, पृ. 1–2।

[5]फाइल स. 24–33/69–एच/1970, सूचना विभाग (डा० ज० ऑफ पो० एंड टेली०), राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 23–4।

[6]फाइल स. 24–33/69–एच/1970, सूचना विभाग (डा० ज० ऑफ पो० एंड टेली०), राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 25।

[7] अपर इंडिया कूपर पेपर मिल कम्पनी की स्थापना 27 सितम्बर 1879 ई. में हुई, जिसने 1882 ई. में पूर्ण रूप से अपना कार्य प्रारम्भ किया। इस मिल का नाम तत्कालीन गवर्नर जनरल एवं चीफ कमिश्नर अवध सर जी. ई. डब्ल्यू. कूपर के नाम पर रखा गया था। यह मिल रेजीडेंसी से 3 मील उत्तर दिशा में उसी स्थान पर स्थापित की गई थी, जहाँ अवध इन्फेंट्री की दूसरी रेजिमेंट स्थापित थी।, दि टूरिस्ट्स गाइड टू लखनऊ, मुर्रेस लन्दन प्रिंटिंग प्रेसः लखनऊ,1916, पृ. 26।

[8] दि पेपर मिल डायरेक्टरी ऑफ दि वर्ल्ड, 1883, होल्वोके, मास., यू.एस.ए., पृ. 185।

[9] एच. आर. नेविल, लखनऊ गजेटियर, सुपरिंटेंडेंट, गवर्नमेंट प्रेस, यूनाइटेड प्रोविन्सस, इलाहाबाद 1904, पृ. 49–50।

[10] इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन (1916–18), सुपरिंटेंडेंट, गवर्नमेंट प्रिंटिंग, इंडिया, कलकत्ता, 1918, पृ. 6–7।

[11] रेलवे साइडिंग मुख्य रेल मार्ग से जुड़ी एक सहायक पटरी होती है, जो औद्योगिक जगहों तक कच्चा माल और तैयार माल को परिवहन की सुविधा प्रदान करने के लिए बनायीं जाती है।

[12]फाइल सं. 69R/1899, पी.डब्ल्यू.डी. विभाग, उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ , पृ. 1–6।

[13]फाइल सं. 2252–टी–सी–1–2/1941, रेलवे बोर्ड विभाग (ट्रैफिक–बी), राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 6–13।

[14]फाइल स. 24–33/69–एच/1970, सूचना विभाग (डा० ज० ऑफ पो० एंड टेली०), राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 26।

[15]उल्रिके स्टार्क, एन एम्पायर ऑफ बुक्स, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत, 2007, पृ. 118–9।

[16]मेमोरंडम ऑफ दि प्रीवियस हिस्ट्री ऑफ दि आगरा कॉलेज, प्रेपरेड एंड इशुड बाय बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज, 1886, पृ. 1–10।

[17]वहीं, पृ. 16।

[18]वहीं, पृ. 19–20।

[19]मिसलेनियस रिकॉर्ड सीतापुर कलेक्ट्रेट (पोस्टर के रूप में), उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ ।

[20]सिलेक्शन फ्रॉम स्पीचेस ऑफ दि एल. जी. नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सस (1867–1891), नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सस एण्ड अवध, इलाहाबाद 1890, पृ. 153।

[21]हिस्ट्रीज ऑफ दि बेनेवोलेंट ट्रस्ट फंड्स इन दि यूनाइटेड प्रोविन्सस, पृ. 163।

[22]दि पायनियर (इलाहाबाद), 7 नवम्बर 1888, दि पायनियर (इलाहाबाद), 8 नवम्बर 1888।

[23]दि पायनियर (इलाहाबाद), 24 नवम्बर 1888, दि पायनियर (इलाहाबाद), 26 नवम्बर 1888।

[24]फाइल स. (27),23/1867, सेन्ट्रल इंडियन एजेंसी, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 1,4।

[25]प्रोसीडिंग्स इन दि कोर्ट ऑफ दि ज्यूडिशियल कमिश्नर, अवध, सेलेक्टेड केस सं. V, 1874।

[26]फाइल स. दिसम्बर 1908, नो. 234–37, विदेश एवं पॉलिटिकल विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 3, 8–10।
[27]फाइल स. जुलाई 1909, नो. 200–204, विदेश एवं पॉलिटिकल विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 2–10।
[28]फाइल स. जनवरी 1908, नो. 320–370, विदेश विभाग, (इंटरनल–बी) राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 2–4।
[29]फाइल स. प्रोसिडिंग फरवरी 1912, नो. 276–7, विदेश विभाग, जनरल–बी, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 1,4।
[30] वहीं, पृ. 8–10।
[31] "राज्याभिषेक दरबार की तैयारियाँ," हिंदुस्तानी (लखनऊ), 4 दिसम्बर 1911।
[32]फाइल स. सितम्बर 1911, नो. 62–63, शिक्षा विभाग–अ, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 2–8।
[33]फाइल स. अगस्त 1912, नो. 158–63, शिक्षा विभाग–अ, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 6–12।
[34]फाइल स. प्रोसिडिंग जुलाई 1914, नो. 5–9, शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 2–4।
[35]वही, पृ. 5–6।
[36]एस. सी. सेन, स्पीचेस मेड बाय एक्सेलेंसी सर हरकोर्ट बटलर, गवर्नर ऑफ द यूनाइटेड प्रोविन्सस, द पायनियर प्रेस, इलाहाबाद, 1921, पृ. 81।
[37]कोर्ट ऑफ वार्ड्स एक्ट, 1899, सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ दि गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद, 1900, पृ. 3–4।
[38]डी. डब्ल्यू. क्राइटन, रिपोर्ट ऑन दि नवल किशोर प्रेस, बुक डिपो एंड एलाइड वेंचर्स, सुपरिन्टेन्डेन्ट, प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, यूनाइटेड प्रोविन्सस, इलाहाबाद, 1932, पृ. 1–2।

[39]बिशन नारायण भार्गव ने 'माधुरी' पत्रिका का पहला अंक जुलाई 1922 ई में सुभारम्भ किया, जिसका संपादन कई विद्वानों ने किया था।
[40]डी. डब्ल्यू. क्राइटन, रिपोर्ट ऑन दि नवल किशोर प्रेस, बुक डिपो एंड एलाइड वेंचर्स, सुपरिन्टेन्डेन्ट, प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, यूनाइटेड प्रोविन्सस, इलाहाबाद, 1932, पृ. 4–6।
[41]वहीं, पृ. 7–9।
[42]वहीं, पृ. 11–2।
[43]वहीं, पृ. 12–3।
[44]वहीं, पृ. 16–9।
[45]वहीं, पृ. 23–27।
[46]वहीं, पृ. 28–9।
[47]वहीं, पृ. 31।
[48]वहीं, पृ. 39–41।

[49]वहीं, पृ. 46–7।।
[50]हिज इम्पीरियल मेजेस्टी किंग जॉर्ज ट एंड दि प्रिंसेस ऑफ इंडिया एंड दि इंडियन एम्पायर, दी इम्पीरियल पब्लिशिंग क., लाहौरः 1937, पृ. 298।
[51]फाइल स. 24–33/69–एच/1970, सूचना विभाग (डा० ज० ऑफ पो० एंड टेली०), राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, पृ. 14–17।
[52]वहीं, पृ. 81।

ईमेलः umeshstudent051@gmail.com, मो. 8887610774, 8574889927

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 39-45

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मुगल काल की शिक्षा प्रणाली, औपचारिक शिक्षा का आंरभिक काल

डॉ. अनीता रानी
सहायक प्राध्यापक इतिहास विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय (NCWEB)

सारांश :

भारतीय सभ्यता में शिक्षा का विशेष स्थान रहा है, वैदिक काल में जब भारतीय सभ्यता का जन्म हुआ तब से ही शिक्षा की व्यवस्था की गई। प्रारंभ में शिक्षा नैतिक जीवन पर आधारित थी, जिसमें चरित्र–निर्माण, नैतिक–विकास, आत्म–अनुशासन और समाज के प्रति जिम्मेदारी का निर्वाह करना मुख्य ध्येय था।

प्राचीन वैदिक शिक्षा पद्धति गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी। जिसमें शिक्षार्थी गुरुकुल/आश्रमों में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। आश्रमों में विद्यार्थी को केवल किताबी ज्ञान नही दिया जाता था बल्कि व्यवहारिक ज्ञान पर अधिक जोर दिया जाता था। गुरु अपने शिष्यों को अनुशासन में रहना, बड़ों की सेवा करना, सादगी भरा जीवन व्यतीत करना सिखाते थे । इसके साथ परिश्रम से जुड़े कार्य भी करवाये जाते थे। इसके अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, गणित, साहित्य, विज्ञान, व्याकरण, राजनीति के साथ–साथ युद्धकला, और धनुर्विद्या जैसे विषयों का ज्ञान दिया जाता था।

मुगलकालीन शासक इस बात से भली–भान्ति अवगत थे कि भारत में लंबे समय तक शासन करना है तो भारतीय संस्कृति सभ्यता में समन्वय बनाकर शासन किया जा सकता है। यहीं कारण है कि मुगल काल की शिक्षा प्रणाली में प्राचीन वैदिक समय की शिक्षा के साथ–साथ इस्लामी शिक्षा पद्धति का मिलाजुला रुप देखने को मिलता है। इस समय गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली के साथ–साथ इस्लामी शिक्षा प्रणाली को व्यवस्थित रुप देने के लिए औपचारिक शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की गई। प्रस्तुत शोध लेख में यह सिद्ध किया है कि किस प्रकार मुगल काल में औपचारिक शिक्षा की शुरुआत हुई जिसका प्रभाव वर्तमान शिक्षा में भी देखा जा सकता है।

प्रस्तावना :

भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति की विशेषता रही है कि शिक्षा को केवल व्यवसाय के लिए ग्रहण नही किया जाता था अपितु, समाज निर्माण में के लिए भी शिक्षा महत्वपूर्ण मानी गई। भारत में प्राचीन काल से शिक्षा के विभिन्न केन्द्र रहे है, जहां देश–विदेश से विद्यार्थी शिक्षा के लिए आते थे। नालन्दा, तक्षशिला, और विक्रमशिला ऐसे ही विश्वविद्यालय थे जिनकी प्रसिद्धी देश–विदेश तक फैली हुई थी। इन विश्विद्यालायों में हजारों विद्यार्थी

और शोधार्थी रहते थे, तथा अध्ययन और शोध कार्य किया करते थे। हालांकि समय के साथ यह शिक्षा व्यवस्था बदलती गई जिसमें कुछ सीमाएं तय की गई। समाज के सभी वर्गो और जातियों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त करने का अवसर नही मिलता था।

भारत में मुस्लिम शासन के समय शिक्षा का दायरा इस्लामी शिक्षा संबंधी प्रतिमानों को प्रतिबिंबित करता था, जो सभ्य और सक्षम पुरुषों के निर्माण में जोर देता था, जिसमें न केवल राज्य के विकास में बल्कि इस्लाम के प्रचार–प्रसार में भी योगदान दे सके। मुगल काल में भारतीय शिक्षा प्रणाली के व्यापक विकास ने केवल राज्य की सेवा के लिए सक्षम पुरुषों के निर्माण ही नहीं किया बल्कि यह सर्वोच्च स्तर के परोपकार और दान का साधन भी बन गई। मुगलकालीन शिक्षा व्यवस्था में अनुदानों, संरक्षणों और यहां तक की हिन्दू विद्यार्थियों के लिए मकतबों, मदरसों और पाठशालाओं के रुप में शैक्षणिक संस्थानों के औपचारिक विकास का माध्यम बना।

मुगलकालीन औपचारिक शिक्षा का आरम्भ :

प्रारंभिक शिक्षा (मकतब) – मुगलकालीन शिक्षा व्यवस्था को दो भागों में बांटा गया था प्रारंभिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा। वर्तमान में भी शिक्षा के इसी प्रकार के वर्गीकरण का रुप हम देख सकते है। प्रारंभिक शिक्षा को मकतब कहा जाता था। जहां बच्चों को निम्न स्तर से शिक्षा दी जाती थी जिसमें शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को वर्णमाला का ज्ञान देना तथा धार्मिक प्रार्थना का ज्ञान कराना था। धनी वर्ग के लोग अपने बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही करते थे, जिसमें अध्यापक घर आकर बच्चों को शिक्षा प्रदान करते थे, लेकिन जनसाधारण लोग अपने बच्चों को मकतब भेजते थे जहां सामूहिक रुप से बच्चों को शिक्षा प्रदान की जाती थी। मकतब मस्जिदों, शिक्षकों के घर, या गांव के सार्वजनिक स्थानों पर स्थापित किए जाते थे। इसके अतिरिक्त खानकाह और दरगाहों में भी प्रारंभिक शिक्षा दी जाती थी। जब बालक चार वर्ष, चार दिन और चार महीने का हो जाता था तो उसे शिक्षा देने की रस्म अदा की जाती थी जिसे 'बिस्मिल्लाह' का नाम दिया जाता था। इस संस्कार में बच्चें को अच्छे वस्त्र पहनाकर, एक कुर्सी पर बैठाकर शिक्षा आरंभ की जाती थी। इस अवसर पर परिवार के सभी सदस्य, रिश्तेदार मित्र आदि उपस्थित होते थे। मकतबों में सभी वर्गो के लोग शिक्षा प्राप्त करते थे। धार्मिक ज्ञान के साथ–साथ पढ़ना–लिखना और गणित का बेसिक ज्ञान कराया जाता था। मौलवी बच्चों को पहली बार कुरान की आयतें पढ़ना सिखाते थे। विद्यार्थियों को फारसी भाषा का व्याकरण कण्ठग्र कराया जाता था। वर्णमाला की लिपि फारसी होती थी, लेकिन उर्दू एक प्रमुख विषय हुआ करता था।

उच्च शिक्षा (मदरसा) – मुगलकालीन शिक्षा में उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी, जैसा कि वर्तमान में भी इस तरह की व्यवस्था मिलती है। उच्च शिक्षा मदरसों में दी जाती थी, जहां अध्यापक विद्यार्थियों को व्याख्यान देते थे। मदरसों के संचालन की जिम्मेवारी राज्य सरकार की होती थी। जब विद्यार्थी मकतबों में प्रारंभिक शिक्षा समाप्त कर लेते थे, तो उन्हें मदरसे में प्रवेश मिलता था। उच्च शिक्षा वैकल्पिक रुप से दो श्रेणियों में विभक्त की गई थी। धर्म निरपेक्ष और धार्मिक शिक्षा। धर्म निरपेक्ष विषयों में अरबी, व्याकरण, साहित्य, तर्कशास्त्र, ताबीयी–रियाजी, और विज्ञान, दर्शनशास्त्र, इतिहास, गणित, ज्योतिष, विधि, भूगोल, चिकित्साशास्त्र, आदि होते थे। धार्मिक शिक्षा के अर्न्तगत गहन कुरान पर टीका, पैगंबर मुहम्मद साहेब की परम्परा, इस्लामी कानून और सूफी मत के सिद्धांत आते थे। शिक्षा का माध्यम अरबी होता था, यद्यपि औरंगजेब ने अरबी के स्थान पर मातृभाषा में शिक्षा देने पर जोर दिया।

अकबर ने अपने शासनकाल में हिन्दू और मुसलमानों दोनों को समान रुप से मदरसों में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया। उनका मानना था कि हिन्दुओं को केवल इस्लामी शिक्षा देने से साम्राज्य की सुरक्षा को खतरा हो सकता है, इसीलिए उन्होने हिन्दुओं को शिक्षा देने के लिए ऐसे मदरसों की स्थापना की जहां हिन्दू धर्म दर्शन और साहित्य की शिक्षा फारसी भाषा के साथ–साथ दी जाने लगी।

मुगलकालीन शिक्षा के प्रमुख केन्द्र :

मुगलकालीन शिक्षा के समय शिक्षा के नाम पर कोई विद्यालय की व्यवस्था नही होती थी अक्सर शिक्षा मदरसों, शिक्षकों के घर अथवा किसी सार्वजनिक स्थान पर दी जाती थी। परन्तु इस काल तक कई नगरों में शिक्षा के केन्द्र बनने आरंभ हो गए थे, जो कि शैक्षिक रुप से महत्वपूर्ण थे। कुछ शैक्षणिक केन्द्र धार्मिक महत्व के स्थान जैसे दरगाह, खानकाह, आगरा, इलाहाबाद, फतेहपुर सीकरी, दिल्ली, जौनपुर, लाहौर, मुल्तान, अजमेर, बीजापुर, अहमदाबाद आदि इस्लामिक शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र बने। सिकन्दर लोधी ने आगरा में सैकड़ो ऐसे मदरसे स्थापित किए जहां शिक्षा प्रदान की जाती थी। अरब, ईरान और बुखारा के बहुत से विद्वान यहां आया करते थे, इन केन्द्रों को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था। मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल में आगरा इस्लामिक शिक्षा, संस्कृति और दस्तकारों का महत्वपूर्ण केन्द्र बना।

दिल्ली लंबे काल तक मुस्लिम शासकों की राजधानी रही इसलिए मुस्लिम शासकों ने इसे शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बनाया। मुगल काल में शिक्षा के साथ–साथ कला और साहित्य विज्ञान को भी प्रमुखता प्रदान की गई। अलाउद्दीन के शासनकाल में बहुत से विद्वान और दार्शनिक दिल्ली आए। शाहजहां ने दिल्ली में जामा मस्जिद के निकट एक मदरसा बनवाया, जिसे 'दारुल बाकी' नाम दिया। शाहजहां स्वयं तुर्की भाषा में पारंगत था। उसके शासनकाल में एक प्रसिद्ध गणितज्ञ ने नक्षत्रों की एक सूची तैयार की और 'उलुगबेग' द्वारा बनाई गई पहली सूची में संशोधन किया जिसका नाम 'जिज–ए–शाहजहानी' रखा गया। शाहजहां ने विद्वानों को सरंक्षण प्रदान किया। उनके कृपापात्र विद्वानों में चन्द्रभान ब्राह्मण प्रमुख थे जो कि उच्चकोटि के रचनाकार थे। उनके द्वारा लिखी पुस्तक 'मशाते ब्राह्मण' विद्यालय के पाठ्यक्रम में लंबे समय तक पढ़ाई जाती रही। शाहजहां द्वारा संरक्षण प्राप्त करने वाले महत्वपूर्ण विद्वानों में 'अब्दुल हकिम सियालकोटि, मुल्ला मुहम्मद फाजिल, और काजी मुहम्मद असलम थे'।

फारसी लेखक फरिश्ता ने लिखा है कि– 43 प्रख्यात विद्वान अलाउद्दीन द्वारा बनाये गए मदरसों में विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए बुलाए गए। फिरोजशाह तुगलक ने भी आगरा में तीस मदरसों की स्थापना की थी। मुगलकाल में आगरा उच्च शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन चुका था। इब्राहिम शर्की ने यहां पर शिक्षा के विकास के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया था। कहा जाता है कि शेरशाह सूरी ने आगरा में शिक्षा प्राप्त की थी। शाहजहां की पुत्री जहांनारा बेगम ने भी आगरा के जामा मस्जिद के निकट एक मदरसा बनवाया जो काफी समय तक अपने अस्तित्व में रहा। हुमायूं ने आगरा में भूगोल और नक्षत्रशास्त्र के अध्ययन के लिए एक विशेष मदरसे की स्थापना की।

इसी प्रकार दक्षिण भारत में बीदर भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बना यहां पर बहुत से मदरसें और मकतब बनाये गए। अहमदशाह (1422–35) ने गुलबर्गा ने एक मदरसा सैयद गेसूदराज के नाम से खोला जो कि उस समय के प्रसिद्ध विद्वान थे। इस मदरसे के खर्च के लिए कई नगर और गांव की आय को निर्धारित

की गई। महमूद गवां ने जो मुहम्मद शाह (1463–82) का वजीर था, उसने एक विशाल मदरसा बीदर में बनवाया जिसके ग्रन्थालय में हजारों पुस्तकें थी। बीदर के गावों में भी बहुत से मदरसे स्थापित किए गए। बीदर में शिक्षा के विकास के कारण बहमनी राज्य में शिक्षा का उच्च स्तर हो गया था।

बहमनी के सुल्तानों ने अनाथों की शिक्षा के लिए भी संस्थाएं खोली थी। बीजापुर, गोलकुण्डा, मालवा, खानदेश, जौनपुर, मुल्तान, गुजरात और बंगाल शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बन गए थे। मुगलकालीन जौनपुर को 'शीराजे हिन्द' कहा जाता था। जौनपुर साहित्य और कलाओं की उच्च शिक्षा के लिए प्रसिद्ध था। मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन ने अपने घर की स्त्रियों को पढ़ाने के लिए अध्यापिकाओं की नियुक्ति की थी। बंगाल में हुसैन शाही शासकों ने हिन्दू और मुस्लिम शिक्षा के प्रचार–प्रसार में अधिक योगदान दिया। उन्होने शैक्षणिक संस्थाएं खोली और सरकार द्वारा अनुदान प्रदान कराया गया। इसी प्रकार पंजाब नक्षत्र और गणित तथा दिल्ली इस्लाम की परंपराओ, रामपुर तर्कशास्त्र व चिकित्साशास्त्र तथा लखनऊं सदाचार की शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र के रुप में प्रसिद्ध हुए।

मुगलकालीन शिक्षा प्रणाली :

मुगलकालीन शिक्षा प्रणाली में प्रारंभिक एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। इन वर्गीकरण के यह हमेशा ध्यान में रखा गया कि उम्र के आधार पर विद्यार्थियों का मानसिक विकास हो। मकतब की प्रारंभिक शिक्षा में केवल मौखिक शिक्षा दी जाती थी। इस प्रचलित ढंग की शिक्षा में बालकों को वर्णमाला सीखने में बहुत अधिक समय लगता था, इसलिए अकबर ने शिक्षा पद्धति में परिवर्तन करना आवश्यक समझा, इस परिवर्तन में वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा देने की पद्धति का विकास किया गया, जिसके लिए मकतब का पाठ्यक्रम तैयार किया गया। इसकी जानकारी हमें 'आइने अकबरी' में प्राप्त होती है। जिसके अनुसार प्रत्येक बच्चों को वर्णमाला का ज्ञान और निरन्तर अभ्यास कराना आवश्यक है। उसके पश्चात् बच्चों को कविताओं और ईश्वर प्रार्थना के गीत कंठाग्र कराना चाहिए। ऐसा करने से बालक को नैतिक शिक्षा का ज्ञान प्राप्त होगा तथा वह एक महीने में उतना सीख लेगा जितना उसे सीखने में एक वर्श लगता था।

इसी प्रकार उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम की व्यवस्था भी की गई थी। उच्च शिक्षा मदरसों में दी जाती थी, जहां अध्यापक व्याख्यान देते थे और विद्यार्थियों को किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता था। विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए अध्यापक व्यक्तिगत रुप से प्रयास करते थे। उच्च शिक्षा में बौद्ध शिक्षा प्रणाली की तरह 'मानीटर' पद्धति प्रचलित थी। इस व्यवस्था के अर्न्तगत शिक्षक की अनुमति से ऊंची कक्षा के विद्यार्थी निचली कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ाते थे परन्तु अकबर इस व्यवस्था से संतुश्ट नही थे क्योकि इसमें विद्यार्थियों का समय नश्ट होता था। इस दोष को दूर करने के लिए प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया जिसके अर्न्तगत मदरसों के धर्म, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र और राजनीति जैसे विषयों का अध्ययन करवाया जाने लगा था, इसके लिए विश्लेश्णात्मक तरीकों को प्रयोग में लाया जाता था। महत्वपूर्ण विषयों पर राजदरबारों के विद्वानों के साथ वाद–विवाद होता था। फिरोजशाह तुगलक और अकबर के दरबार इस प्रकार के वाद–विवादों के लिए प्रसिद्ध थे। मध्यकाल के प्रचलित पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए मुल्ला निजामुद्दीन ने अठारहवी शताब्दी में 'दर्स–ए–निजामी' निश्चित किया तथा उसके अनुसार यह पाठ्यक्रम भारत में मुसलमानों के शासन के आरंभ से प्रचलित था।

विद्यार्थियों को अपराध करने पर कठोर शारीरिक दण्ड दिया जाता था। राज्य की तरफ से इस संबंध में कोई नियम नही बनाये गए थे जिसके कारण अध्यापक स्व विवेक के दण्ड देने का काम करते थे। उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों में अनुशासन, सदाचार, विनम्रता आदि विशेश गुण माने जाते थे। इनका उल्लंघन करने पर उन्हें बेंत या कोड़े से दण्ड दिया जाता था। इसके अतिरिक्त योग्य और प्रखर बुद्धि वाले विद्यार्थियों को पुरस्कार से प्रोत्साहित किया जाता था। इसके लिए 'सनद' या 'तमगा' सत्र के अन्त में दिया जाता था। वर्तमान समय के सत्र परिणाम में भी विद्यार्थियों को इसी प्रकार प्रोत्साहित किए जाने की परंपरा चली आ रही है। मदरसों में शिक्षा प्राप्त विद्यर्थियों को राज्य प्रशासन में उच्च पदों पर आसीन किया जाता था और उनके सिर पर 'अमामा' पगड़ी बांधकर विशेष सम्मान प्रकट किया जाता था।

मदरसे में अध्यापन पूरा कर लेने के बाद शैक्षणिक विशेषता की सनद दी जाती थी जिसकी तुलना वर्तमान के फैलोशिप से की जा सकती है। उस समय इसे 'दस्तरबन्दी' कहा जाता था। ये वजीफे धनी वर्ग के लोग विद्यार्थियों को प्रोत्साहन के रुप में देते थे। शेख निजामुद्दीन औलियां ने जब अपना अध्यापन पूर्ण किया तो उनके गुरु मौलाना अलाउद्दीन उसीली ने औलिया के सिर पर पगड़ी बांधी।

व्यावसायिक शिक्षा तथा को महत्व :

मुगलकाल में प्राथमिक और उच्च शिक्षा के साथ–साथ व्यावसायिक शिक्षा की शुरुआत की गई। अकबर ने तकनीकी और व्यवसायिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। इसका चयन विद्यार्थी अपनी क्षमता और योग्यता के अनुसार करते थे। इनमें प्रमुख क्षेत्र थे – कलाकृतियां बनाना, हस्तशिल्प, आभूषण, मिट्टी के बर्तन बनाना, बुनाई, प्लंबिंग, बढ़ईगिरी आदि। अकबर के शासनकाल में शिक्षा व्यवस्था में प्रयास किया गया कि शिक्षण–अधिगम विधियां, निर्देशात्मक रणनीतियां और शिक्षण–अधिगम सामग्री सुव्यवस्थित और संतोषजनक होनी चाहिए। जिससे कि छात्रों में समझ विकसित की जा सके। इसके अतिरिक्त उन्हें प्रबंधनीय तरीके से शैक्षणिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम होना चाहिए। इसलिए, व्यावसायिक शिक्षा का महत्व इस काल में बढ़ जाता है।

कला और साहित्य को प्रोत्साहन :

मुगल काल में अकबर के समय शिक्षा ने सबसे अधिक प्रगति की। उस समय शिक्षा प्रणाली में कोई विभाग नही था, लेकिन हिन्दू और मुस्लिम दोनो की अलग–अलग संस्थाएं थी जिनमें हिन्दू मुस्लिम शिक्षा प्राप्त कर सकते थे, उनमें हिन्दु दर्शन का पाठ्यक्रम भी तैयार किया गया। मुस्लिम संस्थाओं मे शिक्षा ग्रहण करने के लिए हिन्दुओं को बाध्य नही किया जाता था। अकबर के दरबार में शेख अबुल फजल अल्लासी, फैजी, अब्दुल कादिर बदायूंनी जैसे प्रसिद्ध सैकड़ो विद्वान लेखक थे। अकबर का अध्ययन संगीत शिक्षा पर भी केन्द्रित था। उन्होने अदालत में हिन्दू, मुस्लिम, ईराकी, कश्मीरी महिलाओं और पुरुष संगीतकारों को रायल्टी दी थी। सप्ताह के दिनों को संगीत के लिए अलग रखा गया था। उनके दरबार में तानसेन, पति हरिदास, बैजू गोपाल, मदनलाल, दिबाकर, सोमनाथ और राजा सूरसेन जैसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। ईरान और इराक ग्वालियर, और कश्मीर में संगीत प्रशिक्षण केन्द्र बनाये गए थे जिसे संगीतकला को प्रोत्साहन मिला। हलांकि औरंगजेब के समय संगीत कला को प्रोत्साहन मिलना बन्द हो गया था परन्तु फिर भी संगीतज्ञ प्राप्त होते हैं। अकबर ने चित्रकला को भी प्रोत्साहन दिया। उनके समय ईरानी अनुष्ठान भारत में आए और मुगल दरबार में एक स्थान प्राप्त किया।

इनके दरबारी चित्रकारों में हिन्दू और मुस्लिम दोनो तरह के चित्रकार थे इसलिए उनके मिलन से एक नई शैली' का विकास हुआ जिसे 'मोगुल–शैली' के नाम से जाना गया। पेंटिंग दास्तान–ए–अमीर हमजा द्वारा लिखी गई प्रसिद्ध रचना थी। लेखन की कला भी शिक्षण–प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण भाग था। मुगलकाल में सुलेख को विशेष महत्व दिया गया था। अकबर से समय सर्वश्रेष्ठ ग्यारह सुलेख को दरबार में नियुक्त किया गया था। स्कूलों, कालेजों में सरल, सुलभ शिक्षण विधियां अपनाई गई।

मुगलकालीन शिक्षा प्रणाली के दोष :

मुगलकालीन शिक्षा प्रणाली को एक औपचारिक रुप तो दे दिया गया था परन्तु अभी भी इनमें बहुतसे दोष थे। यह शिक्षा लचीली नही थी अपितु कठोर और अनुत्पादक थी। इसकी सबसे बड़ी विफलता यही थी कि इसमें समयानुकूल परिवर्तन नही किया गया था। एक अन्य दोष यह था कि इस शिक्षा व्यवस्था में स्त्रियों की शिक्षा के लिए कोई विधिवत् संस्थाएं नही थी। स्त्रियां या छोटी बच्चियां भी मकतबों और मदरसों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए नही जा सकती थी। लड़कियां केवल उस क्षेत्र की मस्जिद से जुड़े मकतबों में ही जा सकती थी जहां केवल लड़कियों के केवल साधारण ढंग से पढ़ना–लिखना सिखाया जाता था। यहीं कारण रहा कि मुस्लिम महिलाएं लंबे समय तक शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ी रही। मुगल काल में स्त्री शिक्षा के लिए संस्थाएं खोलने का प्रयास किया गया। राज परिवार और अभिजात वर्ग की स्त्रियों के लिए उनके घरों में पढ़ने की सुविधाएं थी, परन्तु सामान्य वर्ग की स्त्रियों के लिए इस प्रकार की सुविधा नहीं थी।

निष्कर्ष :

मुगलकालीन शिक्षा व्यवस्था में धर्म निरपेक्ष और धार्मिक शिक्षा में सामंजस्य बनाया गया जिससे हिन्दु और मुस्लिम सभी वर्गो के लोग शिक्षा प्राप्त कर सके। मुगलकाल की शिक्षा का मुख्य आधार इस्लामी शिक्षा पद्धति थी। इस शिक्षा पद्धति की एक विशेषता यह रही कि इसमें साहित्य और इतिहास लेखन को प्रोत्साहन दिया गया। इस युग में ऐतिहासिक ग्रंथो का निर्माण किया गया। मुसलमानों के भारत में आने से पहले भारत देश का क्रमबद्ध लिखित इतिहास नही प्राप्त होता। केवल कल्हण की 'राजतरंगिणी' को ही इतिहास ग्रन्थ माना जा सकता है। मुस्लिम शासकों ने इतिहास को आत्मकथाओं के रुप में लिखा। और विशिष्ट इतिहासकारों को संरक्षण प्रदान किया। यहीं कारण है कि वर्तमान समय मे हम मुगलकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक व्यवस्था को भली–भान्ति समझ पाते है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की तरह इस्लामी शिक्षा प्रणाली में भी गुरु और शिष्य के संबंध बहुत सम्माननीय माने गए। हलांकि इस्लामी शिक्षा प्रणाली में भौतिकवाद पर अधिक बल दिया गया और अध्यात्मवाद पर कम ध्यान दिया गया। इस्लामी शिक्षा संस्थाओं ने अरबी और फारसी भाषाओं की प्रधानता थी, जिसके कारण भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का विकास न हो सका।

निष्कर्षः कहा जा सकता है कि मुगलकालीन शिक्षा व्यवस्था पर तात्कालीन शासन व्यवस्था की झलक देखी गई। इस शिक्षण व्यवस्था में शैक्षिक संस्थाओं के विकास ने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के माडल को बनाने के लिए प्रेरित किया, तथा औपचारिक रुप से शिक्षण संस्थाओं का विकास हुआ, शैक्षिक पाठ्यक्रम तथा अनुशासन बनाये गए।

संदर्भ सूची :

1. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत, हर–आनंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. इरफान हबीब, मुगल भारत की कृषि व्यवस्था : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. एस. ए. ए. रिजवी, भारत में मुस्लिम शिक्षा : मुंशी राम मनोहरलाल प्रकाशन।
4. नुरुल्लाह एवं जे. पी. नाइक, भारत में शिक्षा का इतिहास : मैकमिलन।
5. अबुल फजल, आइने–अकबरी : एशियाटिक सोसाइटी।
6. पर्सिवल स्पीयर, भारत का इतिहास : पेंगुइन।
7. आर. सी. मजूमदार, मुगल साम्राज्य : भारतीय विद्या भवन।
8. जहीर–उद–दीन मुहम्मद बाबर, बाबरनामा (आत्मकथा)।
9. जहाँगीर, तुजुक–ए–जहाँगीरी (संस्मरण)।
10. एनसीईआरटी, मध्यकालीन भारत (इतिहास की पाठ्यपुस्तक)।
11. भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद, मध्यकालीन शिक्षा पर शोध पत्र।

E-mail : anitasisodia231@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 46-50

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

1857 के स्वाधीनता संग्राम में शीतल पाल : एक ऐतिहासिक अध्ययन

शुभांगी श्रीवास्तव, शोध छात्रा,
प्रो. बालकेश्वर, शोध निर्देशक,
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही।

शोध सारांश :

1857 का स्वाधीनता संग्राम भारतीय इतिहास का वह निर्णायक क्षण था, जिसने औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध व्यापक जनआक्रोश को मुखर स्वर प्रदान किया। यह केवल सैनिक विद्रोह नहीं था, बल्कि जनमानस की चेतना का सशक्त उद्घोष था, जिसमें देश के विभिन्न क्षेत्रों के साथ–साथ स्थानीय नायकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। उत्तर प्रदेश के भदोही क्षेत्र में भी इस क्रांति की ज्वाला प्रज्वलित हुई, जहाँ अनेक वीरों ने अपने साहस और त्याग से स्वतंत्रता संग्राम को गति प्रदान की। इसी संदर्भ में शीतल पाल का नाम एक ऐसे योद्धा के रूप में उभरकर सामने आता है, जिन्होंने 1857 की क्रांति में भदोही की धरती पर स्वतंत्रता की अलख जगाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। वे केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि उस युग की जनभावनाओं, संघर्षशीलता और देशभक्ति के प्रतीक थे। यह शोध–पत्र शीतल पाल के व्यक्तित्व का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, साथ ही 1857 के स्वाधीनता संग्राम में भदोही क्षेत्र की भागीदारी को रेखांकित करता है। इस अध्ययन का उद्देश्य न केवल एक अल्प–प्रसिद्ध नायक के योगदान को उजागर करना है, बल्कि यह भी दर्शाना है कि किस प्रकार स्थानीय स्तर पर हुए संघर्षों ने राष्ट्रीय आंदोलन की नींव को सुदृढ़ किया।

कुंजी शब्द : स्वाधीनता संग्राम, औपनिवेशिक शासन, जनाक्रोश स्वायत्त, अलख।

इतिहास लेखन में जहाँ एक ओर व्यापक एवं राष्ट्रीय स्तर की घटनाओं को विशेष महत्व दिया गया है, वहीं दूसरी ओर क्षेत्रीय इतिहास का योगदान भी उतना ही महत्वपूर्ण रहा है। किसी भी राष्ट्र का समग्र इतिहास तभी पूर्ण माना जा सकता है, जब उसमें स्थानीय स्तर पर घटित घटनाओं, संघर्षों और नायकों को भी समुचित स्थान दिया जाए, परन्तु दुर्भाग्यवश इतिहास लेखन की मुख्यधारा में क्षेत्रीय इतिहास को अपेक्षित महत्व नहीं मिल पाया है। परिणामस्वरूप अनेक ऐसे स्थानीय नायक, जिन्होंने अपने साहस, त्याग और संघर्ष से स्वतंत्रता आंदोलन को दिशा प्रदान की, इतिहास के पन्नों में उपेक्षित रह गए। 1757 से 1857 के मध्य ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों ने भारतीय समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला, जिसने अंततः व्यापक असंतोष को जन्म दिया, परिणामस्वरूप यही नीतियाँ 1857 के विद्रोह के प्रमुख कारणों में परिणत हुई। 10 मई 1857 को मेरठ

छावनी से विद्रोह भड़क उठा, जिसने अत्यंत व्यापक और उग्र स्वरूप धारण कर लिया। भदोही क्षेत्र में 1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि में जमींदारों एवं किसानों का गहरा असंतोष एक प्रमुख कारक के रूप में उभरकर सामने आता है। ज्ञानपुर से लगभग 8 किलोमीटर दूर स्थित पाली ग्राम में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्थापित नील की फैक्ट्री, औपनिवेशिक शोषण का एक सशक्त उपकरण बन चुकी थी।

इस व्यवस्था के अंतर्गत किसानों को जबरन नील की खेती करने के लिए बाध्य किया जाता था तथा उनसे बेगार के रूप में निःशुल्क श्रम भी लिया जाता था, जिससे उनके आर्थिक एवं सामाजिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और उनके भीतर तीव्र आक्रोश व्याप्त हो गया। इस व्यापक असंतोष को संगठित रूप प्रदान करने में स्थानीय जमींदार उदवंत सिंह, भोला सिंह तथा रामबख्श सिंह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुआली नामक स्थान के समीप, 'ठाकुर सभा सिंह के बाग' में नेतृत्वकर्ताओं के द्वारा एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया, जिसमें क्षेत्र के किसान एवं जमींदार एकत्रित हुए। इस सभा में सर्वसम्मति से यह ऐतिहासिक निर्णय लिया गया कि अब नील की खेती नहीं की जाएगी तथा अंग्रेजी शोषण के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध किया जाएगा। नाना साहब के सैनिकों ने जब स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बजाते हुए भदोही जनपद के गोपीगंज बाजार में प्रवेश किया। तब वहाँ का वातावरण पूर्णतः क्रांतिकारी उत्साह से ओत–प्रोत हो उठा, इस अवसर पर कुंवर उदवंत सिंह ने अपने सहयोगियों भोला सिंह एवं रामकरण सिंह के साथ उनका भव्य एवं उत्साहपूर्ण स्वागत किया। उस समय ज्ञानपुर–भदोही क्षेत्र की प्रशासनिक व्यवस्था मिर्जापुर के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट विलियम रिचर्ड म्योर के नियंत्रण में थी। जब नाना साहब के सैनिकों एवं स्थानीय नेतृत्व के बीच हुई इस महत्वपूर्ण भेंट की सूचना म्योर को प्राप्त हुई, तब उसने प्रत्यक्ष प्रतिशोध का मार्ग अपनाने के स्थान पर कूटनीति का सहारा लिया। उसने उदवंत सिंह, भोला सिंह एवं रामबख्श सिंह को समझौते के बहाने मिर्जापुर बुलाया, किन्तु उसकी वास्तविक मंशा किसी समझौते की नहीं, बल्कि छलपूर्वक उन्हें समाप्त करने की थी। परिणामस्वरूप कोई समझौता नहीं हो सका और तीनों वीरों को अपने प्राणों का बलिदान देना पड़ा। बताया जाता है कि उन्हें गोपीगंज बाजार के निकट जी.टी. रोड के किनारे एक इमली के वृक्ष पर फाँसी दे दी गई, जो अंग्रेजी दमन की क्रूरता का स्पष्ट उदाहरण है। आज उस स्थल पर वह इमली का वृक्ष तो विद्यमान नहीं है, किन्तु वहाँ एक प्रतीकात्मक मशाल स्थापित की गई है, जो उन वीरों के अमर बलिदान की स्मृति को जीवित रखती है। इस हृदयविदारक घटना ने समूचे क्षेत्र में तीव्र आक्रोश और असंतोष की ज्वाला भड़का दी, जिससे अंग्रेजी शासन के विरुद्ध व्यापक विद्रोह और उग्र हो उठा। मोइनुद्दीन हसन की कृति (जिसका हिंदी अनुवाद अब्दुल हक द्वारा किया गया) के आधार पर यह ज्ञात होता है कि 1857 के पूर्व ही बनारस के निकट स्थित गोपीगंज क्षेत्र में राजनीतिक और सामाजिक वातावरण अत्यंत संवेदनशील एवं तनावपूर्ण हो चुका था।

पुस्तक में वर्णित प्रथम प्रसंग के अनुसार, तत्कालीन अंग्रेज मजिस्ट्रेट को यह सूचना प्राप्त हुई कि कुछ सशस्त्र सैनिक उस क्षेत्र से गुजर रहे हैं। संदेह के आधार पर उन्हें घेर लिया गया, किंतु जांच में यह स्पष्ट हुआ कि वे विद्रोही नहीं, बल्कि अपने ही सैन्य दल की ओर जा रहे सैनिक थे। यद्यपि यह घटना बिना किसी संघर्ष के समाप्त हो गई, तथापि इसके पश्चात घटित घटनाक्रम औपनिवेशिक शासन की दमनात्मक प्रवृत्ति को उजागर करता है। उसी माह के अंत में पुनः यह सूचना प्राप्त हुई कि गोपीगंज के समीप कुछ उपद्रवी तत्व एकत्रित हो रहे हैं। इस सूचना पर मजिस्ट्रेट सैनिकों एवं चौकीदारों के साथ तत्काल वहाँ पहुँचा, परंतु कोई संदिग्ध व्यक्ति

नहीं मिला। स्थानीय ग्रामीणों से पूछताछ करने पर यह संकेत मिला कि संभावित विद्रोहियों को गाँव वालों ने छिपा दिया है। इस संदेह के आधार पर मजिस्ट्रेट ने अत्यंत कठोर और अन्यायपूर्ण कदम उठाते हुए पूरे गाँव में आग लगवा दी। इस अमानवीय कार्रवाई के परिणामस्वरूप निर्दोष ग्रामीणों को अपने प्राणों की रक्षा हेतु जंगलों की ओर पलायन करना पड़ा। इसके उपरांत मजिस्ट्रेट पाली गाँव पहुँचा और अन्य गाँवों के विरुद्ध भी दंडात्मक कार्यवाहियों के आदेश जारी किए।

इस प्रकार के निरंतर दमन और अत्याचार ने ग्रामीण समाज के भीतर गहरे आक्रोश को जन्म दिया। अंततः ग्रामीणों ने संगठित होकर मजिस्ट्रेट को घेर लिया। उसके साथ आए सैनिक और चौकीदार स्थिति की गंभीरता को देखते हुए भाग खड़े हुए, जबकि मजिस्ट्रेट अपने आवास में ही घिर गया। परिणामस्वरूप, ग्रामीणों ने उसे तथा उसके सहयोगियों जिनमें प्रमुख रूप से जॉन साहब (नील से संबंधित अधिकारी) सम्मिलित थे, का वध कर दिया। इस घटना की सूचना बचकर निकले सैनिकों द्वारा उच्च अधिकारियों को दी गई, जिसके बाद अंग्रेजी शासन ने पुनः उस क्षेत्र में कठोर दमनात्मक अभियान चलाया, जिसमें अनेक ग्रामीणों को मृत्युदंड दिया गया। यह संपूर्ण घटनाक्रम स्पष्ट करता है कि औपनिवेशिक शासन की क्रूर नीतियों ने किस प्रकार जनसामान्य को विद्रोह के लिए प्रेरित किया।

द्वितीय प्रसंग में उदवंत सिंह, भोला सिंह तथा रामबक्श सिंह को धोखे से दी गई फाँसी के उपरांत क्षेत्र में व्याप्त आक्रोश का उल्लेख मिलता है। उदवंत सिंह की पत्नी रत्ना कुँवारी ने अपने देवर झूरि सिंह को प्रेरित करते हुए अंग्रेज अधिकारी रिचर्ड मूर की हत्या कर प्रतिशोध लेने का आह्वान किया। फलस्वरूप 3 जुलाई 1857 को एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें लगभग 50 ग्रामीणों ने भाग लिया। इस सभा में शीतल पाल की उपस्थिति भी उल्लेखनीय थी। विचार–विमर्श के उपरांत यह निर्णय लिया गया कि 4 जुलाई 1857 को अंग्रेजी अत्याचारों का प्रतिकार किया जाएगा। संयोगवश उसी समय पाली स्थित नील कारखाने की कोठी में रिचर्ड मूर अपने परिवार सहित उपस्थित था। निर्धारित तिथि को ग्रामीणों ने संगठित होकर उस कोठी को घेर लिया। भारतीय सांस्कृतिक मर्यादाओं का पालन करते हुए मूर की पत्नी को कोई क्षति नहीं पहुँचाई, किंतु रिचर्ड मूर तथा उसके दोनों बच्चों की हत्या कर दी। जब मूर ने भीड़ को देखा, तो वह भयवश कोठी के पिछले द्वार से भागने का प्रयास करने लगा, किंतु शीतल पाल ने अपनी सूझबूझ और साहस का परिचय देते हुए उसे घोड़े से नीचे गिरा दिया, जिसके पश्चात झूरि सिंह ने उसका वध कर दिया। यह घटना इस बात का प्रमाण है कि इस क्षेत्र में विद्रोह केवल योजनाबद्ध ही नहीं, बल्कि सामूहिक साहस और सक्रिय भागीदारी का परिणाम था। अतः गोपीगंज और पाली क्षेत्र की ये घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि 1857 का विद्रोह एक बहुआयामी जन–आंदोलन था, जिसमें स्थानीय नेतृत्व, ग्रामीण एकता और औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोध की भावना का अद्वितीय संगम देखने को मिलता है।

शीतलपाल : जीवन और व्यक्तित्व :

सुरियावां क्षेत्र के अंतर्गत स्थित पाली गाँव में अमर शहीद शीतल पाल का जन्म 9 सितम्बर 1797 ईस्वी को एक साधारण गड़ेरिया परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम जगदेव पाल तथा माता का नाम रामदेई था। शीतल पाल का विवाह चौरा देवी के साथ संपन्न हुआ, इनसे उन्हें एक सुपुत्र की प्राप्ति हुई। पाली (भदोही) क्षेत्र के 1857 संबंधी घटनाक्रमों के अध्ययन से यह तथ्य विशेष रूप से उभरकर सामने आता है कि अनेक स्थानीय

वीरों का योगदान इतिहास–लेखन में समुचित रूप से परिलक्षित नहीं हो सका है। शीतल पाल इसी संदर्भ में एक महत्वपूर्ण किंतु अपेक्षाकृत उपेक्षित व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं। क्षेत्रीय सर्वेक्षण के अंतर्गत फरवरी 2024 में पाली गाँव का भ्रमण इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस दौरान शोधपरक उद्देश्य से हम लोगों ने क्षेत्रीय साक्षात्कार किए। इस क्रम में अमर शहीद झूरि सिंह के परिवार से संबंधित डॉ. रामेश्वर सिंह से भेंट हुई, जिन्होंने पारिवारिक परंपराओं और मौखिक इतिहास के आधार पर अनेक महत्वपूर्ण जानकारियाँ साझा कीं। इसी दौरान लगभग 95 वर्षीय स्थानीय निवासी मुन्नीलाल जी से भी विस्तृत बातचीत की गई। उनके कथनों में झूरि सिंह के साहस और नेतृत्व से संबंधित अनेक प्रसंग प्रमुखता से उभरकर सामने आए, किंतु शीतल पाल के संदर्भ में जानकारी अपेक्षाकृत सीमित रही। इस संदर्भ में जब शीतल पाल की वंश परंपरा से जुड़े उनके छठी पीढ़ी के वंशज राजेश पाल से भेंट की गई, तब अनेक ऐसे तथ्य प्रकाश में आए, जो उनके योगदान की ऐतिहासिकता और महत्त्व को अधिक स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं। उन्होंने बताया कि, शीतल पाल का जीवन अत्यंत सरल, श्रमसाध्य तथा ग्रामीण परिवेश से गहराई से जुड़ा हुआ था। वे अपनी आजीविका के लिए भेड़–बकरी पालन का कार्य करते थे, जो उस समय स्थानीय अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख साधन था। इसी क्रम में एक उल्लेखनीय घटना का उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार कुछ मांसाहारी अंग्रेज सैनिकों ने उनके बकरों में से दो बकरों को बलपूर्वक छीनकर अपने साथ ले गए। अतः यह स्पष्ट होता है कि अंग्रेजों के प्रति शीतल पाल के मन में उत्पन्न विरोध की भावना केवल राष्ट्रभक्ति से प्रेरित नहीं थी, बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर अनुभव किए गए अन्याय और उत्पीड़न ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उपरोक्त समस्त घटनाओं और उपलब्ध स्रोतों के सम्यक् विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पाली–गोपीगंज क्षेत्र में 1857 के विद्रोह का स्वरूप आकस्मिक न होकर क्रमशः विकसित हुआ जन–असंतोष का परिणाम था। शीतल पाल के साहसिक कृत्य ने न केवल तत्कालीन संघर्ष की दिशा को प्रभावित किया,बल्कि उन्हें औपनिवेशिक सत्ता के प्रतिशोध का भी सामना करना पड़ा। उनके इस कार्य के परिणामस्वरूप उनके परिजनों को अंग्रेजी दमन और आतंक के भय से अपना घर छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा, यद्यपि उनकी माता वहीं निवास करती रहीं। मातृस्नेह के कारण शीतल पाल जब गुप्त रूप से उनसे मिलने अपने घर पहुँचे, तो किसी व्यक्ति द्वारा अंग्रेजों को इसकी सूचना दे दी गई। परिणामस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। अंततः अंग्रेजी शासन ने उन पर जेम्स रिचर्ड्स तथा अन्य अंग्रेज अधिकारियों की हत्या का आरोप लगाते हुए 23 मार्च 1858 को गोपीगंज में, तिराहे के समीप एक इमली के वृक्ष पर उन्हें फाँसी दे दी। इस प्रकार एक वीर सपूत ने मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पाली क्षेत्र के 1857 संबंधी इतिहास के पुनर्पाठ की आवश्यकता है, जिसमें शीतल पाल जैसे उपेक्षित किंतु महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्वों के योगदान को समुचित स्थान दिया जाए। इस प्रकार के क्षेत्रीय अध्ययन और मौखिक इतिहास के संकलन से न केवल ऐतिहासिक तथ्यों का पुनर्संयोजन संभव होता है, बल्कि इतिहास को अधिक समावेशी और यथार्थपरक स्वरूप भी प्रदान किया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि पालीदृगोपीगंज क्षेत्र की घटनाएँ 1857 का विद्रोह के उस स्वरूप को स्पष्ट करती हैं, जिसमें ग्रामीण समाज की सक्रिय भागीदारी, स्थानीय नेतृत्व की भूमिका तथा औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोध का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। शीतल पाल जैसे वीरों का बलिदान इतिहास के पृष्ठों में भले

ही अपेक्षाकृत कम अंकित हुआ हो, किंतु उनके त्याग और संघर्ष ने स्वतंत्रता की उस चेतना को जागृत किया, जिसने आगे चलकर समूचे राष्ट्र को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। ऐसे वीर सपूत भले ही शारीरिक रूप से इस संसार से विदा हो गए हों, परंतु उनका योगदान और उनकी स्मृति भारतीय जनमानस में सदैव अमर रहेंगे।

संदर्भ :

1. जी. बी. मालेसन, द इंडियन म्यूटिनी ऑफ 1857, लंदन : सेले सर्विस एंड कंपनी लिमिटेड, लन्दन, 1912, पृ. 87
2. डॉ. रामसुधार सिंह, क्षत्रिय मित्र, "हम भूल न जाएँ इनको",1857 के महान क्रांतिनायक अमर शहीद ठाकुर झूरी सिंह : रामेश्वर सिंह, प्राचीन छात्र एसोसिएशन, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी, पृ. 42
3. डॉ. क्षमा शंकर पांडेय, स्मृति और यथार्थ : 1857, "1857 के स्वतंत्रता संग्राम को भदोही की देन : डॉ. राजकुमार पाठक, अभिनव भारती प्रकाशन, प्रथम संकरण : 2007, पृ. 69
4. डॉ. राजकुमार पाठक, विंध्य वैभव, अमर शहीद झूरी सिंह : 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के महान योद्धा अशोक कुमार शाही, विंध्य महोत्सव समिति, मिर्जापुर, 1999, पृ. 60
5. शमशेर बहादुर सिंह, भदोही का जनपदीय इतिहास, मौनस राजवंश प्रकाशन समिति, कोट, बनकट खास, बरईपुर, भदोही, पृ. 51
6. मोइनुद्दीन हसन, गदर : 1857 (आंखों देखा विवरण), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण, 2006, पृ. 96
7. पद्मिनी श्वेता सिंह, उत्तर प्रदेश का स्वतंत्रता संग्राम : भदोही, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 55
8. प्रो. बालकेश्वर मनीषा, पाली का लालरू अमर शहीद शीतल पाल, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, 2022–2023–2023–2024, पृ. 7

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
April 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 51-67

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Deendayal Upadhayay's Vision of Social Harmony Reflected in India's Inclusive Development Schemes

Mohar Singh, Research Scholar

Deendayal Upadhayay Chair, HP University Summer Hill, Shimla -05

ABSTRACT :

India's contemporary inclusive development schemes increasingly seek to strengthen social cohesion by securing basic dignities and reducing structural vulnerability among groups historically left behind. This paper examines how far this evolving welfare architecture aligns with Pandit Deendayal Upadhyaya's vision of social harmony, rooted in Integral Humanism and the ethical priority of Antyodaya, the rise of the last person. It interprets major initiatives in food security, financial inclusion, rural and urban livelihoods, health protection, clean cooking energy, farmer income support and urban housing as more than administrative delivery mechanisms, and reads them as practical arenas where the moral test of centring the weakest is applied in policy practice. The analysis shows that Upadhyaya's philosophical framework finds concrete resonance in the attempt to build dignity based social citizenship through targeted and mission driven entitlements, with official data indicating expanding coverage and institutional consolidation across schemes such as Antyodaya Anna Yojana under National Food Security Act (NFSA), Pradhan Mantri Jan-Dhan Yojana (PMJDY), Deendayal Antyodaya Yojana - National Rural Livelihoods Mission (DAY NRLM), Deendayal Antyodaya Yojana - National Urban Livelihoods Mission (DAY NULM), Ayushman Bharat - Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana (AB PM JAY), Pradhan Mantri Ujjwala Yojana (PMUY), Pradhan Mantri Kisan Samman Nidhi (PM KISAN) and Pradhan Mantri Awas Yojana - Urban 2.0 (PMAY U 2.0). The paper concludes that, taken together, these initiatives represent a pragmatic Antyodaya oriented pathway for reducing structural deprivation and nurturing social cohesion, while still leaving a critical agenda of strengthening last mile inclusion, ensuring dignity in implementation and deepening community centred institutions if India is to more fully realise Upadhyaya's ideal of social harmony.

Keywords : *Integral Humanism; Antyodaya; Social Harmony; Inclusive Development; Public Policy; Deendayal Upadhyaya; Welfare Schemes; Social Justice*

Introduction :

India's post-independence developmental journey has consistently negotiated the tension between economic growth and social justice. In the early planning decades, the Indian state privileged heavy industry, public sector expansion and large-scale infrastructure, based on the belief that rapid growth would eventually 'trickle down' to the poor. With the 1991 economic reforms, the emphasis shifted towards markets, competitiveness and macro-economic stability, as liberalisation, privatisation and globalisation redefined the grammar of policy. In the more recent phase, however, this growth-centred narrative has been overlaid by a stronger language of inclusive development. This reflects an explicit recognition that growth by itself neither guarantees distributive justice nor social cohesion, and that deliberate state intervention is required to secure food, housing, health, livelihoods, financial access and social protection for vulnerable groups through targeted and quasi-universal schemes (Virmani, 2023: 2-12).

Viewed purely in administrative or technocratic terms, these initiatives appear mainly as anti-poverty tools or service delivery mechanisms. They are evaluated in terms of coverage, cost, leakages and efficiency. Yet India also possesses rich indigenous traditions of political and ethical thought which offer deeper criteria for judging such interventions. Among these, Pandit Deendayal Upadhyaya's doctrine of Integral Humanism and his ethical insistence on Antyodaya (the rise of the last person) are particularly significant. Together, they ask us to go beyond questions of administrative performance and to consider whether public policy truly respects the integral dignity of the human person, strengthens the organic unity of society, and consciously places the weakest at the centre of concern (Promila and Singh, 2021: 152-153).

Seen in this light, India's evolving welfare and inclusion architecture can be understood as a practical testing ground for Upadhyaya's vision of social harmony. Each major scheme, whether in food security, livelihoods, financial inclusion, health protection or housing, becomes an opportunity to examine whether the emerging model of inclusive development is moving towards a dharma-guided, Antyodaya-oriented order, or whether it is merely managing poverty without transforming underlying relationships of exclusion and vulnerability. This research paper is situated precisely at that intersection, using Deendayal Upadhyay's ideas as a normative lens to interpret India's inclusive development schemes and to assess how far they reflect, approximate or fall short of his vision of social harmony (Sharma, 2025: 169-172).

Objectives of the Study :

1. To examine Upadhyaya's conception of social harmony within Integral Humanism and Antyodaya, and to identify its core ethical and social principles.

2. To analyse major Indian inclusive development schemes using recent official data, in order to assess their congruence with this Antyodaya-oriented vision of social harmony.
3. To identify key implementation gaps and limitations that restrict last-mile inclusion and Antyodaya-oriented outcomes, and to suggest policy directions aligned with Integral Humanism.

Research Methodology :

This paper uses a qualitative, interpretive research methodology based entirely on secondary sources to relate Deendayal Upadhyaya's vision of social harmony, grounded in Integral Humanism and Antyodaya, to India's inclusive development framework. First, his ideas on the four-dimensional human person, the organic nature of society and nation, the primacy of dharma and the ethical priority of the last person are reconstructed from the Integral Humanism lectures and major scholarly writings and adopted as the central analytical lens. On this conceptual basis, major Union welfare and inclusion schemes are examined through document-based policy analysis of official Acts, scheme guidelines, mission documents, Press Information Bureau releases and recent coverage indicators, which are synthesised in a consolidated table and simple figures to illustrate scale and reach. Rather than attempting econometric impact evaluation, the methodology provides a concise, conceptually grounded and data supported assessment of how far the present inclusive development architecture prioritises the weakest, secures basic dignities, strengthens decentralised and community institutions and reduces structural vulnerability in line with an Antyodaya oriented social harmony.

Upadhyaya's Conception of Social Harmony within Integral Humanism and Antyodaya :

Deendayal Upadhyaya's vision of social harmony is rooted in his philosophical doctrine of Integral Humanism, articulated in his four lectures delivered in Bombay in 1965 and later published by the Deendayal Research Institute. In these lectures, he argues that India cannot simply imitate Western capitalism or socialism, because those systems view only fragments of reality, either the isolated individual or the economic class, while neglecting the full, many-sided nature of the human person and the organic character of society. Any social order that begins from a partial view of the human being, he suggests, will ultimately produce conflict, alienation and imbalance rather than genuine harmony.

At the centre of Integral Humanism is a distinctive understanding of the human person. Upadhyaya describes the human being as an integrated unity of body, mind, intellect and soul, linked to the classical *puru?artha* framework of Indian thought: *artha* (material well-being), *kama* (legitimate desire), *dharma* (moral duty) and *mok?a* (spiritual liberation. A truly humane and harmonious order must allow all four dimensions to develop in a balanced way. If a system satisfies

bodily needs and material desires but starves the mind, corrupts the intellect or severs the link with any higher purpose, it may appear prosperous outwardly but inwardly generates emptiness, anxiety and social tension. Conversely, an order that preaches spirituality while ignoring hunger, disease and unemployment remains incomplete and unjust. Social harmony is therefore inseparable from the integral development of the whole person, not just economic advancement (Sai, 2024: 232-236).

From this interior starting point, Upadhyaya moves to a parallel view of society and nation. Society is not, in his eyes, a random crowd of individuals competing for self-interest, nor merely a battlefield of economic classes. He compares it to a living organism whose parts, families, occupational groups, regions, castes, professional bodies and cultural communities, are functionally different yet mutually dependent (Upadhyaya, 1965/2014: 24–27). Just as the human body has eyes, hands, heart and brain, each with its own role but all belonging to one living whole, so a nation consists of diverse groups that must work in coordination rather than in permanent hostility. Differences of function or role may exist, but no part of this organism should be condemned to perpetual inferiority, degradation or exclusion. A society in which one section thrives by crushing another is, for him, fundamentally diseased, whatever its outward achievements. Social harmony therefore means a condition in which all parts of the social body can perform their legitimate roles with dignity, without exploitation or humiliation (Kumari, 2024: 76-79).

To explain how this organism holds together, Upadhyaya introduces the concepts of chiti and virat. *Chiti* is the inner civilisational soul of the nation, the shared value-system, moral intuition and cultural memory that give a people its identity. *Virat* is the outward, institutional expression of this inner soul, the state, the legal system, customs, organisations and public life. Laws and institutions, in his view, should give concrete form to this deeper ethical and cultural consciousness. When institutions reflect *chiti* and are guided by it, they promote harmony; when they break away from it and pursue only power, expediency or material gain, they become sources of fragmentation and injustice ((Upadhyaya, 1965/2014; Sai, 2024: 232-236).

From here, Upadhyaya asserts the supremacy of dharma in the ordering of society. By *dharma*, he does not mean a narrow sectarian creed, but the universal moral law that sustains both individual life and the social organism, the obligation to protect the weak, to restrain greed, to act truthfully, to honour responsibilities. The state is a necessary and powerful organ of the national body, but it is not supreme; it is itself subject to dharma. When the state recognises this and acts as a guardian of dharma rather than as an absolute sovereign, the result is Dharma Rajya - a moral–constitutional order in which power is limited by ethical law, and in which policies and actions are continuously measured against standards of justice and duty. Social harmony, from this vantage point, requires that

both rulers and citizens internalise the primacy of dharma so that fear, arbitrariness and majoritarian arrogance do not become the basis of social relations (Upadhyaya, 1965/2014; Sharma, 2025: 169-172).

Within this framework, harmony operates at several interconnected levels. At the personal level, it means that individuals are not crushed by poverty and insecurity nor swept away by uncontrolled desire; there is a balance of bodily well-being, emotional stability, moral responsibility and spiritual aspiration. At the social level, it means that relations between groups are based on cooperation and mutual respect rather than entrenched antagonism. Upadhyaya explicitly rejects the idea that class conflict is 'natural' and must permanently drive history; he treats such thinking as a symptom of a decaying civilisation, not a universal law. At the national level, harmony implies that different languages, regions, castes and faiths understand themselves as parts of a single civilisational family, bound together by dharma rather than by fear, compulsion or the arithmetic of temporary majorities. Diversity is not suppressed, but is held together within a higher sense of unity and common purpose (Kumar and Kumar, 2025: 644-646).

Within this broader philosophy, Antyodaya gives social harmony a clear ethical direction. Literally meaning *'the rise of the last person,'* Antyodaya sharpens the idea of harmony by specifying the standpoint from which the health of the social organism must be judged. Upadhyaya's contention is that the true measure of any social order is not how the most successful or powerful live, but how the person at the very bottom fares - the landless labourer, the marginal farmer, the slum dweller, the oppressed caste woman, the tribal family in a remote area, the informal worker without security. If these *'last'* persons remain trapped in hunger, chronic debt, preventable illness, insecure shelter or social humiliation, then the organism is sick, no matter how affluent or stable its upper layers may appear (Sharma, 2025: 169-172).

Antyodaya therefore has two crucial implications. First, it establishes the priority of the weakest in moral concern. The poorest and most marginalised are not simply one category among many; they are the first claimants on social attention and public effort. A harmonious society is one that consciously tilts its sympathies and resources towards those who have been historically excluded or neglected. Second, Antyodaya transforms the criterion of success. Instead of celebrating aggregate growth or national prestige, it asks whether the most deprived sections have actually experienced improvement in security, dignity and participation in common life. If the answer is no, harmony has not been realised, regardless of impressive statistics (Sharma, 2025: 169-172).

Because his vision is centred both on the whole person and on the last person, Upadhyaya also emphasises decentralisation and community life as foundations of social harmony. Villages,

neighbourhoods, local associations, self-help groups and voluntary organisations are seen as the primary spaces where everyday cooperation, mutual aid and conflict resolution occur. When these local bodies are strong, participatory and guided by dharma, they weave a dense fabric of trust and responsibility, making harmony a lived experience for ordinary people. When everything is centralised in distant bureaucracies, society risks becoming a loose collection of isolated individual's dependent on impersonal structures, with weaker bonds of solidarity. A harmonious order therefore encourages local initiative and self-reliance while ensuring that the state supports the natural organs of the social body rather than suffocates them.

Taken together, Integral Humanism and Antyodaya present social harmony as a condition in which the integral dignity of every person, and especially the last person, is secured within an ethically ordered, culturally rooted and decentralised social whole. The human being is treated as a four-dimensional personality, society and nation are understood as living organisms guided by dharma, power is morally restrained, conflict and humiliation are rejected as permanent principles, and the weakest become the moral centre of concern (Das, 2025: 59-62).

Linking Vision and Policy: From Philosophical Framework to Inclusive Schemes :

This philosophical framework does not remain in the realm of abstraction. It implicitly sets out normative criteria for evaluating development policies and welfare programmes. If social harmony requires integral human development, protection of every limb of the social organism, moral restraint of power and the uplift of the last person, then India's development strategy must be judged not merely by how much it spends or how fast Gross domestic product (GDP) grows, but by how far its institutions and schemes embody these requirements (Lavanya, 2023: 1837-1844).

In practical terms, this means asking questions such as: Do public policies secure basic needs such as food, health, shelter, livelihood, financial security as matters of dignity for those at the bottom? Do they strengthen community institutions and local capacities, in line with Upadhyaya's stress on decentralisation? Do they reduce structural vulnerabilities and humiliation, or do they leave deep pockets of deprivation untouched? Do they treat the poor as passive recipients of charity, or as participants in a shared national project? (Kumar, 2025: 1–10).

Over the last two decades, the Indian state has constructed a broad architecture of inclusive development schemes across multiple domains: food security, rural and urban livelihoods, financial inclusion, clean cooking energy, health protection, farmer income support and urban housing. Each of these policy spheres corresponds, in different ways, to elements of Upadhyaya's vision: food and nutrition to the bodily basis of dignity; livelihoods and financial inclusion to self-reliance and participation in the social organism; health security and housing to protection from catastrophic

risks and to stable belonging; women's empowerment and community-based organisations to decentralisation and social capital. Read through the lens of Integral Humanism and Antyodaya, these are not merely sectoral interventions but potential instruments for realising a more harmonious, dharma-guided social order (Lavanya, 2023: 1839-1844).

At the same time, Antyodaya requires that these schemes be viewed from below, from the standpoint of the last person. It demands attention to issues of coverage, access, quality and local institutional capability: Are the *'poorest of the poor'* actually reached? Are women, Dalits, Adivasis, informal workers and marginal farmers able to use these schemes effectively? Are community structures such as self-help groups, collectives, local bodies empowered or bypassed? These questions provide the bridge from Upadhyaya's conceptual vision to the concrete examination of India's inclusive development schemes (Kumar, 2025: 1-10).

Reflection of Upadhyaya's Vision in Major Inclusive Development Schemes :

1. Antyodaya Anna Yojana (AAY) under NFSA :

Antyodaya Anna Yojana was launched on 25 December 2000 by the Government of India to provide highly subsidised foodgrains to the 'poorest of the poor' families, and it was later integrated into the framework of the National Food Security Act, 2013 (Mayilvaganan and Varadarajan, 2021: 179-182; NFSA: 2013).

Conceptually, this scheme is the clearest policy embodiment of Antyodaya, that is, the rise of the last person in society, which is central to Deendayal Upadhyaya's Integral Humanism. In his 1965 Bombay lectures, Upadhyaya argued that any system of governance guided by *Dharma* must first secure the basic needs of those at the very bottom, otherwise talk of development and harmony remains hollow (Singh, 2025: 187-194).

By legally prioritising the poorest category and guaranteeing them food security, AAY translates this moral test into state policy. It reflects a view of social harmony in which no person should suffer from hunger simply because of structural poverty, and where the success of the system is judged first from the vantage point of the weakest.

2. Deendayal Antyodaya Yojana – National Urban Livelihoods Mission (DAY NULM) :

The National Urban Livelihoods Mission (NULM) was launched in 2013 by the Ministry of Housing and Urban Affairs to reduce poverty and vulnerability among the urban poor through skill development, self-employment, wage employment and shelters. It was later named Deendayal Antyodaya Yojana - National Urban Livelihoods Mission (DAY NULM), explicitly honouring Upadhyaya's Antyodaya philosophy.

In terms of this research paper title, DAY NULM reflects Upadhyaya's organic view of society in a rapidly urbanising context. Instead of seeing the urban poor only as casual labour or encroachers, the mission seeks to organise them into self-help groups, federations and collectives, provide skill training, support micro enterprises and establish dignified shelters for the urban homeless.

This approach resonates with Integral Humanism, which emphasises that social harmony requires strong, value-based community institutions rather than mere top-down administration. Urban poor households become active participants in the social and economic life of the city, which reduces feelings of exclusion and creates the conditions for more stable and cohesive urban communities (Barman and Laloi, 2020: 1148-1155).

3. Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY) :

Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana was announced on 15 August 2014 and formally launched on 28 August 2014 as a national mission on financial inclusion. It aims to provide a basic savings bank account to every unbanked adult, with facilities such as RuPay debit card, accident insurance, and direct benefit transfer capability (Department of Financial Services, 2014: 1–2)

From the perspective of Deendayal Upadhyaya's social harmony, PMJDY is not just a banking reform. It is a way of recognising the poor person as a full economic citizen. Integral Humanism puts the human being, not the state or market, at the centre of development, and insists that each person should be able to participate in the social organism with dignity (Kumari, 2024: 46-80).

By opening institutional doors for those previously excluded from the formal financial system, PMJDY reduces a subtle but powerful form of exclusion. The same household that appears in welfare databases is now visible in the banking system with a name and account. This deepens the integration of the last person into national life, which is essential for the kind of cohesive society Upadhyaya envisaged (Ahmed, 2023: 329-333).

4. Deendayal Antyodaya Yojana - National Rural Livelihoods Mission (DAY NRLM) :

The National Rural Livelihoods Mission (NRLM) was launched in 2010 by restructuring the earlier Swarnajayanti Gram Swarozgar Yojana. In March 2016, it was renamed Deendayal Antyodaya Yojana – National Rural Livelihoods Mission (DAY NRLM) with effect from 29 March 2016.

DAY NRLM's strategy is to mobilise rural poor households, especially women, into self-help groups and federations, and link them with banks, skills and livelihood opportunities. This directly reflects Upadhyaya's idea that society is not a mere aggregate of individuals but an organic entity where harmony arises when each part performs its role in coordination with others. Self-help groups, village organisations and cluster federations are classic examples of living institutions of the poor

(Ministry of Rural Development, 2010: 1–3).

In Integral Humanism, decentralisation and community self-reliance are core principles. DAY NRLM embodies this by shifting rural development from a purely beneficiary based model to one where the poor themselves, organised in local institutions, plan, implement and monitor their own progress. This builds social capital, mutual trust and collective agency, which are key ingredients of social harmony in Upadhyaya's vision (Ministry of Rural Development, 2010: 1–3; Das, 2025: 59-62).

5. Pradhan Mantri Ujjwala Yojana (PMUY) :

Pradhan Mantri Ujjwala Yojana was launched on 1 May 2016 to provide deposit free LPG connections to adult women from poor households, with the aim of replacing traditional cooking fuels such as firewood and dung cakes with clean cooking energy.

Upadhyaya's Integral Humanism treats the human person as an integrated unity of body, mind, intellect and soul, and insists that development must respect all these dimensions. PMUY contributes to this vision by addressing the bodily health, mental wellbeing and dignity of women who previously cooked in smoke filled kitchens and spent long hours on fuel collection.

From the standpoint of social harmony, clean cooking fuel is not a small technical facility. It changes gender relations within the household, frees time for education or income generation, reduces health disparities and signals that the State recognises the domestic sphere of poor women as a legitimate site of public concern. This is precisely the type of human centred, dignity-oriented inclusion that Upadhyaya's thought demands (Ahmad, Sharma and Singh, 2018: 46-48; Sai, 2024: 232-236).

6. Ayushman Bharat - Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana (AB PM JAY) :

Ayushman Bharat – Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana was launched in 2018 as part of the broader Ayushman Bharat programme to provide health assurance up to ?5 lakh per family per year for secondary and tertiary care hospitalisation to poor and vulnerable families (NHA, 2021: 1-5).

In Deendayal Upadhyaya's scheme of Integral Humanism, the State governed by *Dharma* has a responsibility to protect citizens from catastrophic risks that they cannot handle alone, and health shocks are one of the most devastating such risks. AB PM JAY reflects this by treating serious healthcare needs of the poor as a matter of public assurance, not a private gamble.

By offering cashless treatment at empanelled hospitals, the scheme helps prevent medical crises from turning into long term debt and social breakdown. This contributes to social harmony in at least two ways: it reduces the insecurity and fear among vulnerable families, and it reinforces the

idea that even the poorest have an equal claim to life saving treatment within the national community (Chellaiyan, Rajasekar and Teneja, 2020: 337-338; Kumari, 2025: 76-79).

7. Pradhan Mantri Kisan Samman Nidhi (PM KISAN) :

Pradhan Mantri Kisan Samman Nidhi (PM KISAN) was announced in the Union Budget of February 2019 and formally launched on 24 February 2019 as a central sector scheme that provides ?6,000 per year in three instalments to eligible farmer families through direct benefit transfer (Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, 2023)

For Upadhyaya, the farmer and the village are central to the national organism. He repeatedly stressed that India's development must not sacrifice rural life and agriculture to purely urban industrial models. PM KISAN offers a modest but predictable income support, signalling that small and marginal farmers are not disposable producers but dignified citizens whose economic security matters.

In the context of social harmony, this regular support helps smooth consumption, reduce distress borrowing and recognise the contribution of farmers to national life. It is consistent with an Antyodaya approach where economic policy is judged by what it does for the most vulnerable cultivators rather than only for large agribusiness or urban consumers (Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, 2023; Kumari, 2025: 76-79).

8. Pradhan Mantri Awas Yojana – Urban and PMAY U 2.0 :

Pradhan Mantri Awas Yojana – Urban (PMAY U) was originally launched on 25 June 2015 under the 'Housing for All' mission to provide affordable pucca houses to eligible urban families (Halder and Koley, 2024: 15). In the Union Budget 2024, the Government announced PMAY U 2.0, with guidelines issued in September 2024, to address the housing needs of about one crore urban poor and middle-class families over the next five years, with a large planned investment and central assistance (PIB, 2024).

In Deendayal Upadhyaya's vision, a house is not merely real estate. It is a stable base for integral human development and a symbol of belonging in the national community. Insecure, informal or slum housing keeps people in a state of permanent vulnerability and social distance, which undermines harmony.

By working towards secure, disaster resilient and affordable housing for the urban poor, PMAY U and its second phase aim to convert marginalised urban residents into settled, recognised stakeholders in the city. This supports the movement from a fragmented society to the kind of integrated national organism that Integral Humanism describes, where even the last family has a secure place to live (PIB, 2024; Das, 2025: 59-62).

Major Inclusive Development Schemes in India and Their Antyodaya/Social Harmony Linkages

Schemes	Lauch/ Recast	Domain	Core entitlement / objective	Latest Scale Indicator (with date)
Antyodaya Anna Yojana (AAY) under NFSA	AAY 2000; NFSA 2013	Food security	Poorest of the poor households for guaranteed food	35 kg foodgrains per AAY household per month (NFSA entitlement). Free foodgrains distribution extended for 5 years from 1 Jan 2024 with outlay about ?11.80 lakh crore (NFSA, 2013).
DAY-NULM	2013	Urban livelihoods	Skill, self-employment, shelters & inclusion for urban poor	Till 30 Sept 2024: Over 1 crore urban poor women mobilised into ~9.96 lakh SHGs; ~39.39 lakh livelihoods created; 1,994 shelters with capacity ~1.41 lakh (PIB, 2024, Dec. 2020).
PMJDY	2014	Financial inclusion	Universal banking + DBT ecosystem	As on 13 Aug 2025: 56.16 crore accounts; 55.7% women (31.31 crore); 66.7% rural/semi-urban (37.48 crore); deposits ~?2.68 lakh crore (PIB, 2025, Aug. 28).
DAY-NRLM	Renamed 29 Mar 2016	Rural livelihoods	Women SHGs through credit + enterprise + social capital	As of 5 Dec 2025: 10.20 crore households mobilised into SHGs . Women SHGs have accessed ~?10.20 lakh crore bank credit (PIB, 2025, March 18).
PMUY	May 2016	Clean cooking energy	Deposit-free LPG connections to poor women	~10.33 crore PMUY connections as on 01.07.2025 / 01.11.2025 (PIB, 2025, Aug. 8).
AB PM-JAY	2018	Health protection	?5 lakh/family health cover for vulnerable	Over 41 crore Ayushman cards as on 25 Jul 2025 (PIB, 2025, July 25). More than 42 crore cards issued as on 28 Oct 2025 (PIB, 2025, Nov. 1).
PM-KISAN	2019	Farmer income support	?6,000/year to eligible farmer families	21st instalment on 19 Nov 2025: ?18,000 crore transferred to ~9 crore farmers . By 20 instalments, ?3.70+ lakh crore disbursed to 11+ crore farmer families (PIB, Nov. 2025).
PMAY-U 2.0	01 Sept 2024	Urban housing	Affordable housing for eligible urban families	Target: 1 crore urban poor & middle -class families assisted over next 5 years (PIB, 2024, Aug.).

This table shows how India's inclusive development architecture can be interpreted through Deendayal Upadhyaya's vision of social harmony, by linking each major welfare domain to an Antyodaya oriented ethic of dignity, security and participation. It shows that social harmony is pursued not as a vague cultural ideal but as a concrete policy strategy that tackles everyday sites of hunger, illness,

housing insecurity and economic exclusion. A clear progression appears, in which food security, basic health protection and affordable housing together create a minimum dignity floor without which trust and cooperation cannot be sustained. On this foundation, measures of financial inclusion, income support and livelihood promotion help households resist shocks, reduce exploitative dependence and participate more equally in economic life. Clean cooking initiatives further ease health risks and time burdens that fall heavily on poor women, improving the quality and balance of everyday family and community life. At the same time, livelihood missions that organise people into self-help groups and local collectives highlight the institutional dimension of harmony, rooting inclusion in decentralised community-based structures. In this integrated reading, the table depicts an inclusive development framework that resonates with Integral Humanism by treating wellbeing as multidimensional and with Antyodaya by judging progress from the standpoint of the last person, so that real success is measured by tangible gains in security, access, capability and dignified participation among the most marginalised.

Implementation Gaps and Limitations in Antyodaya-Oriented Outcomes :

- **Normative Question and Ethical Promise :** Once these schemes are read in the light of Upadhyaya's vision, a more critical question becomes unavoidable: what prevents them from fully realising an Antyodaya-oriented, Integral Humanism based social order in practice, and where do implementation gaps and last mile failures weaken the ethical promise built into their design? (CAG, 2023: v–vii).
- **Exclusion Errors and Last-Mile Breakdown :** Many programmes that look pro-poor on paper still face exclusion errors and last mile breakdowns, as eligible people are left out due to enrolment hurdles, documentation problems, technical failures, or arbitrary local behaviour. Complex procedures, unclear eligibility, blocked or dormant bank accounts, and discretionary gatekeeping restrict access for those at the bottom, which from an Antyodaya standpoint amounts to a denial of justice to the "last persons" meant to be the moral test of the system. (CAG, 2016: 41–42)
- **Fragmented and Scheme-Centric Delivery Architecture :** Alongside exclusion, a fragmented, scheme-centric delivery architecture persists, since separate departments run programmes through separate lists, portals, forms, and timelines, forcing households to navigate multiple offices and technologies for basic needs. This fragmentation sits uneasily with Upadhyaya's organic view of society, where institutions should function in coordination and the person should not be treated as an isolated compartment. (Fifteenth Finance Commission, 2020: 169–173).
- **Digital Turn and Technology-Driven Exclusion :** The digital turn in welfare delivery has reduced some leakages and sped up transfers, yet it can create barriers for those with low literacy,

poor connectivity, weak bargaining power, or irregular documentation, including migrants, single women, the elderly, and persons with disabilities. Authentication failures, database mismatches, phone-dependent procedures, and over-reliance on intermediaries can produce repeated humiliations and material losses that contradict the dharmic obligation to remain sensitive to the weakest. (Supreme Court of India, 2018: 62, 74).

- **Social Hierarchies and Weak Local Institutions :** Social and institutional constraints also limit Antyodaya-oriented outcomes, as caste, gender, and regional hierarchies shape information, assistance, and respectful treatment, while vulnerable groups may face neglect even when eligible. Local institutions that could embody decentralisation remain uneven in capacity and autonomy, and where they are weak, captured, or bypassed, last mile gaps widen and schemes appear distant rather than ethically shared projects. (Fifteenth Finance Commission, 2020: 169–173).
- **Nominal Coverage Versus Substantive Quality :** Finally, programmes often emphasise nominal coverage more than substantive quality, so health cover may exist but usable care remains difficult, housing may deliver titles without viable services or livelihoods, and bank accounts may exist yet remain dormant. Outcomes depend on whether entitlements translate into real security and capability, which in Integral Humanism terms requires treating the beneficiary as a multidimensional personality rather than as a name in a database. (CAG, 2023: 25–32).

Policy Directions Consistent with Integral Humanism :

- **Ethical Imperative and Framework :** Recognising these implementation gaps is not only a technocratic exercise but an ethical imperative when judged against Upadhyaya's criteria of social harmony, and several policy directions follow from this framework. (CAG, 2016: 41–42; CAG, 2023: v–vii).
- **Last Person-Centred Delivery Design :** Delivery systems should be redesigned around the perspective of the last person rather than departmental convenience or technology. This implies simpler enrolment and authentication, assisted access through local facilitation, accessible grievance redress, and proactive correction of exclusion errors. In Upadhyaya's language, this is how a Dharma Rajya treats its weakest citizens as bearers of rightful claims. (Supreme Court of India, 2018: 74; CAG, 2016: 41–42).
- **Integrated and Household Centred Convergence :** There is also a need to move from a fragmented scheme-centric mindset to a more integrated person and household centred approach. Better coordination of databases, convergence of benefits locally, and planning around a family's composite situation, including food, housing, health, livelihoods, and finance, would align with Integral Humanism's insistence that life should not be reduced to isolated compartments. (Fifteenth Finance

Commission, 2020: 169–173).

- **Decentralisation and Community Self-Reliance :** Policy should give concrete effect to decentralisation and community self-reliance by strengthening the role and capacity of panchayats, urban local bodies, self-help group federations, and community organisations in planning, monitoring, and grievance redress. Recognising them as living institutions that adapt to local realities can help identify the truly vulnerable and build trust at the last mile. (Fifteenth Finance Commission, 2020: 169–173).
- **Dignity in Frontline Governance :** Administrative culture and frontline practice should embody a stronger ethic of dignity. Training, incentives, and accountability can be oriented toward respectful treatment, privacy, and the reduction of humiliating procedures, since Antyodaya concerns not only who receives benefits but also how they are treated while accessing them. (Supreme Court of India, 2018: 74).
- **Antyodaya Sensitive Monitoring and Evaluation :** Monitoring and evaluation frameworks can be made more Antyodaya-sensitive by tracking outcomes for bottom deciles, vulnerable groups, and historically lagging regions rather than relying mainly on aggregate counts. Such last person indicators would reflect the principle that the health of the social organism must be assessed at its weakest points. (CAG, 2023: v–vii, 25–32).

If these directions are taken seriously, India's inclusive development schemes can move closer to the Antyodaya-centred, Integral Humanism based vision articulated by Deendayal Upadhyaya, in which the whole person is respected, the last person is prioritised, communities are empowered, and the state acts as a trustee of dharma, deepening social harmony rather than merely administering poverty relief.

Conclusion :

This paper concludes that India's inclusive development architecture is best understood not as a fragmented collection of welfare interventions, but as an evolving institutional expression of Deendayal Upadhyaya's vision of social harmony rooted in Integral Humanism and Antyodaya, in which public policy increasingly seeks to secure the basic dignities necessary for meaningful social citizenship; the wide and expanding coverage of schemes across food security, livelihoods, financial inclusion, health protection, clean energy, farmer income support and housing reflects a serious and structured effort by the State to address multidimensional deprivation and reduce structural vulnerability among historically marginalised groups, thereby laying the material and institutional foundations of a more cohesive society, yet the deeper ethical horizon of Antyodaya, which requires centering the lived reality of the last person, remains only partially realised because of persistent

exclusion errors, uneven last-mile delivery, interstate disparities, technological barriers and the limited capacity or autonomy of community-level institutions; therefore, the central implication emerging from this analysis is that the next phase of India's development trajectory must move beyond aggregate coverage towards dignity-centred outcomes by reorienting policy design around the needs of the most vulnerable, ensuring household-level convergence across schemes, strengthening decentralised and participatory community institutions, embedding accountability and effective grievance redress at the frontline, and cultivating an administrative culture grounded in respect and ethical responsibility, so that if these directions are pursued with consistency and depth, India's welfare framework can progressively transform into a more coherent, dharma-guided, human-centred and socially harmonious order in which the rise of the last person becomes not merely a policy aspiration but a lived and tangible social reality.

References :

- Ahmad, N., Sharma, S., & Singh, A. K. (2018). Pradhan Mantri Ujjwala Yojana (PMUY): Step towards social inclusion in India. *International Journal of Trend in Research and Development, 5*(1).
- Ahmed, S. (2023). Jan Dhan Yojana is a way for financial inclusion in rural India. *Asian Journal of Management and Commerce.*
- Barman, D. K., & Saloi, T. (2020). Alleviation of urban poverty through DAY-NULM scheme: A study with reference to Guwahati City. *International Journal of Management (IJM), 11*(12).
- Chellaiyan, V. G., Rajasekar, H., & Teneja, N. (2020). Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana - Ayushman Bharat. *Indian Journal of Community Health, 32*(2).
- Comptroller and Auditor General of India. (2016). *Implementation of the National Food Security Act, 2013* (Report No. 54 of 2015; Chapter 6: Grievance redressal mechanism and monitoring). Comptroller and Auditor General of India.
- Comptroller and Auditor General of India. (2023). *Performance audit on Ayushman Bharat–Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana (AB-PMJAY)* (Report No. 11 of 2023). Comptroller and Auditor General of India.
- Department of Financial Services, Ministry of Finance, Government of India. (n.d.). *Department of Financial Services.* Retrieved December 16, 2025.
- Fifteenth Finance Commission. (2020). *Report of the Fifteenth Finance Commission for 2021–26: Volume I, Main Report* (October 2020). Government of India.
- Government of India. (2013). *The National Food Security Act, 2013 (No. 20 of 2013).* New

Delhi: Ministry of Law and Justice, Legislative Department.

- Government of India. (2013). *The National Food Security Act, 2013* (No. 20 of 2013). Ministry of Law and Justice, Legislative Department.
- Halder, H., & Koley, J. (2024). The Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY) scheme in India: A study. *IOSR Journal of Humanities and Social Science, 29*(3).
- Kumar, C. S. (2025). *A journey towards Antyodaya to Sarvodaya.* IIPA Publications.
- Kumar, S., & Kumar, D. (2025). Social aspects in Deen Dayal Upadhyay's integral humanism: A review. *International Journal of Social Science and Education Research*.
- Kumari, N. (2024). Deendayal Upadhyaya's integral humanism: Implementation for social justice. *International Journal of Arts, Humanities and Social Studies*.
- Mayilvaganan, B., & Varadarajan, S. (2021). Antyodaya Anna Yojana scheme is to ensure food security to the poorest of the poor. *Zenith International Journal of Business Economics & Management Research, 2*(2).
- Ministry of Agriculture & Farmers Welfare. (2023). *Pradhan Mantri Kisan Samman Nidhi (PM-KISAN) scheme.* Government of India.
- Press Information Bureau. (2024). Year-end/progress press releases on DAY-NULM: SHGs and shelters data. Government of India, Ministry of Housing and Urban Affairs.
- Press Information Bureau. (2024, August 9). Cabinet approves Pradhan Mantri Awas Yojana–Urban 2.0 scheme. Government of India.
- Press Information Bureau. (2024, September 17). Pradhan Mantri Awas Yojana–Urban 2.0. Government of India, Ministry of Housing and Urban Affairs.
- Press Information Bureau. (2025, August 27). 11 years of PM Jan Dhan Yojana: Banking the unbanked. Government of India, Ministry of Finance.
- Press Information Bureau. (2025, August 8). Cabinet approves continuation of targeted subsidy to PMUY consumers. Government of India, Ministry of Petroleum & Natural Gas.
- Press Information Bureau. (2025, December 4). Government approves 25 lakh additional LPG connections under PMUY for FY 2025–26. Government of India, Ministry of Petroleum & Natural Gas.
- Press Information Bureau. (2025, July 25). Over 41 crore Ayushman cards created under AB-PMJAY. Government of India, Ministry of Health & Family Welfare.
- Press Information Bureau. (2025, March 18). DAY-NRLM: Women SHGs access over ?10.2 lakh crore bank credit; 10.20 crore households mobilised into SHGs. Government of India, Ministry of Rural Development.

- Press Information Bureau. (2025, November 1). Ayushman Bharat – Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana. Government of India, Ministry of Health & Family Welfare.
- Press Information Bureau. (2025, November 19). 21st instalment of PM-KISAN: Direct Benefit Transfer of ?18,000 crore to 9 crore farmers. Government of India, PIB Headquarters.
- Promila, & Singh, J. (2021). Integral humanism philosophy of Pandit Deendayal Upadhyaya. *International Journal of Multidisciplinary Trends rural India*, *Asian Journal of Management and Commerce*.
- Sau, S. (2024). The integral humanism: Pandit Deendayal Upadhya. *International Journal of Contemporary Research in Multi-disciplinary, 3*(1).
- Sharma, S. K. (2025). Deendayal Upadhyaya's vision of Antyodaya: A socio-political blueprint for inclusive development. *Integrated Journal for Research in Arts and Humanities, 5*(4).
- Singh, J. (2025). Pandit Deendayal Upadhyay: A social reformer and cultural integrator of modern India. *International Journal of Social Science Exceptional Research, 4*(4).
- Supreme Court of India. (2018, September 26). *Justice K. S. Puttaswamy (Retd.) & Anr. v. Union of India & Ors.* (Writ Petition (Civil) No. 494 of 2012 & connected matters).
- Upadhyaya, D. (2014). *Integral Humanism* (Original work published 1965). Publications Division, Ministry of Information & Broadcasting, Government of India.
- Virmani, A. (2023). *Bharatiya model of inclusive development: Sabka Sath, Sabka Vikas, Sabka Vishwas, Sabka Prayas* (NITI Aayog policy paper). NITI Aayog.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha
April 2026
ISSN : 2395-7115
Page No. : 68-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Unpacking India's Policy Shift on the Palestine Question

Harsha Kaushal, Research Scholar

Dr. Mini Pathak Dogra, Research Supervisor, Assistant Professor

Department of Political Science, HP University Summer Hill Shimla.

Abstract :

Foreign policy is a reflection of how a nation's external strategic interests and internal political agendas interact. In this context India's anti-colonial solidarity, a commitment to self-determination, and support for multilateralism have historically impacted its foreign policy. If we look in particular context over time, pragmatism has been incorporated into India-Palestine ties due to evolving local political dynamics and global realignments. The paper examines the development of India's foreign policy toward Israel and Palestine from 1947 to 2025, as well as the key Arab-Israeli wars. It also draws attention to the three stages of Indian foreign policy: the first, which began in 1947 and lasted until 1990 and is regarded as the pro-Palestine and non-alignment era; the second, which began after the end of the Cold War and lasted until 2014 and was a period of balancing act; and the third, which began in 2014 where India adopted a de-hyphenate policy under the leadership of Prime Minister Narender Modi. The rationale behind India's change in stance regarding Palestine will also be highlighted. Additionally, it also looks into conflict between Israel and Hamas that emerged in 2023 and India's response to it.

Keywords: *Non-alignment, Realism, constructivism, balancing act, de-hyphenate*

INTRODUCTION :

In present times no state can escape engagement with other countries in the modern world. This involvement needs to be methodical and founded on a few clear guidelines. The goals and ideals of a state should be reflected in its foreign policy. "The system of activities evolved by communities to change the behaviour of other states and to adjust their own activities to the international environment" is the definition of foreign policy given by George Modelski. However, a foreign policy's aim is not just to influence the behaviors of other states, but also to change those behaviors in order

to best serve one's own national interests. The combination of techniques and objectives is another way to define foreign policy. The nation's power and capabilities serve as the means, while the state's national interest serves as the goal (Shukla, 2007 :3-4).

A nation's foreign policy, often known as its international relations strategy, is made up of tactics selected by the government to protect its interests and accomplish its objectives in international relations. The Strategies are used to interact with other countries. As globalization and transnational activity increase, governments will now need to interact with non-state entities. The aforementioned interaction is assessed and monitored in an attempt to maximize the benefits of multilateral international cooperation. Because the interests of the nation come first, the government develops foreign policy through high-level decision-making processes (Singh, 2015:53-54).

In recent years, India has carefully balanced national interest, pragmatism, and principles in its foreign policy. The government, led by Prime Minister Narendra Modi endure alliances and preserve strategic autonomy. India has communicated clearly and purposefully in international forums, interactions with the Global South, and the near neighbourhood as well as the larger Indo-Pacific region. Every project, partnership, and conference has prioritized the needs of the Indian people while making a significant contribution to world peace and progress. This approach became even more significant in the decade that began with 2020's marked profound changes in global politics especially in Asian Continent where regime change and war have become almost like a norm. In this wake, Taliban taking over Afghanistan, turmoil in Pakistan, Bangladesh and Nepal marked the profound changes occurring in the politics of post-colonial states but what came with the surprise was Russia and Ukraine war followed by Israel- Palestine conflict which underscored the volatility of the post-colonial world order and highlighted the need for India's steady, balanced and principled foreign policy. However, it is often stated that the Palestine problem is not a natural and chronic one, but an artificial and imported problem as the British government established it in 1917 through a Balfour declaration. Palestine was an important part of the Arab world and a totally Arab nation. Even though the Arab nations had been ruled by the Ottoman Empire for centuries, they managed to maintain their Arab identity and gain equal partnership with the Turks in the Ottoman Empire. Nevertheless, the Arabs were unhappy with their place in the Ottoman Empire, and at the end of the 19th century, they launched a liberation movement with the goal of gaining total independence (Atiyah, 1946: 340-341).

During World War I, the British pushed the Arabs to rebel against the Ottoman Turks and promised them independence after the war. The Arab uprising did occur, and the British military operations benefited from it. After the historic Balfour Declaration of November 1917, there was

controversy over whether Palestine was included in the UK's guarantee and on the other side Dr. Weizmann had anticipated that Britain would eventually provide the Zionists a better deal when the project for a Jewish colony in Uganda lapsed at the start of the twentieth century. Jewish units served with the British forces in the First World War and as a result British promised a Jewish national home in Palestine (Fabian, 2002: 42).

The declaration led to immigration of Jews in Palestine land in 1920's. As a consequences riots and violence erupted in 1920,1921 and 1929. This turned Palestine into a state of competing nationalism and laying the foundation for the prolonged conflict.

India and Palestine in Pre-Independence Era :

The issue of Palestine is inextricably related to Israel and cannot be considered in a vacuum due to the complex historical, political and geographical dynamics with Israel. Palestine is the territory that certain countries throughout the world do not recognize and still Palestine is struggling for identity as a separate nation state. Israel controls a large portion of Palestine, including East Jerusalem, which is a holy site for both communities i.e. Jews and Arabs. Israel refused to acknowledge Palestine as a distinct country because of concern that doing so would jeopardize its own strategic standing. The whole conflict revolves around this concept of statehood.

When India gained its independence, its authorities had been concerned by the Palestine issue, and the country made no effort to build ties with Israel. India had powerful and outspoken voice against discrimination worldwide due to its protracted fight for independence and self-determination from British colonialism. Since Indian National Congress which was founded in 1885, it has taken a stand against the British in India and articulated its autonomist foreign policy toward global events (Ahmad, 1973: 300-307).

The early reactions came as early as when the Indian National Congress disapproved of the 1917 Balfour Declaration, which offered Jews a national home in Palestine. India's initial stance on the Israeli-Palestinian conflict was significantly influenced by the Indian National Congress in the years preceding independence. This got reflected when the INC, led by Mohammed Ali, stated in 1921 that it believed the Arab nations and their holy sites ought to be liberated from non-Islamic forces.

During the same period Gandhi was extremely sympathetic to Jews due to Hitler's severe persecution of them in Germany, but this did not alter his position on Israel, which was to oppose the establishment of the state of Israel on religious grounds.

Nehru, however, believed that it was an outsider's act. Nehru claimed that the only forces influencing the conflict between Jews and Arabs were British nationalism and the Arab struggle, and

that Britain could use Jews to keep its dominance in the area. Jawahar Lal Nehru believed India would have acknowledged Israel long ago, but he decided against it because he was worried about the feelings of Muslim countries. (Kumaraswamy, 2010: 28-30). Since the beginning of the Indian independence movement, India and the Palestinian people have maintained strong emotional ties. Even after gaining independence, India has consistently supported the Palestinian people's cause and denounced the denial of their fundamental rights in numerous forums, including the UN. The pre-independence factors conditioned the future course of action that India took regarding Israel-Palestine conflict. This can be briefly discussed in various phases. The paper will highlight the post-independence events starting from 1947 till 2024. The paper underscores that India's relations with Palestine can be divided into three phases. After Indian Independence from 1947-1990 period could be considered as first phase, 1990-2014 as second phase and the third phase starting after 2014 till date.

INDIA PALESTINE RELATION POST-INDEPENDENCE :

India started its journey as an independent nation state in 1947 when the world was divided into two ideologies first was liberal-capitalist led by USA and second was socialist which was led by USSR. India did not join any of power blocks instead opted Non-Aligned Movement which became a voice of developing nations (Singh, Bhatia and Maheshwari, 2025: 1014).

When Jawaharlal Nehru was elected as India's first prime minister after independence, his foreign policy toward Palestine was influenced by his belief in moral diplomacy, non-alignment, anti-colonialism, and idealism. Motivated by anticolonial ideals and solidarity with the Arab world, India's Palestine policy under Nehru was pro-Arab and pro-Palestinian, although it warily acknowledged Israel's existence without forging full diplomatic ties. For many years, this strategy characterized India's foreign policy. However, in the very beginning when the UN effectively authorized the proposal to create Israel on Palestinian land India voted against Israel's admission but it could not stop him to form a separate nation and as a result Jewish state was created on May 14, 1948, under the name Israel (Appadurai,1981:150).

The Arab world was furious over it, and as a result, Five Arab countries attacked on Israel when it was formed and this gave rise to first Arab Israel war which took place in 1948. After seizing 80% of the land, Israel won this war and the Arab countries were vanquished. During this conflict, India opposed Israel's stance on its borders and backed the restoration of Palestinian rights.

After this although India granted de jure recognition to the State of Israel. However, India did not establish full diplomatic relations with Israel. In 1953, Israel was allowed to open a consulate in Bombay but India refrained from maintaining a diplomatic presence in Israel. Again in 1956 the second Arab and Israel war or the Suez crises broke out, on one side there was Egypt and on the other

side there was Israel, U.K, France (MEA, 1956: 150). India supported Egypt wholeheartedly and denounced the Israeli action as 'clear naked aggression' (Appadorai, 1981: 154). A conflict between Israel and the Arab world erupted once again in 1967. Some Palestinian regions were annexed by Israel after the June 1967 Six Day Arab-Israeli War. Israeli forces seized and occupied the Gaza Strip, East Jerusalem, and the West Bank during the conflict (Faleiro, 2018: 170-172). Israel also took the Golan Heights and Sinai from the Arabs. Although the ordering of the United Nations Emergency Force's withdrawal and Nasser's blockage of the Gulf of Aquaba were the direct causes of the 1967 war's escalation (MEA, 1973: 15). India's stance throughout the crisis was overtly pro-Arab. In a similar vein, Indira Gandhi the then Prime Minister stated in a statement to the Lok Sabha on June 6, 1967, "I did not desire to employ strong language or harsh remarks. However, on the basis of information available, it was undeniable that Israel had intensified the battle to the point that it now resembles a full-scale war" (MEA, 1973: 15).

But in 1971 when India and Pakistan war took place the Arab states consolidated their diplomatic stance against India ignoring the fact that she had always sided with Arab countries. At that time, it was Israel who helped India by providing arms and ammunitions. Another conflict between Israel and the Arabs occurred in 1973. The Fourth Arab Israeli War began on October 6, 1973, when the armies of Egypt and Syria invaded Israel simultaneously in an effort to regain the area they had lost in June 1967. However, during this fight also India fully supported the Arabs (MEA, 1973: 15). Rightist parties criticized the government's stance and favored Israel's position, while the ruling Congress party and leftist parties supported the Arabs wholeheartedly (Chopra, 1990: 328-329). This shows that despite recognizing Israel India was a fervently pro-Arab nation and denounced Israel in all of its conflicts with Arabs. To prevent Arabs from being enraged with India, India ever chose not to establish diplomatic ties with Israel.

SECOND PHASE (1990-2014) :

The second phase began in 1990 and lasted until 2014. It could be marked as second phase in India-Palestine relations because Indian Foreign Policy reflected a shift from ideological to a more pragmatic and balanced foreign policy, without renunciating India's long-standing support for Palestine cause. India took a balanced stance toward Israel and Palestine throughout this time. A balanced approach in this case entails India maintaining ties with both Israel and Palestine. The Soviet Union broke up in the 1990s, leaving the United States of America as the only superpower in the globe which forced India to establish relations with Israel. It was claimed at that point of time that if any country wanted to build ties with the United States, it must first create ties with Israel because USA have good relations with Israel.

Since the early 1990s, India's relations with Palestine had changed significantly as a result of larger changes in the geopolitical and diplomatic environments. An important turning point in India's foreign policy was the 1992 normalization of relations with Israel, which aimed to forge official diplomatic connections with Israel while cautiously upholding its long-standing support for Palestine. India took a balanced stance, aggressively promoting Palestinian autonomy and self-determination while also forging greater scientific, economic, and diplomatic connections with Israel. Without sacrificing its longstanding support for the Palestinian cause, India was able to improve ties with Israel. India had steadfastly supported Palestinian rights in bilateral and multilateral talks on the subject and continued to speak up for Palestinian rights on international fora, such as the UN.

The two-state solution, which was predicated on peaceful discussions and the recognition of both Israeli and Palestinian rights, is something that India had reiterated its support for despite its expanding strategic alliance with Israel. Ultimately, India's strategy was a practical fusion of international standards, strategic interests, and its longstanding tradition of aiding national liberation movements, guaranteeing that its foreign policy stays in line with both regional stability and its larger global goals. The normalization of relations with Israel was a symbolic step taken by the Narasimha Rao government to distinguish itself from previous foreign policy administrations. India was able to show Washington that New Delhi was ready to accept the post-Cold War world by changing such a long-standing stance. When it came to matters like Kashmir, New Delhi viewed Israeli influence in Washington to be "useful" in the early 1990s (Rubinoff, 1995: 503).

There were also bilateral visits between Israel and India after 1990's. When Israeli Foreign Office Deputy Director General Johanan Bein visited India in February 1994, he declared: "Kashmir is an integral part of India and any problem should be solved bilaterally." "Involvement of third parties or international agencies did not help the normalization process instead it stands in the way of direct talks," the official stated bluntly (Rajen, 2001: 126-130). Former Indian ambassador J.N. Dixit wrote: "Despite India's consistent and principled support to the Arab cause in Palestine and despite India's distance from, and absence of diplomatic relations with Israel, that country remained supportive of India on issues relating to the latter's territorial integrity and to Jammu and Kashmir." Dixit was referring to Israel's endorsement of India's position on Kashmir (Singh, 2001: 126-130).

Among the opposition parties, the Bharatiya Janata Party (BJP), excluding the left parties and the Muslim League, the Muslim League, played a crucial role in bringing Israel and India's relations back to normal. They persisted in pushing the government to open diplomatic ties with Israel. In this sense, the BJP took the initiative. It was mentioned that despite having complete diplomatic ties, both China and Pakistan have taken control of substantial portions of Indian land (singh, 2001: 126-130).

Their position was rooted in an opposition to the ruling congress party's nonaligned stance, which they viewed as politically motivated and biased due to domestic Muslim sentiments and the Pakistan factor. They believed India should establish full diplomatic relations with Israel based on a pragmatic assessment of national interest. In similar terms Yashwant Sinha, a member of the Samajwadi Janata Party, believed that India's foreign policy should be based on national interests. By siding with the Arabs, "India was not able to get the support of the Arab countries during critical times and most of these countries had been consistently pro-Pakistani" (Singh, 2001: 126-130).

Atal Bihari Vajpayee's commitment to upholding a balanced diplomatic posture was evident in India's relations with Israel and Palestine during his brief term as prime minister, which lasted from May 16 to June 1, 1996. Despite his brief tenure, Vajpayee's strategy set the stage for India's continuous diplomatic balancing act, which aimed to respect its values toward Palestine while promoting collaboration with Israel in a number of areas, such as trade and technology. In 1998 (March-April) Atal Bihari Vajpayee's first cabinet collapsed after just 13 days, relations between India and Palestine remained steady and unaltered. India continued to uphold its longstanding support for the Palestinian cause. However, when India tested Pokhran-2 nuclear in May 1998, whole world condemned India but Israel did not condemn instead supported India and continued to supply weapons and military technology to India. Israel assisted India in the Kargil conflict as well in 1999 which continued from 3rd May to July 26, 1999 by supplying weapons and ammunition.

When the Bhartiya Janata Party took power in India in 1999 (13 Oct-May 2004) again ties between Israel and India grew closer. A noticeable change was brought about by several high-profile trips to Israel by important Indian government figures, including Home Minister L.K. Advani in 2000. His stated goal was to promote global collaboration in the battle against terrorism. In July 2000, Jaswant Singh became the first Indian foreign minister to visit Israel following Advani. During his visit to Israel, both countries agreed to form a joint committee to improve their collaboration in the war against terrorism (Hadan, 2008: 89).

During his visit, Jaswant Singh stated that Israel was the sole country helping India combat terrorism along its northern border, which Pakistan was supporting. The US and the EU were not yet prepared to condemn Pakistan or assist India in fending off the menace. Israel was the only country ready to supply India with cutting-edge technologies (Hadan, 2008: 89). But during this visit the sensitive Arab people were taken into consideration when External Affairs Minister Jaswant Singh began his four-day tour of Israel from the Palestinian city of Ramallah. He demonstrated a balanced attitude to both countries by spending equal time with representatives of the Israeli and Palestinian governments, including President Yasser Arafat (Singh, 2001: 141-143).

During Manmohan Singh's tenure as Prime Minister of India from May 2004 to 2014, India's policy towards Palestine and Israel evolved to reflect a balance between strategic commitments, national interests, and historical principles. Following Palestinian President Arafat's death on November 11, 2004, India said in a statement that he was well-liked and respected by both Indian officials and citizens, and that he would always be regarded as a true and loyal friend of India. A multiparty delegation headed by the Minister of External Affairs went to Cairo to attend President Arafat's funeral. On November 29, 2004, the International Day of Solidarity with the Palestinian People, India's prime minister reaffirmed the country's support for the Palestinian cause in the wake of President Arafat's tragic demise. This action by India demonstrated that their policy toward Palestine was consistent (MEA, 2004-2005.

After Yasser Arafat's death in November 2004, a surprising orderly political transition occurred, with Mahmoud Abbas elected President of the Palestinian Authority (PA) in January 2005. The primary political dynamic in the lead-up to the January 2006 legislative elections was the growing rivalry between the historically dominant Fatah faction and the Islamist movement Hamas, which decided to participate in the democratic process for the first time. Because of its profound internal divisions and inability to manage the growing security crisis, Fatah was viewed as corrupt and ineffective. In the meantime, Hamas became more well-known by offering a wide range of social services and presenting itself as a clean alternative. As a result, it was able to win a significant percentage of the votes in the December 2005 municipal elections. Hamas surprisingly won a landslide victory in the 2006 legislative elections. Consequently, there was formation of the two factions with increasing power struggle and frequent conflict within Palestine.

Palestine parliamentary election (2006) :

In the January 25, 2006, parliamentary elections in the Palestinian territory, Hamas won 74 of the 132 seats, while FATAH, the biggest PLO party, only secured 45. The government was founded by Hamas, which was opposed by Israel and most other countries. As hostilities between Fatah and Hamas in the West Bank escalated, Palestinian President Mahmoud Abbas dismissed the Hamas cabinet. As a result, Hamas and Fatah engaged in violent battles (Johny, The Hindu: 2023). India expressed its hope that the "new Government representing the world of the Palestinian people would continue to pursue the path of peaceful negotiations" (Samuel and Rajiv, 2016: 29-30).

There was no international drive for the two-state solution, no organized or united Palestinian movement, and no peace process between Israel and Palestine after the 2006 parliamentary election (The Hindu, Johny 2023). In 2006 conflict started between Israel and Palestine. Again over 400 Palestinians, including over 250 "militants," and seven Israelis, including five soldiers, died during

this conflict. The seizure of Shalit was "condemned" by the MEA, which stated that it "provoked the threat of massive retaliatory measures by Israel." India showed its solidarity with Palestine which meant India has not abandoned its former Palestine policy (Samuel and Rajiv, 2016: 29-30).

Fatah ousted Hamas from the West Bank and Hamas ousted the former from Gaza in 2007. Since then, Hamas formed the government in Gaza (The Hindu, Johny, 2023). The Islamic Hamas had been running Gaza since 2007, while the secular Fatah, the backbone of the PLO had been running the Palestinian Authority (The Hindu, Johny 2023). In 2011, the Palestinian Authority attempted to gain UN membership as a country in UNSC but once again failed due to the influence of USA and its veto power (Kechedji, 2018: 124). In this context India had been a strong advocate for Palestine's UNESCO membership and its bid for full UN membership which was being reviewed by the Security Council (MEA, 2011-2012). In November 2012 the UN General Assembly voted to recognize Palestine as a non-member state in the UN on the basis of the 1967 borders with East Jerusalem as its Capital (Hillel, 2013: 2). As a result, Palestine was officially granted the status of a "non-member observer state" at the United Nations. The International Community's recognition of Palestine as a state is not only crucial to it, but it is also important for bringing peace to the region and permanently ending the conflict. Since they would be on equal footing at the bargaining table if Palestine was acknowledged as a state (Kechedji, 2018: 124).

But in November 2012 itself Israel and Hamas began to escalate their conflict and went through seven days of fighting. In response to incessant rocket attacks from the Gaza Strip, the Israel Defense Forces launched "Operation Défense Pillar" on November 14, 2012. It took eight days to finish. In order to reach a comprehensive resolution of the Palestinian situation, India called for negotiations between Israel and the Palestinians and voiced deep concern at the steep escalation of violence on both sides. Because it left out the phrase 'condemn', which was used in previous remarks, some commentators noted that this statement differed from former Indian statements, illustrating India's changing attitude.

Afterwards the then Prime Minister Dr. Manmohan Singh reaffirmed India's support for "the Palestinian quest for full membership of the UN" during the UNGA in September 2013. Foreign Minister Khurshid met with his Palestinian counterpart during the same UNGA session. But the Israeli Foreign Minister was not consulted.

In the meantime, Indian authorities persisted in reminding Members of Parliament who were critical of the India-Israel connection of the partnership's significance to India. Just as in December 2013, Deputy Foreign Minister E. Ahmed reminded Rajya Sabha MP Mohammed Adeeb that India "had cordial and diversified relations with Israel which were mutually beneficial." India has long been

an unwavering supporter of Arab and Palestinian causes, even in spite of expanding ties with Israel (Samuel and Rajiv, 2016: 35-36).

THIRD PHASE (POLICY OF DYPHENATE 2014) :

The third phase, which included a dehyphenation attitude towards Israel and Palestine, commenced when BJP leader Narendra Modi was elected prime minister in 2014. It can be considered as third phase because it represents a distinct shift in India's strategy from "balanced engagement" to dehyphenation and strategic pragmatism, while maintaining support for the Palestinian cause.

India had long been a steadfast advocate for the cause of Palestine. Furthermore, New Delhi had carefully balanced its new alliance with its longstanding commitment to Palestine, even as India's connection with Israel had grown over the last three decades. In a shifting West Asia, where even Arab countries had been ready to sidestep the Palestine question for better bilateral ties with Israel there have been concerns in recent years about whether India was shifting away from this balance and tilting toward the Jewish state (Johny, The Hindu, 2024).

The 2014 political regime change in India did not significantly alter India's position on a number of issues, despite the fact that strategic commentators and analysts claimed that the BJP, led by Narender Modi, had brought about a newfound "robustness" in Indian foreign policy, with "pragmatism, not principle, and delivery, not doctrine" as the hallmarks—qualities that had been lacking in the previous 20 years (Konwer, 2018: 231). As prime minister, Modi had maintained policy continuity and built further upon this strong foundation. There had been significant developments during the Modi era – one relating to Israel which could be seen as change in India's Palestine Policy (Gupta, 2017: 82).

India's domestic politics witnessed a significant change in 2014, transitioning from coalition-driven, consensual politics to a centralized, leadership-centric, and ideologically assertive political system and rise of cultural nationalism and Hindutva in mainstream politics.

In this backdrop, in 2014, Prime Minister Modi introduced the de-hyphenation plan, which asserted that "India's relationship with Israel would stand on its own merits, independent and separate from India's relationship with the Palestinians." The de-hyphenation strategy was not established until 2014, when Prime Minister Modi and Prime Minister Netanyahu met at the United Nations (Prashant, 2023: 6). Both the history of Indian foreign policy and the relationship between India and the Palestinian Authority under Prime Minister Modi were altered. Leading a harsh stance on India's national security, speeding up the second phase of neoliberal reforms, and bringing the concept of cultural nationalism to a close were also the other main themes on the table when the ruling right-wing party proposed significant improvements in India's foreign relations (Saaida, 2022: 399). This

is how Israel and India became closer after 2014. The ruling BJP in India and Netanyahu's right-wing Likud have similar political ideologies, which some political observers said acted as a unifying factor. According to some commentators, Modi and Netanyahu's shared affinity was the cause of these deeper connections (Prashant, 2023: 7).

Why shift in India's Palestine Policy?

The reassessment or shift in policy stems from the recognition that the Arab world had not sufficiently rewarded and repaid India's predominantly pro-Arab posture in the West Asia. Whereas India has always supported Arab world on Palestine question Arab nations has offered India little or insignificant assistance in resolving issues in its immediate neighborhood, particularly in Kashmir.

No significant efforts had been made by the Arab world to exert pressure on Pakistan to control the cross-border conflict in Kashmir. In contrast, Arab countries had steadfastly supported Pakistan, leveraging the Organization of Islamic Cooperation (OIC) to increase backing for Islamabad and jihadi factions in Kashmir which was against India's national interest. India had no reason not to follow the example of Arab countries like Jordan, who had managed to maintain their historical connections with Palestine while establishing new relations with Israel. This could allow India greater flexibility in its diplomatic strategies in the region.

In addition, India decided that if the Arab world and the Palestinian Liberation Organization (PLO) were suddenly open to negotiations with Israel as an outcome of the Madrid Peace Process in 1991, New Delhi did not need to keep the status quo. Israel and India face similar problems, such as the fact that terrorism is not only carried out by disgruntled groups on their own territory but is also supported and encouraged by neighboring states that are increasingly skilled at arming terrorist organizations with Weapons of Mass Destruction. Since then, the two nations' ties have grown stronger, with India and Israel forming a multifaceted "strategic partnership" as a result of their shared interests in a number of fields.

Over time, historical, political, and strategic factors have influenced India's foreign policy toward Israel and Palestine. A framework explaining India's complicated connections with Israel and Palestine along with an explanation of how these theories relate to India's national interests in this situation.

Realism emphasizes the pursuit of national interest, security, and power in anarchic international interactions. India's foreign policy with Israel and Palestine can be examined with realpolitik, which balances ties based on strategic interests rather than ideological connection. India's foreign policy had traditionally been determined by the non-alignment principle, which supported maintaining neutrality and avoiding partnerships that might restrict its autonomy during cold war. But

over time, India has taken a more multi-aligned approach, collaborating with both regional and Western institutions such as reestablishing relations with Palestine and Israel alongwith many other forums. By promoting strategic autonomy, India is able to handle the complex nature of its relations with Israel and Palestine without getting too dependent on either nation. By avoiding ideological entanglements, this autonomy ensures that India may prioritize its national objectives, such as economic growth, energy, and security.

As India strives to modernize its military and improve its technological capabilities, it has grown increasingly dependent on Israel's defense and technological expertise in fields like cyber security, agriculture, and water management. In addition to strategic objectives, India and Israel's relationship is characterized by economic diplomacy, which includes cooperation in fields such as innovation, cybersecurity, and defense technologies.

But there are many events that took place in between or after 2014 which also reflect that India did not abandon its policy towards Palestine completely one such instance could be cited here regarding stand of the United States while relocating its embassy to Jerusalem in 2017 after President Donald Trump declared Jerusalem to be the capital of Israel. India was among the nations that did not instantly accept the U.S. strategy. In accordance with its relationship with Palestine, India has consistently supported the notion that Jerusalem's status should be resolved via direct talks between Israel and Palestine. In international institutions like the UN, India is a fervent supporter of Palestinian rights and a peaceful settlement of the conflict. India has demonstrated its commitment to a nuanced and balanced approach through its diplomatic relations and UN position.

India's support for Palestinian aspirations also got underlined during Prime Minister Narendra Modi's historic visit to Palestine in 2018, which was deliberately kept separate from India-Israel relations. This reflected India's dedication to an independent and pragmatic foreign policy in which relations with one country do not compromise ties with another.

Through balanced diplomacy, India has welcomed new strategic relationships with Israel while maintaining its long-standing support for Palestine, assuring that its foreign policy remains adaptable and forward-thinking. When India supported a UN resolution in 2018 calling for the protection of Palestinian people from Israeli military actions in Gaza, it reiterated its support for the Palestinian cause (Singh, Bhatia and Maheshwari, 2025: 1015).

To elaborate it further, before 2017, India voted "Yes" on the majority of UN resolutions, maintaining an almost uniformly pro-Palestine stance. However, after 2017, it adopted a more nuanced approach, abstaining from resolutions that directly condemned Israel or had to do with armed conflict, while continuing to support Palestinian rights on issues of refugees, sovereignty, and settlements

India's foreign policy clearly shifted resulting in striking a compromise between its long-standing support for Palestine and its expanding defense, strategic, and technological alliance with Israel. India demonstrated its sustained support for the Palestinian cause in 2018 when it voted in favor of a UN resolution calling for the protection of Palestinians from Israeli military activities in Gaza. Following table shows the pattern of India's voting in resolutions presented in United Nations from 2014-2025.

India's Voting Pattern on Palestine-Israel Resolutions (2014–2024)

Year	Forum	Resolution Focus	India's Vote	Remarks
2015	United Nation Human Right Council (UNHRC)	Charged Israel of Committing "war crimes" during the 2014 Gaza conflict.	**Abstain**	Shifting towards Israel
2016	United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (UNESCO)	Israel's excavation and exclusionary practices surrounding the Al-Aqsa Mosque & al-Haram-A-Shift/Temple Mount	**Abstain**	Balanced Diplomacy
2016	United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (UNESCO)	Resolution expressly endorsing Islamic claims and narratives regarding Jerusalem	**Abstain**	Support for the International status of Jerusalem (i.e. Jerusalem and belongs to both nations Israel and Palestine).
2020	United Nation Human Right Council (UNHRC)	Human Rights in occupied Palestinian territories, supporting self-determination	**Favour (Yes)**	Supporting state solution balancing both Israel and Palestine
2021	United Nations General Assembly (UNGA)	Resolution expressing "serious concern" about the possible displacement of Palestinian families from homes	**Abstain**	Signaled a balanced approach toward Israel-Palestine
2023	United Nations General Assembly (UNGA)	Resolution calling for a ceasefire	**Abstain**	Show India and Israel ties becoming strong
2023	United Nations General Assembly (UNGA)	Resolution related to ceasefire in Hamas Israel war.	**(Favour) Yes**	An effort for establishing peace in Palestine and Israel.
2023	United Nations General Assembly (UNGA)	Ceasefire Resolution E5-10/20 during Gaza conflict demanding an immediate humanitarian ceasefire	**Favour (Yes)**	Again act of balancing relations with Israel and Palestine.
2023	United Nations General Assembly (UNGA)	Resolution condemning Israel settlement in Palestine land	**No (voted again)**	Show solidarity with Palestinian people and right to live in their own land
2024	International Count of Justice (ICJ)	Israel's actions in the Palestinian territories at United Nation Head Quarter	**Against (No)**	India is prioritizing its strategic partnership with Israel.
2024	United Nations General Assembly (UNGA)	Called Israel to vacate Palestinian territories on the basis of an opinion by the International Court of Justice	**Abstain**	Balancing relation with Israel and Palestine.
2025	United Nations General Assembly (UNGA)	Endorses the New York Declaration on peaceful settlement of Palestine issue and implementation the two-state solution	**Favour (Yes)**	Support for two state solution (Israel and Palestine)

The Table depicts that India's policy has shifted towards Israel and proximity with Tel Aviv is clearly visible but the humanitarian aspects had not been sacrificed and India has stood with Palestinian populace when it comes to call for ceasefire or immediate humanitarian aid. India had supported two state solution historically and even till date it has not changed its stand as gets reflected by United Nation General Assembly resolution of 2025.

A turn in 2023 : ongoing conflict between Israel and Hamas :

India's foreign policy has become more independent, practical, and realistic. India tried to carefully balance diplomatic and strategic factors in its handling of the Israel-Palestine issue. With its recent silence and abstentions in the International Court of Justice, India seems to be shifting toward cautious neutrality despite its longstanding support for Palestinian rights at the UN.

In present context, India needs to maintain its relation with both Israel as well as Arab countries which, whether directly or indirectly, but surely affect India's relation with Palestine. Strong Arab ties required a balanced approach, especially following high-profile diplomatic negotiations, notably with important allies like Saudi Arabia, Qatar, and the United Arab Emirates. India's growing defense partnership with Israel, which includes the acquisition of weaponry and the delivery of drones, was another indication of improved security ties. All of these elements pointed to a paradigm shift in India's long- standing attitude toward Palestine (Stanly, The Hindu 2024).

Here, one point needs to be mentioned that India's dependence on Israel is not merely for technical and strategic but also revolves around the issue of terrorism. India is aware that Hamas carried out surprise assaults in Israel that caused many casualties. India has experienced terrorist attacks from Pakistan and knows what it's like to be a victim of terrorism. India opposes terrorism in all of its manifestations. In its talks with the Palestinian Authority, which it saw as the sole legitimate voice of the Palestinian people, India had disregarded Hamas. India understood that combating terrorism was a global obligation. By backing Israel, India indicated that it would not change its stand on terrorism (Prashant, 2023: 9).

India strongly condemned the terrorist attacks that Hamas and other militant organizations of Palestine launched attack on the territory of Israel on October 7, 2023. The sudden attacks from the side of Palestine and the counter retaliation from the Israel both were not acceptable to India. Officially on the one hand Indian Ambassador Yojna opined that 'terror attack on Israel which was conducted on 7^{th} October 2023 were shocking and deserve condemnation' on the other side in a conversation with Palestinian President Mahmoud Abbas, Indian Prime Minister Modi also conveyed India's sorrow and indignation at the deaths of civilians in Gaza. India brought up the "universal obligations to observe international humanitarian law" with both parties. India continues to support the Palestinian cause and

the sovereign, independent, and viable state of Palestine. India had called for the restoration of peace anywhere in the globe where it was at danger and had urged Israel and Palestine to refrain from using violence. "India call on the parties to de-escalate, refrain from using violence, and endeavor to establish the conditions for an early restart of direct peace talks," is what India stated while interacting with the Palestinian Authority, which it considers to be the sole legitimate representative of the Palestinian people (Sharma, 2023: 16). Also, Hamas had been marginalized by India. India considered combating terrorism to be an international duty. India had changed its policy by supporting Israel, sending a clear statement that it would not back down on terrorism-related matters (Sharma, 2023: 16).

India's diplomatic balancing act is seen in its UN vote patterns and high-level meetings with both Israeli and Palestinian leaders. India has consistently supported resolutions that support Palestinian rights, but there has been a notable shift in the nation's position, with occasional abstentions on resolutions considered to be unfair against Israel. This suggests a more cautious and independent foreign policy that could be shaped by shifting international alliances.

India however keeps providing financial and humanitarian help to Palestine. Even while the type of aid has altered to better align with India's larger geopolitical goals, the country's ongoing economic and humanitarian support for Palestine remains evident. Through scholarships, direct financial aid, and capacity-building initiatives, India has supported Palestine's growth and enhanced its reputation as a responsible global partner. However, India's policy direction has also been impacted by internal political narratives and ideological shifts. There continues to be a strong undercurrent of support for the Palestinian cause, despite certain aspects of Indian political and social discourse emphasizing stronger connections with Israel. This necessitates India's policy to be flexible and balanced.

Conclusion :

India's position on the Palestine issue from 1947 to 2024 reflects a protracted period of diplomatic developments impacted by ideological commitments, geopolitical pressures, and changing strategic objectives. Due to India's strong anti-colonial solidarity, support for self-determination, and alignment with the Arab world, Palestine became a crucial component of the country's foreign policy in the early decades after independence. India's unwavering support for Palestinian rights in the UN, despite having recognized Israel in 1950 but not maintaining full diplomatic relations until 1992, was an example of this normative-driven diplomacy.

However, the post-Cold War era saw a substantial recalibration. As India pursued cutting-edge technology, liberalized its economy, and dealt with growing security issues, particularly in the fields of defense, agriculture, intelligence cooperation, and counter-terrorism, its relationship with Israel

rapidly expanded. This shift did not put an end to India's long-standing support for Palestine, but it did establish a two-pronged approach: practical engagement with Israel while maintaining ideological and humanitarian support for a two-state solution.

By 2014, India had adopted a more pragmatic approach. Examples of diplomatic balancing that became more noticeable included abstentions at the UN, the dehyphenation of relations, the expansion of India-Israel ties, and continued development assistance to Palestine. The Israel-Hamas conflict in 2023 tested this equilibrium. India criticized terrorism and called for communication and humanitarian assistance while reiterating its long-standing commitment to peace and its counterterrorism goals.

To conclude, over the past 70 years, India's position changed from ideological solidarity to strategic realism because of regional alliances, energy security, concerns regarding the diaspora, and its desire to become a world power. The "Israel factor," which represents a diplomacy that aims to find a balance between national interest and moral tradition in an increasingly complex global environment, has thus recalibratedbut not eliminated, India's support for the Palestinian cause. Nonetheless, India's belief that long-term stability in West Asia demands a negotiated settlement based on mutual recognition, coexistence, and sovereignty has been a recurrent theme throughout this development.

References :

- Ahmad, S. B. (1973). India and Palestine 1896–1947: The genesis of a foreign policy. *India Quarterly, 29*(4).
- Appadurai, A. (1981). *The domestic roots of India's Foreign Policy, 1947–1972*. Oxford University Press.
- Atiyah, E. (1946). The Palestine question: Background and Solution. *India Quarterly, 2*(4).
- Blarel, N. (2022). Modi Looks West? Assessing Change and Continuity in India's Middle East Policy Since 2014. *International Politics, 59*.
- Chopra, S. (Ed.). (1990). *Studies in India's Foreign Policy*. Guru Nanak Dev University.
- Fabian, K. P. (2002). The Israel–Palestine conflict: How to cut the Gordian knot? *India Quarterly, 58*(1).
- Faleiro, E. (2018). India–Israel relations. *World Affairs: The Journal of International Issues, 22*(1).
- Foreign Affairs Record. (1956). *Foreign Affairs Record* (No. 10). Ministry of External Affairs, Government of India.
- Gupta, R. (2017). *3 years of the Modi Government*. Institute of Peace and Conflict Studies.

- Hadan, S. (2008). The Evolution of India's Palestine Policy: A fall from the heights? *Social Scientist, 36*(1/2).
- Haidar, S. (2024, February 25). The Global South's stand on Israel's war in Gaza. *The Hindu*.
- Johny, S. (2023, October 11). *The Hindu*.
- Johny, S. (2023, October 15). *The Hindu*.
- Johny, S. (2024). The Hindu
- Kechedji, E. T. (2018). Israeli–Palestinian relations: Waging for peace or lost desperately. *International E-Journal of Advances in Social Sciences, 4*(10).
- Konwer, S. (2018). Hallmarks of current Indian foreign policy. *Indian Foreign Affairs Journal, 13*(3).
- Kumaraswamy, P. R. (2010). *India's Israel Policy*. Columbia University Press.
- Ministry of External Affairs, Government of India. (1973). *Annual Report 1973*.
- Ministry of External Affairs, Government of India. (2004–2005). *Annual Report 2004–2005*.
- Ministry of External Affairs, Government of India. (2011–2012). *Annual Report 2011–2012*.
- Prashant, K. (2023). *About India's stand on the Israel–Palestine Conflict* (Working Paper No. 35). South Asia Democratic Forum.
- Rana, C. (2024, October 9). *The Hindu*.
- Rubinoff, A. G. (1995). Normalization of India–Israel relations: Stillborn for Forty Years. *Asian Survey, 35*(5).
- Saaida, M. B. E. (2022, September). *India's Foreign Policy Shift towards Palestine and Israel*. ResearchGate.
- Samuel, S., & Rajiv, C. (2016). *Indian Responses to Israel's Gaza Operations*. Begin–Sadat Centre for Strategic Studies.
- Sharma, P. K. (2023). *About India's stand on the Israel–Palestine Conflict* (Working Paper No. 35). South Asia Democratic Forum.
- Shukla, S. (2007). *Foreign policy of India*. Anamika Publishers & Distributors.
- Singh, A., Bhatia, M., & Maheshwari, R. K. (2025). Strategic Balancing and Geopolitical Narratives: India's Foreign Policy in the Israel–Palestine Conflict. *International Journal of Research Publication and Reviews, 6*(3).
- Singh, S. (1973). *Speech in Rajya Sabha*. Ministry of External Affairs, Government of India.
- Singh, S. R. (2001). India and Israel: Towards Greater Cooperation. *India Quarterly, 57*(4).
- Singh, S. (2015). *India's foreign policy: Changing perspective with Special Reference to SAARC Countries*. Prashant Publishing House.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 85-93

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जनजातीय समाज में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता : छत्तीसगढ़ का विश्लेषण

डॉ. पायल पोद्दार
सहायक प्राध्यापक, समाज कार्य विभाग, मैट्स यूनिवर्सिटी, रायपुर।

सारांश :

यह शोध पत्र छत्तीसगढ़ राज्य के जनजातीय समाजों में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, पहुंच और गुणवत्ता का एक व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। द्वितीयक स्रोतों पर आधारित इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य अवसंरचना की वर्तमान स्थिति, सरकारी योजनाओं के प्रभाव, तथा स्वास्थ्य परिणामों को प्रभावित करने वाले सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों का मूल्यांकन करना है। शोध के तीन मुख्य प्रश्न हैं : (1) छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और अभिगम्यता की वर्तमान स्थिति क्या है? (2) सरकारी स्वास्थ्य हस्तक्षेप (आयुष्मान भारत, पीएम–जनमन, मोबाइल मेडिकल यूनिट आदि) का जनजातीय समुदायों पर क्या प्रभाव पड़ा है? (3) कुपोषण, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, तथा संचारी रोगों के संदर्भ में प्रमुख चुनौतियाँ क्या हैं? शोध निष्कर्ष बताते हैं कि हाल के वर्षों में सरकारी प्रयासों से स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है, विशेषकर बस्तर संभाग में 130 स्वास्थ्य संस्थानों को राष्ट्रीय गुणवत्ता प्रमाणन प्राप्त हुआ है और 57 मोबाइल मेडिकल यूनिट्स को पीवीटीजी क्षेत्रों में सेवाएं देने के लिए शुरू किया गया है (डेक्कन क्रॉनिकल, 2026, द प्रिंट, 2025)। तथापि, एनएफएचएस–5 के आंकड़े बताते हैं कि छत्तीसगढ़ में पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों में मृत्यु दर (50.4 प्रति 1000) राष्ट्रीय औसत (41.9) से अधिक है, 35.7% बच्चे स्टंटिंग से प्रभावित हैं, और 62.2% ग्रामीण महिलाएं एनीमिक हैं (गावी, 2023, पीसीआई ग्लोबल, 2024)। बिलासपुर जिले में केवल 52.5% बच्चों का पूर्ण टीकाकरण हुआ है, जबकि बेंगलुरु ग्रामीण क्षेत्रों में यह 90% से अधिक है (गावी, 2023)। अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि भौगोलिक दुर्गमता, सूचना की कमी, पारंपरिक धारणाएं और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का बढ़ता उपयोग जैसे कारक स्वास्थ्य परिणामों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहे हैं। एक समावेशी, सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील और सामुदायिक भागीदारी पर आधारित स्वास्थ्य नीति की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : जनजातीय स्वास्थ्य, छत्तीसगढ़, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, पीवीटीजी, कुपोषण, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, आयुष्मान भारत, पीएम–जनमन।

परिचय एवं शोध उद्देश्य :

स्वास्थ्य एक मौलिक मानव अधिकार है, फिर भी भारत के जनजातीय समुदाय ऐतिहासिक रूप से गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित रहे हैं। भौगोलिक दुर्गमता, बुनियादी ढांचे की कमी, सूचना तक असमान पहुंच, और सामाजिक–आर्थिक दुर्बलताओं के संयुक्त प्रभाव ने जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य परिणामों को राष्ट्रीय औसत से काफी पीछे रखा है। छत्तीसगढ़ राज्य, जहाँ अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 30.6% है, इस स्वास्थ्य असमानता के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण केस स्टडी के रूप में उभरता है (केन्द्रीय जनगणना कार्यालय, 2011)।

राज्य के जनजातीय क्षेत्र, विशेष रूप से बस्तर संभाग और सरगुजा जिले, लंबे समय से नक्सलवाद, वन विभाग की बाधाओं और चुनौतीपूर्ण भौगोलिक परिस्थितियों के कारण स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार में कठिनाइयों का सामना कर रहे थे। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, दंतेवाड़ा जिले के पोटली गांव का प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र 20 वर्षों तक स्थानीय संघर्ष के कारण पूरी तरह से अप्रयुक्त पड़ा रहा (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)। ऐतिहासिक रूप से इन क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों को, विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों को, सबसे बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए भी 15–18 किलोमीटर पैदल चलना पड़ता था (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)।

इस पृष्ठभूमि में इस शोध के तीन प्रमुख प्रश्न हैं :

1. छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और अभिगम्यता की वर्तमान स्थिति क्या है?
2. सरकारी स्वास्थ्य हस्तक्षेपों (जैसे आयुष्मान भारत, पीएम–जनमन, मोबाइल मेडिकल यूनिट) का जनजातीय समुदायों के स्वास्थ्य परिणामों पर क्या प्रभाव पड़ा है?
3. जनजातीय समाजों में कुपोषण, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, तथा संचारी रोगों के संदर्भ में प्रमुख चुनौतियाँ और अवसर क्या हैं?

शोध पद्धति :

यह अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। द्वितीयक आंकड़ों के इस विश्लेषणात्मक अध्ययन में विभिन्न प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। इनमें शैक्षणिक शोध पत्र (इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ, 2024), अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की रिपोर्टें (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025, गावी, 2023), सरकारी रिपोर्टें (केन्द्रीय जनगणना कार्यालय, 2011, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–5, 2019–21), समाचार एजेंसियों की रिपोर्टें (एएनआई, 2025य डेक्कन क्रॉनिकल, 2026, द प्रिंट, 2025), और गैर–सरकारी संगठनों के अध्ययन (पीसीआई ग्लोबल, 2024) शामिल हैं। डेटा संग्रहण के बाद, त्रिकोणन (Triangulation) विधि से विभिन्न स्रोतों के निष्कर्षों की पुष्टि की गई है। सभी स्रोतों को एपीए 7वें संस्करण के अनुसार हिंदी में उद्धृत किया गया है।

सैद्धांतिक ढांचा :

इस शोध पत्र को तीन प्रमुख सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों द्वारा निर्देशित किया गया है। प्रथम, स्वास्थ्य अभिगम्यता का सिद्धांत, जो स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच को पांच आयामों में देखता हैरू उपलब्धता, पहुंचनीयता, सामर्थ्य, स्वीकार्यता, और गुणवत्ता। यह ढांचा छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं के असमान वितरण को समझने में सहायक है। द्वितीय, सामाजिक निर्धारकों का मॉडल, जो स्वास्थ्य परिणामों को प्रभावित करने वाले

सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों (जैसे गरीबी, शिक्षा, लिंग, सामाजिक बहिष्कार) का विश्लेषण करता है। तृतीय, सामुदायिक स्वास्थ्य का परिप्रेक्ष्य, जो स्थानीय समुदायों की भागीदारी, मितानिनों (सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं) की भूमिका, और सांस्कृतिक संवेदनशीलता पर बल देता है (जन स्वास्थ्य सहयोग, 2023)।

छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाज का स्वास्थ्य प्रोफाइल :

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस–5, 2019–21) के आंकड़े छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाजों में गंभीर स्वास्थ्य चुनौतियों को उजागर करते हैं। राज्य की 77% से अधिक जनसंख्या ग्रामीण है, और यहाँ पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में मृत्यु दर 50.4 प्रति 1000 है, जो राष्ट्रीय औसत (41.9) से काफी अधिक है (गावी, 2023)। 23.1% महिलाएं कम वजन (अंडरवेट) की श्रेणी में आती हैं, जबकि राष्ट्रीय औसत 18.1% है। केवल 65% गर्भवती महिलाओं ने अपनी पहली तिमाही में प्रसव पूर्व जांच करवाई, जो राष्ट्रीय औसत 70% से कम है (गावी, 2023)।

बिलासपुर जिले की स्थिति और भी गंभीर है, जहाँ केवल 46.9% माताओं ने अनुशंसित चार प्रसव पूर्व जांच करवाईं, और केवल 52.5% बच्चों का पूर्ण टीकाकरण हुआ (गावी, 2023)। पीसीआई ग्लोबल (2024) के अध्ययन के अनुसार, राज्य में 35.7% बच्चे स्टंटिंग (बौनापन), 18.9% वेस्टिंग (दुबलापन), और 31.3% अंडरवेट (कम वजन) से प्रभावित हैं। 25.3% ग्रामीण महिलाओं का बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) कम है, और 62.2% ग्रामीण महिलाएं एनीमिक हैं।

बिलासपुर के जनजातीय क्षेत्र में एक अध्ययन में पाया गया कि सीमांत किसान और भूमिहीन परिवारों में महिलाएं और बच्चे प्रतिदिन केवल 2–3 भोजन ग्रहण करते हैं, जिसमें मुख्यतः अनाज, दालें और सब्जियाँ शामिल होती हैं। प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थ (अंडे, दूध, मांस, मछली) और सूक्ष्म पोषक तत्वों (नट्स, बीज, फल) का सेवन लगभग नगण्य है (पीसीआई ग्लोबल, 2024)। बिलासपुर के जनजातीय क्षेत्रों में गंभीर तीव्र कुपोषण (Severe Acute Malnutrition) की दर 17.4% है, और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के बढ़ते उपयोग और पारंपरिक आहार प्रथाओं के ह्रास को 'पोषण विरोधाभास' (Nutrition Paradox) के रूप में पहचाना गया है (इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ, 2024)।

स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और अभिगम्यता : वर्तमान स्थिति

1. अवसंरचना और पहुंच की चुनौतियाँ :

छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की सबसे बड़ी चुनौती भौगोलिक दुर्गमता और संघर्ष की स्थितियाँ रही हैं। दंतेवाड़ा जिले के कुआकोण्डा ब्लॉक के पोटली गाँव में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (पीएचसी) 2004–05 में बनाया गया था, लेकिन 20 वर्षों तक नक्सली हिंसा और असुरक्षा के कारण यह पूरी तरह से अप्रयुक्त पड़ा रहा। नक्सलियों ने इसकी दीवारों पर चेतावनी संदेश लिख दिए थे, जिससे इसका उपयोग असंभव हो गया था (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)। इस क्षेत्र के लोगों को या तो कोई स्वास्थ्य सेवा नहीं मिलती थी, या फिर वे 15–18 किलोमीटर नंगे पैर चलकर दूरस्थ स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँचते थे।

गावी (2023) के अनुसार, जन स्वास्थ्य सहयोग (जेएसएस) संगठन के सर्वेक्षण में पाया गया कि 'जेएसएस से पहले, इस क्षेत्र में स्वास्थ्य प्रणाली लगभग अदृश्य थी। समुदाय सभी मामलों में बहुत शर्मीले और कमजोर थे।' महिलाओं की स्थिति और भी कठिन थी – जब पुरुष काम पर जाते थे, तो महिलाओं और बच्चों

के पास बुखार या दर्द निवारक जैसी साधारण बीमारियों के लिए भी कोई सहायता नहीं होती थी (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)।

बिरहोर समुदाय, जो एक विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (पीवीटीजी) है, की स्थिति और भी चुनौतीपूर्ण है। यह समुदाय पारंपरिक रूप से खानाबदोश जीवन जीता था, जंगलों में पेड़ों पर झोपड़ियाँ बनाकर रहता था और शिकार पर निर्भर था। इनकी खानाबदोश जीवनशैली के कारण ये स्थायी स्वास्थ्य केंद्रों से वंचित रहते थे (एएनआई, 2025)। कोरबा के डॉ. दिलेश्वर सिंह के अनुसार, 'बिरहोर जैसे पिछड़े जनजातीय समूहों के लिए स्वास्थ्य शिविर आयोजित किए जा रहे हैं, जो एक स्थान पर नहीं रहते हैं और इसलिए प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल या नजदीकी स्वास्थ्य केंद्रों तक नहीं पहुंच पाते हैं। उनके लिए, हम गाँव–गाँव जाकर स्वास्थ्य शिविर लगाते हैं' (एएनआई, 2025)।

2. हालिया सुधार और प्रमाणन :

हाल के वर्षों में, छत्तीसगढ़ सरकार ने जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। द प्रिंट (2025) की रिपोर्ट के अनुसार, बस्तर संभाग में 1 जनवरी 2024 से 16 जून 2025 के बीच 130 स्वास्थ्य संस्थानों को राष्ट्रीय गुणवत्ता आश्वासन मानक (एनक्यूएएस) प्रमाणन प्राप्त हुआ है। इनमें एक जिला अस्पताल, 16 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और 113 उप–स्वास्थ्य केंद्र शामिल हैं। 65 अन्य स्वास्थ्य सुविधाएं वर्तमान में प्रमाणन प्रक्रिया से गुजर रही हैं। इसके अतिरिक्त, पिछले 18 महीनों में बस्तर में 33 चिकित्सा विशेषज्ञों, 117 चिकित्सा अधिकारियों और एक दंत सर्जन की नियुक्ति की गई है, साथ ही 75 राज्य–स्तरीय और 307 जिला–स्तरीय कर्मचारियों की भर्ती की गई है (द प्रिंट, 2025)।

'नियद नेल्लानार' (तुम्हारा अच्छा गाँव) योजना के तहत बस्तर में आयुष्मान कार्ड का वितरण तेज किया गया है। एक वर्ष में 36,231 आयुष्मान कार्ड जारी किए गए हैं, जिससे 52.6% कवरेज प्राप्त हुआ है। अब तक, 6,816 लाभार्थियों को योजना के तहत 8.22 करोड़ रुपये की चिकित्सा सहायता मिली है (द प्रिंट, 2025)।

3. मोबाइल मेडिकल यूनिट्स : स्वास्थ्य सेवाओं को दरवाजे तक पहुँचाना :

दिसंबर 2025 में, छत्तीसगढ़ सरकार ने प्रधानमंत्री जनजातीय आदिवासी न्याय महाअभियान (पीएम–जनमन) योजना के तहत 57 मोबाइल मेडिकल यूनिट्स (एमएमयू) को हरी झंडी दिखाई (डेक्कन क्रॉनिकल, 2026)। ये इकाइयाँ राज्य के 18 जिलों में फैली 2,100 से अधिक गाँवों और बस्तियों में नियमित स्वास्थ्य सेवाएँ सुनिश्चित करेंगी। इस पहल से दो लाख से अधिक पीवीटीजी व्यक्तियों को सीधे लाभ होने की उम्मीद है। प्रत्येक मोबाइल मेडिकल यूनिट में एक डॉक्टर, नर्स, लैब टेक्नीशियन और स्थानीय स्वयंसेवक होंगे। ये इकाइयाँ 25 प्रकार के डायग्नोस्टिक टेस्ट और 106 प्रकार की दवाइयाँ निःशुल्क प्रदान करेंगी (डेक्कन क्रॉनिकल, 2026)।

सरकारी योजनाओं और हस्तक्षेपों का प्रभाव :

1. आयुष्मान भारत स्वास्थ्य और कल्याण केंद्र (एबी-एचडब्ल्यूसी) :

पोटली गाँव का प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र इस बात का एक उत्कृष्ट उदाहरण है कि कैसे सरकारी पहल और सामुदायिक भागीदारी मिलकर बदलाव ला सकती है। वर्ष 2021–22 में, इस उप–स्वास्थ्य केंद्र को आयुष्मान भारत स्वास्थ्य और कल्याण केंद्र (एबी–एचडब्ल्यूसी) कार्यक्रम के तहत अपग्रेड करने के लिए चुना गया। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने, सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज (यूएचसी) साझेदारी के माध्यम से, सेवा वितरण को

बढ़ाने और हस्तक्षेपों के प्रभाव का आकलन करने में तकनीकी सहायता प्रदान की (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)।

जनवरी 2025 में इस केंद्र का उद्घाटन किया गया। अब यहाँ एक समुदायिक स्वास्थ्य अधिकारी, 3 ग्रामीण स्वास्थ्य अधिकारी, और 26 सामुदायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवक कार्यरत हैं। खुलने के पहले 9 महीनों में ही इस केंद्र में लगभग 2,500 रोगी आउटरीड विजिट दर्ज की गईं (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)। पोटली की सरपंच ललिता मंडावी ने कहा, 'हम अब इलाज के लिए पुरुषों पर निर्भर नहीं हैं। अब हम खुद देखभाल प्राप्त कर सकते हैं' (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)।

2. पीएम-जनमन और मोबाइल स्वास्थ्य सेवाएँ :

प्रधानमंत्री जनजातीय आदिवासी न्याय महाअभियान (पीएम–जनमन) विशेष रूप से पीवीटीजी समुदायों के विकास पर केंद्रित है। कोरबा जिले में, इस योजना के तहत बिरहोर बस्तियों में स्वास्थ्य शिविर आयोजित किए जा रहे हैं। कोरबा कलेक्टर अजीत वसंत ने बताया कि 'पीवीटीजी समुदायों में स्वास्थ्य सुविधाओं को बढ़ावा देने के लिए, उनकी बस्तियों में शिविर आयोजित किए जा रहे हैं। उनके क्षेत्रों में स्वास्थ्य केंद्र नियमित रूप से उनकी निगरानी करते हैं। गर्भवती महिलाओं और कुपोषित बच्चों को प्रसव पूर्व देखभाल (एएनसी) के लिए लाया जाता है'। (एएनआई, 2025)।

बिरहोर समुदाय के सदस्य माखन के अनुसार, 'डॉक्टर यहाँ हर हफ्ते शिविर लगाते हैं। हमें जो भी समस्या होती है, हम बताते हैं और उसके अनुसार दवा लेते हैं। वे हर हफ्ते हमारी जाँच करने आते हैं। पहले, हम अस्पतालों पर ज्यादा ध्यान नहीं देते थे। हम घर पर ही प्रसव कराते थे। लेकिन अब हम अस्पतालों में प्रसव करा रहे हैं। सभी प्रसव अच्छे से हुए हैं, और सभी स्वस्थ हैं'। (एएनआई, 2025)।

3. मितानिन : सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की भूमिका :

छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में 'मितानिन' (सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता) एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करती हैं। बिलासपुर के सेमरिया गाँव की वरिष्ठ ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकर्ता संतोषी गंधर्व, जो 23 वर्षों से इस क्षेत्र में काम कर रही हैं, बताती हैं कि 'जब मैं गर्भवती माताओं से मिलने जाती हूँ, तो मैं उन्हें समझाने की कोशिश करती हूँ कि 'तिक्का' या टीका महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह हमें खतरनाक बीमारियों से बचाता है, विशेषकर हमारे बच्चों को। उनमें से कई नहीं जानते कि नवजात शिशुओं के लिए टीके–विशेष रूप से तपेदिक या पोलियो जैसी बीमारियों के लिए – उनकी जान बचा सकते हैं, इसलिए मैं सुनिश्चित करती हूँ कि वे समझें'। (गावी, 2023)।

जन स्वास्थ्य सहयोग (जेएसएस) संगठन ने 146 ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं (वीएचडब्ल्यू) को प्रशिक्षित किया है, जिन्हें समुदाय द्वारा चुना जाता है। जैसा कि मिनल मदनकर बताती हैं, 'भरोसा ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकर्ता बनने का मुख्य घटक है। गाँव एक साथ मिलकर वोट करता है कि वे किसे सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, जो शैक्षिक योग्यता पर आधारित नहीं होता, बल्कि समुदाय में महिलाओं के संबंधों पर आधारित होता है। हम फिर महिलाओं को सर्दी, खांसी, बुखार जैसी छोटी बीमारियों के साथ–साथ टीबी, उच्च रक्तचाप और मधुमेह जैसी पुरानी बीमारियों को पहचानने का प्रशिक्षण देते हैं'। (गावी, 2023)।

4. ईएमआरएस में स्वास्थ्य सुविधाएँ :

एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय (ईएमआरएस) न केवल शिक्षा प्रदान करते हैं बल्कि छात्रों के पोषण और समग्र स्वास्थ्य का भी ध्यान रखते हैं। जनजातीय कार्य मंत्रालय (2025) के अनुसार, कोल इंडिया लिमिटेड (सीआईएल) के सीएसआर फंड से 68 ईएमआरएस में लगभग 1200 सैनिटरी नैपकिन वेंडिंग मशीनें और 1200 इंसिनरेटर स्थापित किए जाएंगे, जिससे छात्राओं के स्वास्थ्य और स्वच्छता में सुधार होगा। यह पहल 28,000 से अधिक जनजातीय छात्रों को लाभान्वित करेगी।

7. प्रमुख स्वास्थ्य चुनौतियाँ :

1. कुपोषण और पोषण विरोधाभास :

कुपोषण छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में सबसे गंभीर स्वास्थ्य चुनौती बनी हुई है। इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ (2024) के एक अध्ययन में बिलासपुर के जनजातीय क्षेत्रों में 'पोषण विरोधाभास' की पहचान की गई है – जहाँ एक ओर गंभीर तीव्र कुपोषण (एसएएम) की दर 17.4% है, वहीं दूसरी ओर प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का उपयोग और निर्भरता बढ़ रही है। अध्ययन में चार एसएएम–प्रभावित बच्चों के मामलों का पूर्वव्यापी विश्लेषण करते हुए पाया गया कि सामान्य कारकों में मातृ कुपोषण, गरीबी, बार–बार संक्रमण, खराब बच्चे–पालन ज्ञान, अपर्याप्त जन्म अंतराल, और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का उपयोग शामिल हैं (इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ, 2024)।

पीसीआई ग्लोबल (2024) के अध्ययन में पाया गया कि 80–100% कृषक परिवार अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति समुदायों के थे। अंडे का सेवन केवल 4–5% परिवारों में होता था, और दूध तथा दूध उत्पादों और फलों का सेवन नगण्य था। गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाएं प्रतिदिन केवल 2–3 भोजन ग्रहण करती थीं, जिसमें तीन खाद्य समूह – अनाज, दालें और सब्जियाँ – शामिल होते थे। दो वर्ष से कम आयु के बच्चों को प्रतिदिन 2–3 भोजन दिए जाते थे, जिसमें 2–3 खाद्य समूह होते थे, आमतौर पर अनाज और दालों से बना दलिया (पीसीआई ग्लोबल, 2024)।

2. मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य :

छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के आंकड़े चिंताजनक हैं। गावी (2023) के अनुसार, जन स्वास्थ्य सहयोग (जेएसएस) के क्षेत्र में कार्यरत मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यकर्ता राजकुमारी उरांव बताती हैं कि 'जो महिलाएं जंगलों में रहती हैं और वहीं प्रसव कराती हैं, वे संक्रमण के उच्च जोखिम में होती हैं, क्योंकि लंबी दूरी और अन्य बाधाओं के कारण उपचार प्राप्त करना समझौता हो जाता है। हम सुनिश्चित करती हैं कि महिला को सभी आवश्यक टीकों के बारे में पता हो, जिसमें टेटनस शामिल है, और निश्चित रूप से उनके नवजात शिशुओं के लिए बीसीजी, पोलियो और हेपेटाइटिस बी जैसे टीके भी शामिल हैं।'

बिलासपुर में केवल 46.9% माताओं ने चार अनुशंसित प्रसव पूर्व जांच करवाईं, और केवल 52.5% बच्चों का पूर्ण टीकाकरण हुआ, जबकि बेंगलुरु ग्रामीण क्षेत्रों में यह आंकड़ा 90% से अधिक था (गावी, 2023)। यह अंतर न केवल भौतिक पहुंच का है, बल्कि सूचना और जागरूकता का भी है।

3. भाषा और सूचना की बाधा :

स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच में सूचना की कमी एक महत्वपूर्ण बाधा है। बेंगलुरु में कार्यरत दाई पूजा

(बदला हुआ नाम) बताती हैं कि 'स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच, निश्चित रूप से, एक बड़ा कारक है, लेकिन इससे भी अधिक, सूचना तक पहुंच महत्वपूर्ण है। छत्तीसगढ़ में पीढ़ीगत ज्ञान है, लेकिन स्पष्ट, सुगम जानकारी तक पहुंच आवश्यक है'। (गावी, 2023)। बिलासपुर के जनजातीय क्षेत्रों में कई खाद्य–संबंधी मिथक और वर्जनाएं पाई गईं, जैसे – करेला और कोरल सब्जी को एक साथ खाने से जहर हो जाता है, स्तनपान कराने वाली माता द्वारा अरबी का सेवन करने से बच्चे को खांसी होती है, यदि स्तनपान कराने वाली माता चटनी (टमाटर, हरी मिर्च, धनिया) का सेवन करती है तो बच्चे को दस्त हो जाते हैं (पीसीआई ग्लोबल, 2024)।

4. प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का बढ़ता उपयोग :

एक चिंताजनक प्रवृत्ति पारंपरिक आहार प्रथाओं के ह्रास और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों पर बढ़ती निर्भरता की है। इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ (2024) के अध्ययन में इसे 'पोषण विरोधाभास' के रूप में पहचाना गया है – एक ओर जहाँ कुपोषण व्यापक है, वहीं दूसरी ओर प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का प्रसार हो रहा है। पीसीआई ग्लोबल (2024) के अध्ययन में भी पाया गया कि गर्भवती महिलाएं अनुशंसित तीन भोजन और दो स्नैक्स के आधे से भी कम का सेवन कर रही हैं, और उनके भोजन में प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों (अंडे, दूध, मांस) और सूक्ष्म पोषक तत्वों (नट्स, बीज, फल, मछली) की कमी है।

अवसर और भविष्य की दिशाएँ :

सकारात्मक पक्ष में, हाल के वर्षों में सरकारी पहलों ने जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार में महत्वपूर्ण प्रगति की है। पोटली में आयुष्मान भारत केंद्र का पुनरुद्घाटन, बस्तर में 130 स्वास्थ्य संस्थानों का राष्ट्रीय गुणवत्ता प्रमाणन, और 57 मोबाइल मेडिकल यूनिट्स की शुरुआत इस बात के उदाहरण हैं कि राजनीतिक और सामुदायिक इच्छाशक्ति से सबसे कठिन परिस्थितियों में भी स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचाई जा सकती हैं (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025, द प्रिंट, 2025, डेक्कन क्रॉनिकल, 2026)।

मितानिनों और ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की भूमिका को और मजबूत किए जाने की आवश्यकता है। जेएसएस का मॉडल, जहाँ समुदाय द्वारा चुनी गई महिलाओं को स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है, विश्वास और स्वीकार्यता का एक मजबूत आधार प्रदान करता है (गावी, 2023)। इसी प्रकार, सीएचआईआरएएजी परियोजना, जो बेहतर कृषि पद्धतियों के माध्यम से पोषण संबंधी परिणाम प्राप्त करने पर केंद्रित है, एक अभिनव दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है (पीसीआई ग्लोबल, 2024)।

निष्कर्ष एवं सिफारिशें :

यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाजों में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में हाल के वर्षों में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं, लेकिन कुपोषण, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, और संचारी रोगों के संदर्भ में अभी भी गंभीर चुनौतियाँ बनी हुई हैं। भौगोलिक दुर्गमता, सूचना की कमी, पारंपरिक धारणाएँ, और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का बढ़ता उपयोग जैसे कारक स्वास्थ्य परिणामों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहे हैं। मोबाइल मेडिकल यूनिट्स, सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं (मितानिनों) का सशक्तिकरण, और पीएम–जनमन जैसी लक्षित योजनाएँ सकारात्मक दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। तथापि, बिना सांस्कृतिक संवेदनशीलता और सामुदायिक भागीदारी के केवल बुनियादी ढाँचे का निर्माण पर्याप्त नहीं है।

नीति सिफारिशें :

1. **सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का सशक्तिकरण :** मितानिनों और अन्य ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को बेहतर प्रशिक्षण, मानदेय और संसाधन प्रदान किए जाएँ। उन्हें पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों के साथ एकीकृत करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

2. **स्थानीय भाषा में स्वास्थ्य सामग्री :** सभी स्वास्थ्य संबंधी जानकारी (टीकाकरण, गर्भावस्था देखभाल, पोषण) को गोंडी, हल्बी, कुरुख आदि स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाए। दृश्य सहायक सामग्री और चित्रों का उपयोग साक्षरता की कमी को पाटने में सहायक होगा।

3. **पोषण शिक्षा के साथ कृषि संपर्क :** सीएचआईआरएएज जैसी परियोजनाओं का विस्तार किया जाए, जो कृषि सुधारों को पोषण शिक्षा से जोड़ती हैं। घरेलू बगीचों को सभी मौसमों में क्रियाशील बनाने और स्थानीय, पौष्टिक खाद्य पदार्थों के सेवन को प्रोत्साहित किया जाए।

4. **मोबाइल स्वास्थ्य इकाइयों का नियमित संचालन :** 57 एमएमयू का नियमित संचालन सुनिश्चित किया जाए और इनका विस्तार अधिक दूरदराज क्षेत्रों में किया जाए। प्रत्येक इकाई में नियमित रूप से 25 डायग्नोस्टिक टेस्ट और 106 दवाइयाँ उपलब्ध हों (डेक्कन क्रॉनिकल, 2026)।

5. **सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील स्वास्थ्य संवाद :** खाद्य–संबंधी मिथकों और वर्जनाओं को ध्यान में रखते हुए, स्थानीय समुदाय के नेताओं और बुजुर्गों को शामिल करते हुए स्वास्थ्य संवाद कार्यक्रम डिजाइन किए जाएँ।

6. **निगरानी और मूल्यांकन :** सभी स्वास्थ्य हस्तक्षेपों की नियमित निगरानी और मूल्यांकन के लिए एक मजबूत प्रणाली विकसित की जाए, जिसमें स्थानीय समुदायों की प्रतिक्रिया को शामिल किया जाए।

संदर्भ (ग्रंथ सूची) :

1. एएनआई। (2025, नवंबर 24)। Chhattisgarh government improving access to education, healthcare for Birhor community. https://aninews.in/news/national/general-news/chhattisgarh-government-improving-access-to-education-healthcare-for-birhor-community20251124210223/
2. गावी, द वैक्सीन अलायंस। (2023, अक्टूबर 17)। Two Indias: Looking after mothers in rural Chhattisgarh and urban Bengaluru. https://www.gavi.org/vaccineswork/two-indias-looking-after-mothers-rural-chhattisgarh-and-urban-bengaluru
3. डेक्कन क्रॉनिकल। (2026, जनवरी 1)। Health on Wheels for Chhattisgarh Tribals. https://www.deccanchronicle.com/nation/health-on-wheels-for-chhattisgarh-tribals-1927587
4. द प्रिंट। (2025, अगस्त 5)। 130 health institutions in Chhattisgarh's Bastar get national quality certification. https://theprint.in/india/130-health-institutions-in-chhattisgarhs-bastar-get-national-quality-certification/2713803/
5. पीसीआई ग्लोबल। (2024, अप्रैल 30)। Identifying the Gaps in Diet of Rural Marginalized Communities of Chhatisgarh. https://www.pciglobal.in/identifying-the-gaps-in-diet-of-rural-marginalized-communities-of-chhatisgarh/

6. विश्व स्वास्थ्य संगठन। (2025, दिसंबर 1)। Resilience in India's tribal heartland to achieve health for all. https://www.who.int/news-room/feature-stories/detail/resilience-in-india-s-tribal-heartland-to-achieve-health-for-all
7. इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ। (2024)। Nutrition Paradox: Severe Acute Malnutrition Amidst the Proliferation of Processed Foods in Bilaspur's Tribal Region in Chhattisgarh, India. Indian Journal of Public Health, 68(4), 569-571.
8. जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार। (2025, जुलाई 18)। Bridging Gaps, Building Futures: CIL Commits ?10 Cr to Strengthen EMRS in Chhattisgarh. प्रेस सूचना ब्यूरो। https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2145787
9. केन्द्रीय जनगणना कार्यालय, भारत सरकार। (2011) |*Census of India 2011: Series-22, Chhattisgarh*.
10. अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान (आईआईपीएस)। (2021)। *National Family Health Survey (NFHS-5), 2019-21: Chhattisgarh*.
11. पीआरएस विधानिक अनुसंधान। (बिना वर्ष)। Educational Schemes for Tribals: Committee Reports. https://prsindia.org/policy/report-summaries/educational-schemes-for-tribalss
12. लाल, एम., और तिवारी, बी. (2024)। Digital Information Literacy among Tribal in the Chhattisgarh: A Study with Special Reference to Rural Areas of Kanker District. Journal of Indian Library Association, 58(3), 156-170.
13. विकासपीडिया। (बिना वर्ष)। Particularly Vulnerable Tribal Groups. https://vikaspedia.in/social-welfare/scheduled-tribes-welfare/particularly-vulnerable-tribal-groups
14. वैन डिज्क, जे. ए. जी. एम. (2020) A The Digital Divide. Polity Press.
15. हिन्दुस्तान टाइम्स। (2025, मई 6)। ? Chhattisgarh: Youths in Maoist-hit Dantewada secure tech jobs through 'NavGurukul'. https://www.hindustantimes.com/india-news/chhattisgarh-youths-in-maoist-hit-dantewada-secure-tech-jobs-through-navgurukul-101746528432715.html
16. रॉय, एस. बी. (2023)। Digital Ethnography: Opportunity and Challenges in Applying for Tribal Development. In Digital Ethnography (pp. 1-20). Taylor & Francis.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
April 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 94-105

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जाति जनगणना की माँग : राजनीतिक अर्थशास्त्र का विश्लेषण

Caste Census Demand : An Analysis of Political Economy

डॉ. प्रशांत कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, तिलकधारी पी. जी. कॉलेज, जौनपुर।

सारांश (Abstract) :

प्रस्तुत शोध पत्र भारत में जाति जनगणना की बढ़ती माँग का राजनीतिक अर्थशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करता है। भारत में 1931 के पश्चात् कोई जाति-आधारित जनगणना नहीं हुई है। OBC (Other Backward Classes) की वास्तविक जनसंख्या अज्ञात है तथा नीति-निर्माण में डेटा का अभाव एक गंभीर समस्या है। यह शोध इस प्रश्न को केंद्र में रखता है कि जाति जनगणना की माँग किस हद तक सामाजिक न्याय की वास्तविक आवश्यकता से प्रेरित है और किस हद तक यह राजनीतिक लामबंदी का उपकरण है। शोध में गुणात्मक (Qualitative) एवं द्वितीयक (Secondary) शोध प्रविधि का उपयोग किया गया है। परिकल्पना यह है कि जाति जनगणना की माँग मुख्यतः OBC राजनीति के पुनरुत्थान और विपक्षी गठबंधन की चुनावी रणनीति से जुड़ी है, यद्यपि इसके पक्ष में सामाजिक न्याय के वैध तर्क भी विद्यमान हैं। शोध निष्कर्ष बताते हैं कि जाति जनगणना एक आवश्यक नीतिगत उपकरण है किन्तु इसके कार्यान्वयन में अनेक तकनीकी, प्रशासनिक एवं राजनीतिक चुनौतियाँ हैं।

मुख्य शब्द (Keywords) : जाति जनगणना, OBC राजनीति, सामाजिक न्याय, मंडल आयोग, आरक्षण, राजनीतिक अर्थशास्त्र, SECC 2011, पिछड़ा वर्ग

1. प्रस्तावना (Introduction) :

भारत एक बहुजातीय, बहुधार्मिक एवं बहुसांस्कृतिक समाज है जिसमें जाति-व्यवस्था सदियों से सामाजिक संरचना की धुरी रही है। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान

निर्माताओं ने जाति-आधारित भेदभाव को समाप्त करने हेतु अनेक प्रावधान किये, किन्तु जाति एक सामाजिक वास्तविकता के रूप में आज भी विद्यमान है। नीति-निर्माण में जाति-आधारित डेटा की आवश्यकता एवं जाति जनगणना की माँग पिछले कुछ वर्षों में भारतीय राजनीति के केंद्र में आ गई है।

भारत में अंतिम जाति-आधारित जनगणना 1931 में अंग्रेजी शासनकाल में हुई थी। स्वतंत्र भारत में सामान्य जनगणनाओं में केवल SC/ST की गणना की गई। 2011 की SECC (Socio-Economic and Caste Census) में जाति-डेटा एकत्र किया गया किन्तु उसे अभी तक सार्वजनिक नहीं किया गया। इस रिक्तता के कारण OBC की वास्तविक जनसंख्या अनुमानित है – कुछ अनुमानों के अनुसार 50% से अधिक, जबकि मंडल आयोग ने इसे 52% माना था।

2023-24 में बिहार सरकार द्वारा जाति सर्वेक्षण कराने के बाद यह मुद्दा राष्ट्रीय राजनीति में पुनः जोरदार तरीके से उभरा। राहुल गांधी के नेतृत्व में INDIA गठबंधन ने इसे 2024 के लोकसभा चुनाव में प्रमुख मुद्दा बनाया। इसी संदर्भ में यह शोध जाति जनगणना की माँग के राजनीतिक अर्थशास्त्र को समझने का प्रयास करता है।

2. शोध समस्या (Research Problem)

इस शोध की केंद्रीय समस्या निम्नलिखित प्रश्नों के इर्द-गिर्द है :

- क्या जाति जनगणना की माँग सामाजिक न्याय की वास्तविक आवश्यकता से उत्पन्न है अथवा यह राजनीतिक दलों की चुनावी रणनीति मात्र है?
- जाति जनगणना के पक्ष और विपक्ष में कौन-से राजनीतिक एवं आर्थिक हित सक्रिय हैं?
- OBC डेटा की अनुपस्थिति नीति-निर्माण को किस प्रकार प्रभावित करती है?
- जाति जनगणना के राजनीतिक परिणाम क्या हो सकते हैं – सामाजिक समरसता या सामाजिक विभाजन?

अतः शोध की मूल समस्या यह है: जाति जनगणना की माँग एक सामाजिक-आर्थिक नीतिगत आवश्यकता है अथवा राजनीतिक लामबंदी का साधन – अथवा दोनों?

3. शोध उद्देश्य (Research Objectives)

1. जाति जनगणना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास-क्रम का अध्ययन करना।
2. जाति जनगणना की माँग के राजनीतिक अर्थशास्त्र को विश्लेषित करना।

3. जाति जनगणना के पक्ष एवं विपक्ष में उपस्थित तर्कों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना।
4. विभिन्न राजनीतिक दलों की स्थिति एवं हितों को समझना।
5. बिहार जाति सर्वेक्षण 2023 के अनुभव के आधार पर नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

4. परिकल्पना (Hypothesis)

इस शोध में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ (Hypotheses) प्रस्तावित हैं :

मुख्य परिकल्पना (Main Hypothesis) :

जाति जनगणना की माँग मुख्यतः OBC राजनीति के पुनरुत्थान एवं विपक्षी दलों की चुनावी रणनीति से प्रेरित है, यद्यपि इसके पक्ष में सामाजिक न्याय के वैध आधार भी उपस्थित हैं।

सहायक परिकल्पनाएँ (Sub-Hypotheses) :

- H1: जाति जनगणना की माँग मंडल कमीशन के बाद की OBC राजनीति की अगली कड़ी है।
- H2: SECC 2011 डेटा को सार्वजनिक न करना एक जानबूझकर राजनीतिक निर्णय है।
- H3: जाति जनगणना से आरक्षण की 50% सीमा को चुनौती मिल सकती है, जो इसे विवादास्पद बनाता है।
- H4: जाति जनगणना एक आवश्यक नीतिगत उपकरण है जो कल्याणकारी योजनाओं को अधिक प्रभावी बना सकती है।

5. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

5.1 शास्त्रीय साहित्य

B.R. Ambedkar ने 'Annihilation of Caste' (1936) में जाति-व्यवस्था को भारतीय समाज की मूलभूत समस्या के रूप में चिह्नित किया। उनके अनुसार जाति केवल श्रम-विभाजन नहीं बल्कि श्रमिकों का विभाजन है, जो पदानुक्रम पर आधारित है। इस दृष्टि से जाति-डेटा का संग्रह न केवल नीतिगत आवश्यकता है, अपितु सामाजिक न्याय का एक अनिवार्य आधार है।

Mandal Commission Report (1980) ने OBC की जनसंख्या 52% अनुमानित की और 27% आरक्षण की सिफारिश की। इस रिपोर्ट का आधार 1931 की जनगणना थी जो इसकी सबसे बड़ी सीमा थी। Christophe Jaffrelot ने 'India's

Silent Revolution' (2003) में OBC राजनीति के उदय को भारतीय लोकतंत्र की 'चुप्पी में क्रांति' कहा।

5.2 समकालीन साहित्य

Yogendra Yadav एवं Suhas Palshikar ने 'Party System and Electoral Politics' में तर्क दिया है कि जाति भारतीय चुनावी राजनीति में एक प्राथमिक चर (variable) है। Satish Deshpande ने 'Caste and Castelessness' में दर्शाया है कि उच्च जातियाँ अपनी जातीय पहचान को 'सामान्य' बताकर अदृश्य कर देती हैं – जबकि वे व्यवस्था से सर्वाधिक लाभान्वित होती हैं।

SECC 2011 के संदर्भ में Abhijit Sen Committee Report ने डेटा की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगाया। Ashwini Deshpande ने आर्थिक दृष्टि से तर्क दिया है कि जाति-आधारित आर्थिक असमानताएँ आज भी गहरी हैं और इन्हें केवल वर्ग-आधारित नीतियों से दूर नहीं किया जा सकता।

5.3 साहित्य की रिक्तता (Research Gap)

अधिकांश उपलब्ध शोध जाति जनगणना को या तो पूर्णतः समर्थन या पूर्णतः विरोध की दृष्टि से देखते हैं। राजनीतिक अर्थशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में – जो यह देखे कि किन आर्थिक हितों को राजनीतिक भाषा मिल रही है – ऐसा समग्र विश्लेषण सीमित है। यही इस शोध का मौलिक योगदान है।

6. शोध प्रविधि (Research Methodology)

6.1 शोध का स्वरूप

यह शोध विवरणात्मक-विश्लेषणात्मक (Descriptive-Analytical) स्वरूप का है। इसमें जाति जनगणना की माँग को ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संदर्भों में परखा गया है।

6.2 डेटा संग्रह पद्धति

- द्वितीयक डेटा स्रोत (Secondary Sources): सरकारी रिपोर्टें (SECC 2011, मंडल आयोग रिपोर्ट), संसदीय दस्तावेज, न्यायालय के निर्णय।
- अकादमिक साहित्य: पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध लेख, पुस्तकें और थीसिस।
- नीति दस्तावेज: NITI Aayog की रिपोर्टें, Planning Commission के दस्तावेज।
- मीडिया विश्लेषण: प्रमुख समाचार पत्रों में जाति जनगणना संबंधी प्रकाशित सामग्री का विश्लेषण।
- बिहार जाति सर्वेक्षण 2023 रिपोर्ट: राज्य-स्तरीय केस स्टडी के रूप में।

6.3 विश्लेषण पद्धति

- राजनीतिक अर्थशास्त्र विश्लेषण: विभिन्न वर्गों के हितों और शक्ति-संरचनाओं का मूल्यांकन।
- तुलनात्मक पद्धति: विभिन्न राज्यों के अनुभवों की तुलना।
- ऐतिहासिक-संस्थागत विश्लेषण: जनगणना की परंपरा और नीतिगत ढाँचे का अध्ययन।

6.4 शोध की सीमाएँ (Limitations)

- SECC 2011 के पूर्ण डेटा की अनुपलब्धता इस शोध की प्रमुख सीमा है।
- जाति की स्व-पहचान (self-identification) में क्षेत्रीय भिन्नताएँ डेटा की तुलनीयता को कठिन बनाती हैं।
- यह शोध मुख्यतः हिंदी भाषी क्षेत्रों के परिप्रेक्ष्य में अधिक केंद्रित है।

7. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

7.1 औपनिवेशिक काल में जाति जनगणना

ब्रिटिश प्रशासन ने 1881 से 1931 तक प्रत्येक जनगणना में जाति का विस्तृत डेटा एकत्र किया। इसका उद्देश्य 'divide and rule' की नीति को वैज्ञानिक आधार देना था – किन्तु इस डेटा ने प्रथम बार जाति की जनसंख्यात्मक वास्तविकता को उजागर किया। Nicholas Dirks ने 'Castes of Mind' (2001) में तर्क दिया है कि ब्रिटिश जनगणना ने जाति को और अधिक कठोर एवं स्थिर बना दिया।

7.2 स्वतंत्रता पश्चात् का निर्णय

स्वतंत्रता के बाद Jawaharlal Nehru के नेतृत्व में सरकार ने निर्णय लिया कि जाति-आधारित जनगणना जातीय विभाजन को और गहरा करेगी। इसके विरुद्ध Ambedkar का तर्क था कि डेटा के बिना नीतिगत हस्तक्षेप अंधे होंगे। 1951 से जनगणना में केवल SC/ST की गणना की जाने लगी।

7.3 मंडल आयोग और OBC प्रश्न

1980 में B.P. Mandal आयोग ने 1931 की जनगणना और अन्य स्रोतों के आधार पर OBC की जनसंख्या 52% अनुमानित की। 1990 में V.P. Singh सरकार द्वारा मंडल सिफारिशें लागू करने के पश्चात् भारतीय राजनीति में 'मंडल बनाम कमंडल' का युग आरंभ हुआ। Indra Sawhney vs. Union of India (1992) में सर्वोच्च न्यायालय ने आरक्षण की 50% सीमा निर्धारित की।

7.4 SECC 2011 – अधूरा प्रयास

UPA सरकार ने 2011 में SECC (Socio-Economic and Caste Census) कराया जिसमें जाति-डेटा भी एकत्र किया गया। किन्तु जाति-डेटा की गुणवत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए इसे आज तक सार्वजनिक नहीं किया गया। यह निर्णय विवादास्पद रहा है और विपक्ष ने इसे राजनीतिक कारणों से डेटा दबाने का आरोप लगाया।

7.5 बिहार जाति सर्वेक्षण 2023 – एक नई शुरुआत

नीतीश कुमार सरकार ने 2023 में बिहार में राज्य-स्तरीय जाति सर्वेक्षण कराया। परिणाम: EBC (Extremely Backward Classes) – 36.01%, OBC – 27.12%, SC – 19.65%, सामान्य वर्ग – 15.52%, ST – 1.68%। इस सर्वेक्षण के बाद बिहार सरकार ने आरक्षण सीमा 50% से बढ़ाकर 65% करने का प्रयास किया जिसे पटना उच्च न्यायालय ने असंवैधानिक ठहराया।

8. राजनीतिक अर्थशास्त्र का विश्लेषण

राजनीतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) यह मानता है कि नीतिगत माँगें कभी शून्य में नहीं उठतीं – वे हमेशा किसी सामाजिक समूह के हित, शक्ति-संरचना और बाजार संबंधों से जुड़ी होती हैं। इस दृष्टि से जाति जनगणना की माँग का विश्लेषण निम्नलिखित आयामों में किया जा सकता है:

8.1 आपूर्ति पक्ष: किसकी माँग है और क्यों?

समूह/दल	माँग का स्वरूप	राजनीतिक हित
INDIA गठबंधन (Congress, SP, RJD आदि)	राष्ट्रीय जाति जनगणना का समर्थन	OBC वोट बैंक को एकजुट करना
BJP	अस्पष्ट – 'OBC कल्याण' की बात पर जोर	सत्ताधारी दल होने के कारण सावधान
OBC संगठन	सटीक जनसंख्या के आधार पर आरक्षण	मंडल के बाद दूसरी क्रांति
SC/ST संगठन	मिश्रित – कहीं समर्थन, कहीं सावधानी	OBC विस्तार से SC/ST हिस्सेदारी न घटे

उच्च जातियाँ / सामान्य वर्ग	विरोध या चुप्पी	आरक्षण विस्तार का भय
बिहार, झारखंड, UP की क्षेत्रीय पार्टियाँ	प्रबल समर्थन	OBC पहचान की राजनीति

8.2 माँग पक्ष: OBC राजनीति का पुनरुत्थान

मंडल आयोग की सिफारिशें लागू होने के तीन दशकों में OBC राजनीति का चरित्र बदला है। प्रारंभिक दौर में जातीय गोलबंदी थी; बाद में OBC के भीतर प्रभुत्वशाली जातियों (dominant OBCs) और अत्यंत पिछड़ी जातियों (EBC) के बीच संघर्ष उभरा। 2014 के बाद BJP ने OBC वोटों को हिंदू राष्ट्रवाद के साथ जोड़ा – जिसे Jaffrelot 'OBC-isation of Hindutva' कहते हैं। जाति जनगणना की माँग इसी संदर्भ में एक counter-narrative है।

8.3 आर्थिक आयाम: संसाधनों का पुनर्वितरण

राजनीतिक अर्थशास्त्र का केंद्रीय प्रश्न है : जाति जनगणना से किसे क्या मिलेगा? यदि OBC की जनसंख्या 52% से अधिक प्रमाणित होती है, तो आरक्षण के विस्तार की माँग प्रबल होगी जिससे सरकारी नौकरियों, शिक्षा संस्थानों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में संसाधनों का पुनर्वितरण होगा। यह उन वर्गों के लिए सीधी आर्थिक चुनौती है जो वर्तमान व्यवस्था से लाभान्वित हैं।

8.4 सत्ता-संरचना और विरोधाभास

एक महत्वपूर्ण विरोधाभास यह है कि जो दल सत्ता में हैं वे जाति जनगणना की माँग को टालते रहे हैं – चाहे वे कांग्रेस हों (UPA काल में SECC डेटा दबाना) या BJP (2021 जनगणना में जाति कॉलम न जोड़ना)। इससे यह स्पष्ट होता है कि जाति जनगणना की वास्तविक राजनीतिक लागत बहुत अधिक है – यह एक नई सामाजिक शक्ति-संरचना को जन्म दे सकती है।

9. पक्ष में तर्क (Arguments in Favour)

9.1 नीतिगत प्रभावशीलता

किसी भी कल्याणकारी नीति के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए लक्षित जनसंख्या का सटीक डेटा आवश्यक है। OBC की वास्तविक जनसंख्या जाने बिना – उनके लिए योजनाओं का आवंटन अनुमान पर आधारित है। जाति जनगणना से OBC के भीतर भी उप-वर्गीकरण संभव होगा जिससे सबसे पिछड़ी जातियों तक संसाधन पहुँचेंगे।

9.2 सामाजिक न्याय का संवैधानिक आधार

संविधान का अनुच्छेद 340 OBC की पहचान और उनके उत्थान के लिए आयोग गठित करने का अधिकार देता है। इसके साथ ही अनुच्छेद 15(4) और 16(4) राज्य को पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देते हैं। यदि पिछड़ेपन की पहचान के लिए डेटा ही उपलब्ध नहीं, तो ये संवैधानिक प्रावधान अधूरे रह जाते हैं।

9.3 आर्थिक असमानता का जाति-आधार

Ashwini Deshpande और Thomas E. Weisskopf के शोध बताते हैं कि भारत में जाति और आर्थिक असमानता के बीच गहरा सह-संबंध है। NSSO डेटा दर्शाता है कि OBC एवं SC/ST परिवारों की औसत संपत्ति एवं आय सामान्य वर्ग की तुलना में अत्यंत कम है। जाति जनगणना इस असमानता को मापने और उसे दूर करने का उपकरण बन सकती है।

9.4 अंतर्राष्ट्रीय प्रचलन

अनेक देशों में demographic group-wise डेटा एकत्र किया जाता है – जैसे USA में racial/ethnic census, UK में ethnicity data, ब्राजील में color/race census। भारत में जाति-डेटा का संग्रह इसी श्रेणी में आता है और यह 'reverse discrimination' नहीं बल्कि साक्ष्य-आधारित नीति-निर्माण है।

10. विपक्ष में तर्क (Arguments Against)

10.1 जातीय विभाजन का खतरा

आलोचकों का तर्क है कि जाति जनगणना जाति-चेतना को और मजबूत करेगी। यदि हर जाति की सटीक जनसंख्या ज्ञात हो जाए, तो राजनीतिक दल और भी अधिक जाति-आधारित लामबंदी करेंगे। इससे 'जाति से बाहर' सोचने की प्रक्रिया बाधित होगी जो एक आधुनिक, समेकित राष्ट्र-निर्माण के लिए आवश्यक है।

10.2 तकनीकी एवं प्रशासनिक कठिनाइयाँ

भारत में जाति की पहचान अत्यंत जटिल है। एक ही जाति के भिन्न नाम अलग-अलग राज्यों में प्रचलित हैं। SECC 2011 में 46 लाख से अधिक जातियों के नाम दर्ज हुए जिनमें वर्तनी की भिन्नताएँ थीं। इसका वर्गीकरण एक महाकाय प्रशासनिक चुनौती है।

10.3 आरक्षण की 50% सीमा का प्रश्न

Indra Sawhney मामले (1992) में सर्वोच्च न्यायालय ने आरक्षण की 50% सीमा निर्धारित की है। यदि OBC की जनसंख्या 55-60% प्रमाणित होती है, तो

आरक्षण-विस्तार की माँग उठेगी जिसके लिए संविधान संशोधन की आवश्यकता होगी। यह एक गहरा विधिक और राजनीतिक संघर्ष उत्पन्न कर सकता है।

10.4 चुनावी दुरुपयोग

आलोचक यह भी कहते हैं कि जाति जनगणना के परिणाम चुनावी राजनीति में पार्टियों द्वारा उपयोग किए जाएंगे। इससे प्रत्येक चुनाव में 'जाति-गणित' और अधिक जटिल हो जाएगा तथा विकास की राजनीति पीछे चली जाएगी।

11. राज्य-स्तरीय अनुभव (State-Level Experiences)

11.1 बिहार – देश का पहला प्रयोग

बिहार जाति सर्वेक्षण 2023 भारत में जाति जनगणना के व्यावहारिक अनुभव का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है। नीतीश कुमार सरकार ने सर्वदलीय सहमति से यह सर्वेक्षण कराया। परिणाम सार्वजनिक किए गए और इसके आधार पर 94 लाख परिवारों को वित्तीय सहायता की घोषणा की गई।

हालाँकि इस सर्वेक्षण पर भी आपत्तियाँ उठीं: कुछ जातियों द्वारा डेटा को गलत बताया गया, और पटना उच्च न्यायालय ने 65% आरक्षण को असंवैधानिक घोषित किया। किन्तु समग्र रूप से बिहार प्रयोग यह दर्शाता है कि जाति सर्वेक्षण व्यावहारिक रूप से संभव है।

11.2 कर्नाटक – OBC आयोग रिपोर्ट

कर्नाटक में Havanur Commission, Venkataswamy Commission आदि ने OBC जनसंख्या का अनुमान लगाया। 2023 में कांग्रेस सरकार ने नई जाति रिपोर्ट तैयार कराई किन्तु Vokkaliga और Lingayat जातियों के विरोध के कारण इसे सार्वजनिक नहीं किया – यह दर्शाता है कि प्रभुत्वशाली OBC जातियाँ भी जनगणना से असहज हो सकती हैं।

11.3 तमिलनाडु और महाराष्ट्र

तमिलनाडु में 1921 से ही जाति-आधारित आरक्षण की परंपरा है (69% आरक्षण, 9वीं अनुसूची में संरक्षित)। महाराष्ट्र में मराठा आरक्षण की माँग इस बात का उदाहरण है कि प्रभुत्वशाली जातियाँ भी OBC श्रेणी में शामिल होने की माँग कर सकती हैं।

12. निष्कर्ष एवं सुझाव (Conclusion & Suggestions)

12.1 निष्कर्ष

इस शोध का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि जाति जनगणना की माँग एक बहुआयामी परिघटना है। यह न केवल सामाजिक न्याय का उपकरण है, बल्कि एक

राजनीतिक हथियार भी है जिसे विभिन्न दल अपने हित साधने के लिए उपयोग करते हैं।

- मुख्य परिकल्पना की पुष्टि: जाति जनगणना की माँग OBC राजनीति के पुनरुत्थान से अवश्य जुड़ी है, विशेषतः मंडल के बाद की राजनीति के संदर्भ में।
- H1 की पुष्टि: यह माँग मंडल-उत्तर राजनीति की अगली कड़ी है जो 'मंडल 2.0' का रूप ले रही है।
- H2 की पुष्टि: SECC 2011 डेटा को दबाना एक राजनीतिक निर्णय प्रतीत होता है।
- H3 की आंशिक पुष्टि: 50% सीमा का प्रश्न वास्तव में विवादास्पद है किन्तु यह एकमात्र बाधा नहीं है।
- H4 की पुष्टि: जाति जनगणना एक आवश्यक नीतिगत उपकरण है – बिहार के अनुभव से यह प्रमाणित होता है।

12.2 नीतिगत सुझाव

6. चरणबद्ध जाति जनगणना: 2021 जनगणना में देरी को देखते हुए एक विशेष OBC Census जल्द कराई जाए, जिसमें तकनीकी रूप से ध्वनि पद्धति का उपयोग हो।
7. SECC 2011 डेटा सार्वजनिक: SECC 2011 का जाति-डेटा तत्काल सार्वजनिक किया जाए, साथ ही इसकी सीमाओं को स्वीकार किया जाए।
8. OBC उप-वर्गीकरण: जाति जनगणना के आधार पर OBC के भीतर EBC (अत्यंत पिछड़ी जातियों) को विशेष प्रावधान दिए जाएँ। (सर्वोच्च न्यायालय ने 2024 में उप-वर्गीकरण को वैध माना है।)
9. राजनीतिक सहमति: जाति जनगणना को दलीय एजेंडे से ऊपर उठाकर राष्ट्रीय नीतिगत प्राथमिकता बनाया जाए – जैसे बिहार में सर्वदलीय सहमति से हुआ।
10. स्वायत्त आयोग: जाति डेटा संग्रह और विश्लेषण के लिए एक स्वायत्त, गैर-राजनीतिक आयोग का गठन हो जो चुनाव आयोग की भाँति संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हो।

12.3 समापन टिप्पणी

जाति भारतीय समाज की एक ऐसी वास्तविकता है जिसे न तो नकारा जा सकता है, न ही उपेक्षित किया जा सकता है। जाति जनगणना इस वास्तविकता को डेटा की भाषा में अभिव्यक्त करने का प्रयास है। इसका उद्देश्य जाति-व्यवस्था को

मजबूत करना नहीं, बल्कि उसकी असमानताओं को मापना और उन्हें दूर करना है। यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जाति जनगणना एक अनिवार्य किन्तु संवेदनशील नीतिगत आवश्यकता है – और इसे राजनीतिक पार्टियों के संकीर्ण हितों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय विकास के एजेंडे में शामिल किया जाना चाहिए।

13. संदर्भ-सूची (References)

प्राथमिक स्रोत

- Mandal Commission Report (Second Backward Classes Commission), Government of India, 1980.
- SECC Report 2011, Ministry of Rural Development, Government of India.
- Bihar Caste Survey Report, Government of Bihar, 2023.
- Indra Sawhney vs. Union of India, AIR 1993 SC 477.
- Constitution of India: Articles 15, 16, 340, Ninth Schedule.

द्वितीयक स्रोत – पुस्तकें

- Ambedkar, B.R. (1936). Annihilation of Caste. Bombay.
- Jaffrelot, Christophe (2003). India's Silent Revolution: The Rise of the Low Castes in North Indian Politics. Hurst & Company, London.
- Dirks, Nicholas B. (2001). Castes of Mind: Colonialism and the Making of Modern India. Princeton University Press.
- Deshpande, Satish (2011). The Problem of Caste. Orient Blackswan, New Delhi.
- Bayly, Susan (1999). Caste, Society and Politics in India from the Eighteenth Century to the Modern Age. Cambridge University Press.

शोध पत्र एवं लेख

- Yadav, Yogendra (1996). 'Electoral Politics in the Time of Change: India's Third Electoral System, 1989-99.' Economic and Political Weekly.

- Deshpande, Ashwini (2011). 'Caste at Birth? Redefining Disparity in India.' Review of Development Economics.
- Palshikar, Suhas (2009). 'The De-Sanskritization of OBC Politics.' Economic and Political Weekly.
- Weisskopf, Thomas E. (2004). 'Impact of Reservation on Admissions to Higher Education in India.' Economic and Political Weekly.

समाचार पत्र एवं ऑनलाइन स्रोत

- The Hindu: 'Caste Census and the Road Ahead' (2023).
- Indian Express: 'Bihar Caste Survey Results: What the Data Says' (2023).
- Economic and Political Weekly Online Archives.
- PRS Legislative Research Reports on Reservation Policy.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 106-111

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बिहार के जन आंदोलनों में नारी शक्ति : संघर्ष एवं योगदान

श्रुति कुमारी, शोधार्थिनी,
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा।
डॉ. प्रीति रंजन, सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग, एच. डी. जैन कॉलेज, आरा।

सारांश :

पूजा में शक्ति का आह्वान भी किया जाता है। धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं में महिलाओं को 'शक्ति' माना जाता है। महिलाओं का अपने आपको उस शक्ति का एक अंश (छोटा अंश ही) मानकर आंदोलन से जुड़ना सहज हो गया। आंदोलन में भाग लेना राजनीतिक माना ही नहीं गया, जो कि शायद एक नई और संदिग्ध भूमिका होती, उसे एक धार्मिक मिशन की तरह देखा गया। प्रारंभ में महिलाओं को अपनी महत्ता का अहसास नहीं था। किन्तु देश में जब सामाजिक पुनर्जागरण से प्रगतिशील विचारधारा जोड़ पकड़ने लगी तब महिलाओं ने अपनी महत्ता को पहचानना शुरू किया। कई लेखकों ने भी अपने लेखन के माध्यम से महिलाओं को यह एहसास दिलाया कि वह साहस तथा शौर्य में पुरुषों के समान है। तथा प्रत्येक वह कार्य करने में सक्षम है, जिसे पुरुष करते आ रहे हैं। इस संबंध में सुभद्रा कुमारी चौहान का कथन प्रासंगिक है– "खुब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी"। राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न चरणों में महिलाओं ने भारी संख्या में भाग लिया, अपनी आशाओं और आकांक्षाओं के साथ संख्यात्मक दृष्टि से तो उसे मजबूत बनाया ही, वे आंदोलन में अपने मुद्दे और मसविदे भी साथ लेकर आईं। महिलाओं को पहली बार घर से बाहर किसी गतिविधि में भाग लेने का मौका मिला।

महिलाओं के राजनीतिकरण की यह प्रक्रिया इतने निर्बाध व सहज ढंग से हुई कि पुरुष संरक्षकों की ओर से किसी रुकावट के बजाय उनकी सराहना ही मिली। तनिका सरकार ने अपने शोध में इस पहलू पर विशेष जोर दिया है। उनके अनुसार महिलाओं का राष्ट्रीय राजनीति में सामंजस्य इसलिए आसानी से हो सका क्योंकि गांधीजी को एक संत एवं देवता तथा देशभक्ति के आंदोलन को धर्म–युद्ध माना गया। गांधीजी की व्यक्तिगत छवि संत महात्मा की होने के कारण उनके नेतृत्व में शुरू हुए देशभक्ति आंदोलन की राजनीतिक और धार्मिक, मिली–जुली छवि बनी। उसका क्षेत्र राजनीति से ऊपर उठकर धार्मिक हो गया। देशभक्ति को धर्म माना गया, देश को देवी मां की संज्ञा दी गई जिसके लिए बड़े से बड़ा बलिदान कम ही था।

मुख्य शब्द :– देशभक्ति, राष्ट्रीय आंदोलन, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रगतिशील विचारधारा।

परिचर्चा :

महिलाएं प्रथम विश्वयुद्ध के समय से ही राजनीति से परिचित हो चुकी थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद कुछ

महिला संगठनों के बनने, कुछ महिला नेताओं के उभरने तथा कुछ राजनीतिक संगठनों में महिलाओं के भाग लेने की पृष्ठभूमि के कारण कांग्रेस को अपने आंदोलनकारी कार्यक्रमों में महिलाओं को शामिल करना संभव हो सका। एक कथित स्वर्ण युग की दुहाई देकर महिलाओं की राजनीतिक भूमिका को मान्यता मिली और राजनीतिक रणनीतिकारों ने महिलाओं के लिए जो गतिविधियां तय की वह स्त्रियों की सामाजिक, लिंगीय विचारधारा या प्रतिमानों के अनुरूप नहीं थी। एनी बेसेंट और सरोजनी नायडू जैसी महिला नेताओं ने कांग्रेस में महिलाओं की मौजूदगी तथा पहल करने का जो अहसास दिलाया उससे प्रेरित होकर महिलाओं ने राजनीति में शामिल होने की सोची। उन्हें राजनीतिक लक्ष्यों के साथ अपनी स्थिति व दर्जे में सुधार की आशा भी जगी। लेकिन उन दोनों नेताओं में से एक ने भी महिलाओं के लिए न तो कोई कार्यक्रम तय किया न ही जगह बनाई। वह तो जब कांग्रेस ने बड़े पैमाने पर जन आंदोलन शुरू किया तब महिलाओं को आंदोलन में शामिल करने के प्रयत्न किए गए। गांधीजी आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी के पूर्ण पक्षधर थे।

वे महिलाओं की सभाओं में अपने भाषणों में, आंदोलन में उनकी भागीदारी अनिवार्य बताते थे और साथ ही उन्हें यह कहकर प्रेरित करते थे कि देवियों और वीरांगनाओं की तरह आंदोलन में उनकी अपनी अलग भूमिका है और उनमें इस भूमिका को निभाने की शक्ति और हिम्मत भी है। उन्होंने महिलाओं को विश्वास दिलाया कि आंदोलन को उनके महत्वपूर्ण योगदान की जरूरत है। वे कहते थे कि जब महिलाएं सत्याग्रह आंदोलन में शामिल होंगी तभी पुरुष भी आंदोलन में पूरा योगदान दे पाएंगे। अपने मध्यवर्गीय अनुयायियों को उन्होंने यह भी याद दिलाया कि 85 प्रतिशत भारतीय महिलाएं निर्धनता और अज्ञान के अंधकार में डूबी हुई हैं। उन्होंने महिला नेताओं से कहा कि उन्हें सामाजिक सुधार, महिला शिक्षा एवं महिला अधिकारों के लिए कानून बनाने के लिए काम करना चाहिए, ताकि उन्हें उनके बुनियादी अधिकार मिल सके। उन्होंने कहा कि महिला नेताओं को सीता, द्रोपदी और दमयंती की तरह सात्विक, दृढ़ और नियंत्रित होना चाहिए तभी वह स्त्रियों के भीतर पुरुषों के साथ बराबरी का भाव जगा सकेंगी और अपने अधिकारों के प्रति सचेत तथा स्वतंत्रता के प्रति जाग्रत कर सकेंगी। साथ ही मुक्ति का रास्ता दिखाते हुए उनके अपने क्षेत्र में उनको शीर्ष स्थान दिला सकेंगी।

असहयोग आंदोलन :

सन् 1920–22 में जब असहयोग आंदोलन शुरू हुआ तो पहली बार महिलाएं भारी संख्या में आंदोलन से जुड़ीं। सैंकड़ों महिलाएं खादी और चरखा बेचने गली–गली गईं, उन्होंने खादी को लोकप्रिय बनाने के लिए जुलूस निकाले और समूहों में विदेशी कपड़ों की होली जलाई। उन्होंने शराब की दुकानों पर धरना दिया और शराब के लाइसेंस की सरकारी नीलामी को रोका। 1921 के कांग्रेस सम्मेलन में 144 महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें 131 महिला स्वैच्छिक कार्यकर्ता थीं और 14 महिलाएं विभिन्न समितियां में थीं। मुंबई में महिलाओं ने राष्ट्रीय स्त्री सभा का गठन किया और वह पूरी तरह राष्ट्रीय एक्टीविज्म के प्रति समर्पित था। यह पहला महिला संगठन था जो बिना पुरुषों की मदद की चलाया जाता था। इसके दो उद्देश्य थे– स्वराज और महिलाओं का उद्धार एवं उत्थान। दोनों उद्देश्य एक दूसरे से काफी नजदीक से जुड़े हुए थे। स्वराज को शांतिपूर्ण तरीके से हासिल करने में खादी और सूत कातना सम्मिलित था। महिलाओं का उद्धार महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियों द्वारा ही संभव था अतः देश का उद्धार और महिलाओं का उद्धार एक ही सिक्के के दो पहलू माने गए। राष्ट्रीय स्त्री सभा की सदस्याएं पूरे मुंबई में खादी के प्रचार में लगी थीं। उन्होंने नवंबर 1921 में 'प्रिंस ऑफ वेल्स' की

भारत यात्रा के विरोध में पूरे मुंबई शहर में हड़ताल आयोजित की। सभा की सदस्याओं ने गांवों में बनाई जाने वाली खादी की बिक्री के लिए शहर में कई केंद्र खोले, प्रदर्शनियां आयोजित कीं, घर–घर जाकर खादी बेची।

गांधीजी के हरिजन उद्धार के विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने हरिजनों की शिक्षा के लिए मुंबई के जी वार्ड में कक्षाएं लगाईं। यह कक्षाएं 1921 से 1930 तक चलीं। जब तिलक कोष की स्थापना हुई तो स्त्री सभा ने 44,519 रु. इकट्ठा करके गांधीजी को दिए। गांधीजी ने वे रुपए संस्था को वापस संस्था का काम आगे बढ़ाने के लिए दे दिए। उन्होंने इस पैसे से खादी वस्त्र भंडार खोला जहां 300 निर्धन लड़कियां घर पर बनाए वस्त्रों पर कढ़ाई करती थीं। उन्होंने खादी प्रदर्शनियां आयोजित कीं, वंचित वर्ग के लिए स्कूल खोले और सड़कों पर खादी बेची।

असहयोग आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी से उन्हें अपने लिए एक जगह मिली, महिलाओं के मन में अपनी उपलब्धियों के प्रति अहसास जगा। इसे तमिल के एक राष्ट्रवादी कवि ने अच्छी अभिव्यक्ति दी है : यह 1920 के दशक में लिखा गया था :

नाचो और खुशियां मनाओ
जिन्होंने कहा था
महिलाओं का किताबें छूना पाप है
मर चुके हैं!
जिन पागलों ने कहा था
वे स्त्रियों को घरों में बंद करके रखेंगे
अब अपना चेहरा छिपाकर बैठे हैं।
उन्होंने घरों में हमसे ऐसे काम कराया
मानो हम गाय–बैल हों
मार खाकर चुपचाप काम करना
हमने उसे समाप्त कर दिया है।
नाचो, गाओ और खुशियां मनाओ।

बिहार की अग्रणी महिलाओं में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की बहन भगवती देवी, उनकी पत्नी श्रीमती राजवंशी देवी, लाल बहादुर शास्त्री की बहन एवं शंभुशरण वर्मा की पत्नी श्रीमती सुन्दरी देवी, लोकनायक जयप्रकाश नारायण की पत्नी श्रीमती प्रभावती देवी, श्रीमती सुमित्रा देवी, श्रीमती राम दुलारी सिन्हा, अनुसूईया जयसवाल, श्रीमती शांति ओझा, श्रीमती लीला सिंह, श्रीमती राम स्वरूप देवी, श्रीमती राम प्यारी देवी, श्रीमती सरस्वती देवी, श्रीमती विंध्यवासिनी देवी, श्रीमती शारदा कुमारी, श्रीमती प्रियंवदा देवी, श्रीमती हसन इमाम, श्रीमती भवानी मल्होत्रा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन स्त्रियों के योगदान को हम कभी नहीं भूल सकते, क्योंकि उन्होंने बिहार के महिला वर्ग में जागृति लाने का निरंतर प्रयास किया। उनकी प्रेरणा से ही अनेक स्त्रियों ने जंगे आजादी में भाग लिया, जेल ग्रीन और अपने प्राणों तक को न्योछावर कर डाला।

19वीं सदी के अनेक लेखों एवं कागजातों से पता चलता है कि भोजपुर के जगदीशपुर, पीरो, बीबीगंज और आरा की अनेक महिलाओं ने गुप्त रूप से 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के दौरान कुंवर सिंह की सेना

की काफी मदद की थी। आरा की करमन बाई और धरमन बाई तथा नर्तकी गुलाबी ने बाबू कुंवर सिंह की हर तरह से मदद की थी। यह आन्दोलन दवा दिया गया, पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। शाहाबाद की नर्तकी गुलाबी झनक–झनक पायल बाजे का सरगम ही नहीं सुनाती थी, बल्कि तलवार की खनक भी सुनाती थी। यह बिहार के सुप्रसिद्ध स्वाधीनता सेनानी कुंवर सिंह की प्रेयसी थी। एक बार बाबू कुंवर सिंह को बचाने में इसे गोली लग गयी और वह शहीद हो गई। अपनी शहीद गुलाबी की स्मृति में बाबू कुंवर सिंह ने आरा में एक मस्जिद बनवायी थी।

1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। चम्पारण सत्याग्रह के सिलसिले में गांधी जी का पदार्पण बिहार में सन् 1917 में हुआ। इसमें महात्मा गांधी के आह्वान पर बिहार के छात्रों के साथ–साथ कुछ छात्राओं ने भी कॉलेज की पढ़ाई छोड़ दी। दिघवारा प्रखंड के मलखाचक गांव के अनेक लड़के और लड़कियों ने इस आन्दोलन में भाग लिया। गांधीजी की मान्यता थी कि स्वराज की विजय में भारत की स्त्रियों का उतना ही हिस्सा होना चाहिए जितना पुरुषों का। शुद्ध भावना से स्त्रियां कार्य कर पहाड़ों को भी हिला दे सकती हैं, ऐसा वे मानते थे। बापू कहते थे कि जब पुरुष जेलों में होंगे तो स्त्रियां ही उनके द्वारा छोड़े गए कामों को बड़ी खूबसूरती के साथ पूरा करेगी। गांधीजी का कहना था कि लोगों को समझाने बुझाने का कार्य स्त्री, पुरुष से बेहतर कर सकती है, क्योंकि उसमें अहिंसा की प्रवृत्ति ज्यादा है। इसलिए उन्होंने स्वराज की प्राप्ति के लिए महिलाओं को आगे आने को कहा था।

असहयोग आंदोलन के दौरान बिहार में शहरी एवं ग्रामीण, सभी क्षेत्रों की महिलाएं सक्रिय थीं। 1922 के आसपास हाजीपुर अनुमंडल का ग्रामीण इलाका पूरे देश में सबसे आगे रहा। इस इलाके में घटारो गांवों की स्त्रियां आन्दोलन में काफी सक्रिय रहीं। इस अनुमण्डल में श्री किशोरी प्रसन्न सिंह की पत्नी सुनीति देवी, श्री कुशवेश्वर सिंह की पत्नी विन्दा देवी, श्री कपिलदेव सिंह की मां और श्रीमती रामसखी देवी घटारो की थी। इन्होंने आन्दोलन में खुलकर भाग लिया। सत्यभाभा देवी, सीता देवी, श्री रामबहादुर सिंह की पत्नी एवं मां इसी अनुमण्डल की थीं। जेल से छूटने के बाद गांधी जी इन महिलाओं से मिलने स्वयं आये थे।

असहयोग आंदोलन के दिनों में महिलाओं की भागीदारी बहुत ही कम थी। कुछ महिलाओं में माधुरी तथा उर्मिला देवी का नाम आता है। उर्मिला देवी ने तो 1922 के कांग्रेस अधिवेशन में महत्वपूर्ण सेवा प्रदान की थी। विंध्यवासिनी देवी ने गया कांग्रेस में स्वयंसेविका दल संगठित कर अपनी दक्षता का परिचय देते हुए नेतृत्व किया था। रामतनुक देवी स्वयंसेविका के रूप में गया कांग्रेस में कार्य करने गयी थी। 1922 में ही भागलपुर क्षेत्र में दीप नारायण सिंह की पत्नी श्रीमती लीला सिंह अपने पति के साथ सक्रिय योगदान दे रही थी। प्रमुख कांग्रेसी नेता महेंद्र सिंह की पत्नी रामझरी देवी 1926 के गोहाटी अधिवेशन से 1929 के लाहौर कांग्रेस, 1931 के करांची अधिवेशन तथा 1934 के बम्बई सम्मेलन में अपने पति के साथ नियमित रूप से जाती रहीं।

जनवरी 1929 में पटना में अखिल भारतीय सम्मेलन का एक अधिवेशन हुआ। इसमें बिहार की महिलाओं को देश के अन्य भागों की महिलाओं से मिलने का अवसर मिला। देश की स्वतंत्रता एवं महिला समाज में जो कुरीतियां फैली हुई थी उन्हें दूर करने के तरीकों पर विचार–विमर्श किया गया। इसका एक अधिवेशन 7 दिसम्बर 1929 को हुआ। उसमें शारदा एक्ट के समर्थन तथा पर्दा एवं दहेज प्रथा के विरोध में प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव में नारी शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया।

4 मई, 1930 ई० को जब महात्मा गांधी गिरफ्तार कर लिए गए तब उसके विरोध में जगह–जगह हड़ताल तथा प्रदर्शन हुए और सभाओं में विदेशी वस्त्रों, विशेषकर ब्रिटिश वस्त्रों के बहिष्कार, अदालतों के बहिष्कार तथा शराब की दुकानों पर धरना देने के प्रस्ताव पारित किए गए। 9 मई, 1930 ई० को बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी ने सभी सहायक समितियों को यह आदेश दिया कि 16 मई से विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दुकानों पर धरना दिया जाए।

विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दुकानों पर धरना देने के काम में बिहार की महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। पटना की महिलाओं का नेतृत्व श्रीमती हसन इमाम, उनकी पुत्री शमी, विन्ध्यावासिनी देवी, श्रीमती सी०सी० दास और उनकी पुत्री गौरी दास ने किया। श्रीमती नन्दकिशोर लाल तथा कमल कामिनी प्रसाद के कार्य भी उल्लेखनीय हैं। इन महिलाओं ने नगर की सड़कों पर जुलूस निकालकर विदेशी वस्त्रों के वहिष्कार का प्रचार किया तथा व्यापारियों के घरों में जाकर उनसे आग्रह किया कि वे विदेशी वस्त्रों का व्यापार न करें। इन महिलाओं ने शराब की दुकानों पर भी सफलतापूर्वक धरना दिया। आंदोलन दिनों–दिन तीव्रतर होता गया, जिससे सरकार को महिला पुलिस की बहाली करनी पड़ी। श्रीमती शमी ने अनेक कॉलेजों में घूम–घूम कर विधार्थियों में नवचेतना का संदेश दिया।

अगस्त क्रांति के दौरान 9 अगस्त 1942 को राजेन्द्र प्रसाद गिरफ्तार कर लिए गए। उनकी गिरफ्तारी से बिहार में आंदोलन का रूप काफी उग्र हो गया तथा सारे सूबे में भारत छोड़ो, राजेन्द्र प्रसाद हमारे नेता हैं, 'कांग्रेस जिन्दाबाद' के गगनभेदी नारे सुनाई देने लगे। पटना में व्यापक रूप से प्रदर्शन, धरना एवं जुलूस के आयोजन किये गये। राजेन्द्र प्रसाद की गिरफ्तारी की खबर जब बी०एन० कॉलेज पहुंची तब विधार्थियों ने एक विशाल जुलूस निकालकर राजभवन तथा बांकीपुर जेल के सामने प्रदर्शन किया तथा पटना विश्वविद्यालय के अहाते में सभा कर विधार्थियों से अगस्त आंदोलन में शामिल होने की अपील की।

फलतः पूरे बिहार में रेल की पटरियां उखाड़ी गई, तार और टेलीफोन की लाइनें काटी गईं, डाकघरों, रेलवे स्टेशनों, थानों तथा अन्य सरकारी इमारतों को जलाया गया तथा पुलिस पर आक्रमण प्रारंभ किये गये। ऐसा करने का एकमात्र उद्देश्य युद्धकाल में सरकार को इस तरह परेशान करना था जिससे युद्ध–सामग्री भारत के बाहर न पहुंच सके। इस आंदोलन को दबाने के लिए सरकार ने तेजी से अपना दमनचक्र चलाया जिसमें गोली चालन, युवकों पर कोड़े तथा बेंतें बरसाना, सामूहिक जुर्माना तथा स्त्रियों को अपमानित करना सम्मिलित था।

निष्कर्ष :

बिहार में स्वतंत्रता संघर्ष का लम्बा इतिहास रहा है। औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध जब भी आवाज बुलंद हुई तो बिहार के लोग अग्रणी पंक्ति में खड़े हो गए। किन्तु यह पंक्ति तब और सशक्त हो गई, जब इसमें मातृशक्ति की सक्रिय भूमिका हो गई। बिहार का यह सौभाग्य था कि गांधीजी ने भारत में अपना प्रथम सत्याग्रह बिहार प्रांत की भूमि पर किया। गांधीजी का यह सत्याग्रह महिलाओं हेतु प्रेरणास्रोत बना। और इस प्रेरणा को और बल मिला जब भारत में गांधीवादी आंदोलन विभिन्न मुद्दों को लेकर आगे बढ़ा। अंग्रेजों का विरोध जैसे–जैसे बढ़ता गया वैसे–वैसे देश की आजादी के लिए महिलाओं का साहस भी बढ़ता गया। फलतरू देश को आजाद होने तक महिलाएं इस मोर्चे पर डटी रही और अंततः 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ जिसमें बिहार के महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही।

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. अमरेन्द्र कुमार, स्वाधीनता संग्राम में बिहार की महिलाएं, हिन्दुस्तान, दिनांक, 15.08.1997 पृ० 17.
2. दत्त, के० के०, बिहार में स्वातंर्त्य आंदोलन का इतिहास, खण्ड–3, पृ० 33.
3. सिंह कुमारी शीला, महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में बिहारी महिलाओं का योगदान, पृ० 198.
4. भारतीय कांग्रेस के चौंतीसवें सम्मेलन, 1919 का प्रतिवेदन।
5. यंग इंडिया, 20 दिसंबर, 1920.
6. सर्चलाइट, 19 अक्टूबर, 1921, पृ० 7.
7. सर्चलाइट 25 जनवरी, 1922.
8. गुप्त मन्मथनाथ, भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास, दिल्ली, 1966, पृ० 435.
9. सर्चलाइट, 10 अगस्त, 1942.
10. मजुमदार आर० सी० : हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, खण्ड –3, पृ० 340–344.
11. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ० 333.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 112-117

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बंगाल में स्थायी बंदोबस्त और जमींदारों का उदय : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

बबलू कुमार, शोध अध्येता,
इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।
डॉ. नागेश्वर कुमार, सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग, बी.एम.डी. महाविद्यालय दयालपुर, वैशाली।

सारांश :

भारत पर अंग्रेजों की जीत से पहले भूमि ग्राम समुदाय की होती थी और उसे राजा की संपत्ति कभी नहीं माना गया – चाहे राजा उदार हो या तानाशाह, अथवा हिंदू हो, मुसलमान या बौद्ध। और न ही उसे व्यक्तिगत कृषक की संपत्ति माना गया। अंग्रेजों के आने से पहले के भारत में भूमि के निजी स्वामित्व का अस्तित्व किसी भी रूप में नहीं था। भूमि ग्राम–समुदाय की होती थी। अंग्रेजों की जीत के साथ ही भूमि में निजी संपत्ति की अवधारणा का प्रचलन शुरू हुआ और गांव की भूमि पर ग्राम समुदाय के पारंपरिक अधिकार का हनन हो गया। एक तरह से, अंग्रेजों की जीत से एक कृषि क्रांति आई। भूमि में निजी स्वामित्व शुरू होने से ग्राम समुदाय मुख्यतया किसानी स्वामित्व और बड़े पैमाने के जमींदारी स्वामित्व में बंट गया। इस भौतिक रूपांतरण के फलस्वरूप भारत के कृषक समाज ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर गहरे बदलाव देखे।

नई भूमि व्यवस्था में, गांव अब कृषि का स्वामी अथवा पर्यवेक्षक नहीं रह गया। भूमि संबंधी विवादों से उसका लेना–देना नहीं रह गया, और वे अंग्रेजों द्वारा स्थापित अदालतों के दायरे में आ गए। इससे पंचायतों की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा और उनके अधिकार छीन गए। भारत पर अंग्रेजों के आक्रमण और उनके शासन के फलस्वरूप कालांतर में इस देश की भूधृति प्रणाली पूरे तौर पर बदल गई। ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने व्यापार कार्य में कठिनाई का अनुभव हुआ क्योंकि भारत में अंग्रेजी सामान का पैमाना नगण्य था। दूसरी ओर, भारतीय माल के भुगतान के लिए इंग्लैंड से सोना–चांदी का निर्यात निषिद्ध था। कंपनी ने इसके समाधान स्वरूप भारतीय सामान का भुगतान करने के लिए भारत से ही धन प्राप्त करने का तरीका खोज निकाला। उसने भारतीय शासकों से कर वसूली की जिसे, प्रारंभ में, लगाए गए करों का मात्र 10: राजस्व ही मिला, किंतु मुगल काल की समाप्ति के समय लगाए गए करों की राशि पर नियंत्रण ढीला हो जाने से उसके राजस्व में बढ़ोतरी हो गई। अंग्रेजी राज के दौरान राजस्व और भूधृति प्रणाली के पीछे लॉर्ड कॉर्नवालिस का दिमाग था। उसने 1793

ई० में बंगाल और बिहार में "स्थायी बंदोबस्त" शुरू किया।

मुख्य शब्द : कृषक, ग्राम समुदाय, सामाजिक, भूधृति प्रणाली, स्थायी बंदोबस्त।

परिचर्चा :

भारत में अंग्रेजी राज के आगमन ने देश की भूधृति प्रणाली को बिल्कुल बदलकर रख दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने व्यापार में कठिनाई का अनुभव हुआ क्योंकि भारत में अंग्रेजी सामान की बिक्री नगण्य थी। भारतीय माल के भुगतान के लिए इंग्लैंड से सोना–चांदी के निर्यातन पर शीघ्र ही पाबंदी लगा दी गई। कंपनी ने इसके समाधान स्वरूप भारतीय सामान के भुगतान के लिए भारत से ही पैसा वसूलने का रास्ता खोज लिया। निर्णायक सफलता 1765 ई० में मिली जब बंगाल, उड़ीसा और बिहार के लिए "दीवान" का पद कंपनी को दे दिया गया, जिसका मतलब था इन क्षेत्रों के लिए वित्तीय स्वतंत्रता।

1793 ई० में, कुछ परीक्षण के बाद कॉर्नवालिस की स्थाई बंदोबस्त व्यवस्था के अधीन कर लगाने की विधि का एक अंतिम विनिमय आया। अंग्रेजी व्यवस्था का मतलब था कि सारी भूमि राज्य की थी और इसलिए उनके अधीन थी। उन्होंने स्थानीय कर संग्राहकों को जमींदारों के तौर पर पंजीकृत किया। उन्हें यह तय करने की स्वतंत्रता थी कि वे कृषकों से कितना मांगते हैं। कर का नियत एकमुश्त भुगतान होने की व्यवस्था से उन्हें और अधिक भूमि पर खेती करवाने का प्रोत्साहन मिलता था। प्रारंभ में, इसमें कोई समस्या नहीं हुई क्योंकि कृषक कम थे, जिससे जमींदार अधिक ऊंचे कर नहीं मांग सकते थे। उनकी रुचि तो लोगों को भूमि पर खेती करने के लिए आकर्षित करने में और करदाताओं की संख्या बढ़ाने में थी, जिससे राजस्व और राज्य को जमा की जाने वाली नियत राशि का अंतर बढ़ता। इस प्रकार, जमींदारों का आजीविका पर नियंत्रण होता था और जमींदारों के हाथों में आने वाली इस शक्ति ने उन्हें भूमि की मांग बढ़ने पर अधिकाधिक कर वसूलने का सामर्थ्य प्रदान किया। इसके फलस्वरूप कर्जदारी की स्थिति बनी और अक्सर उन्हें अपने दखली अधिकारों से हाथ धोना पड़ा और उनका दर्जा घटकर गैर–मौरूसी काश्तकार का हो गया।

जमींदारों को दिए गए भूमि के अधिकार को हस्तांतरित किया जा सकता था, लगान पर दिया जा सकता था और विरासत में प्राप्त किया जा सकता था। इसका अभिप्राय था दृ भारत में एक बिल्कुल नई व्यवस्था की शुरुआत। भूमि एक बिक्री योग्य माल बन गई। जो लोग कृषक थे, उन्हें " वाली काश्तकार" का दर्जा मिल गया। ये दखली अधिकार विरासत में प्राप्त किए जा सकते थे और हस्तांतरणीय भी थे। साथ ही, इनके साथ तब तक छेड़छाड़ नहीं की जा सकती थी जब तक भू–धारक अपने करों का भुगतान करता रहे। इसके विपरीत, कर संग्राहकों के स्वामित्व वाली भूमि को जोतने वाले काश्तकार गैर–मौरूसी काश्तकार थे, अर्थात् उन्हें बेदखल किया जा सकता था। जमा किए जाने वाले करों की नियत राशि और बढ़ते राजस्व के बीच बहुत बड़ा अंतर होने के फलस्वरूप जमींदार धनी हो गए। परिणामस्वरूप, उन्होंने स्वयं कर इकट्ठा करना बंद कर दिया और इस काम को पट्टे पर दे दिया। यह अंतर इतना बड़ा था कि इन समनुदेशितियों (सुपुर्ददारों) ने भी भूमि को पट्टे पर देने की कोशिश की।

इस व्यवस्था को चलाने के अनुभव और भारतीय स्थितियों का बेहतर ज्ञान होने के कारण और औपनिवेशिक नीति पर उदारवादी प्रभाव के कारण भी, जमींदारी व्यवस्था का विस्तार पूरे भारत में नहीं किया गया। अंग्रेजों के अधीन आने वाले प्रांतों में बाद में अन्य कर व्यवस्थाएं लागू की गई। रैयतवाड़ी व्यवस्था मद्रास,

बंबई और असम में शुरू की गई। इस व्यवस्था में, सरकार सारी भूमि पर मालिकाना हक रखती थी। किंतु इसे कृषकों को इस शर्त पर आबंटित किया जाता था कि वे कर देते रहेंगे। जब तक वे कर देते रहते, तब तक उन्हें इसका उपयोग करने, इसे बेचने, गिरवी रखने, विरासत में देने और पट्टे पर चढ़ाने की अनुमति होती और कर नहीं देने की स्थिति में उन्हें बेदखल कर दिया जाता था। हुकूमत और कृषकों के बीच इस प्रत्यक्ष कर संबंध का अभिप्राय उपकर संग्राहकों को रोकना था, जिससे क्रय शक्ति बढ़ती थी और इस तरह, अंग्रेजी उत्पादों के विपणन की संभावनाएं बेहतर होती थीं। किंतु करों को केवल एक अस्थाई बंदोबस्त में तीस वर्षों के लिए नियत किया जाता था और फिर उसमें संशोधन कर दिया जाता था, जिससे सरकार को अपना राजस्व बढ़ाने में मदद मिलती थी।

उत्तर भारत और पंजाब में जहां गांव पर संयुक्त भूमि अधिकार आम थे, वहां इस पारंपरिक ढांचे का सदुपयोग "महालवारी व्यवस्था" नामक एक नए रूप में करने की कोशिश की गई। इस व्यवस्था में कर ग्राम समुदाय पर लगाया जाता था क्योंकि भूमि पर उसी का अधिकार था। ग्राम समुदाय को इन करों को उन कृषकों में बांटना होता था जिन पर व्यक्तिगत और संयुक्त रूप में कर बकाया थे। इस प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के बकाए के प्रति उत्तरदायी होता था। गांव का एक निवासी जिसे "लंबरदार" कहते थे, यह राशि वसूल करता था और उसे थोक में जमा कराता था। यहां भी, समय–समय पर कर आकलन की समीक्षा का प्रावधान था।

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की आय का मुख्य स्रोत भू–राजस्व था, जिसके तहत कम्पनी किसानों के उपज का एक बड़ा भाग प्राप्त करती थी। मुख्य रूप से अंग्रेजों ने भारत में तीन प्रकार की भू–राजस्व प्रणालियां अपनायी। ये हैं :–

1. जमींदारी या स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था।
2. रैयतवाड़ी व्यवस्था।
3. महालवाड़ी व्यवस्था।

- **जमींदारी या स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था :** 1765 ई० में इलाहाबाद संधि द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी ने बिहार, बंगाल एवं उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर ली। 1772 ई० तक कम्पनी ने भारत में प्रचलित पुरानी व्यवस्था को ही कायम रखा। बाद में 'वारेन हेस्टिंग्स' ने लगान व्यवस्था में सुधार के लिए 'इजारेदारी' (पंचवर्षीय ठेका व बाद में एक वर्षीय ठेका) प्रथा लागू की। जिससे समस्या सुलझने के बजाय और अधिक उलझ गयी। अंततः लॉर्ड कार्नवालिस ने 1790 ई० में जमींदारों के साथ दस वर्षीय समझौता किया, जिसे 22 मार्च, 1793 ई० को स्थायी कर दिया गया। यह व्यवस्था जमींदारी व्यवस्था एवं स्थायी बंदोबस्त के नाम से जानी जाती है।

इस व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं थीं :

1. जमींदारों को भूमि की स्थायी मालिक बना दिया गया। अब भूमि पर उनका पैतृक व हस्तांतरणीय अधिकार था। जब तक वे सरकार द्वारा निर्धारित लगान अदा करते रहते थे। तब तक उन्हें भूमि में बेदखल नहीं किया जा सकता था।
2. किसानों को रैयत से भी नीचे का दर्जा दिया गया और भूमि संबंधी उनके सभी परम्परागत अधिकार उनसे छीन लिये गये।
3. जमींदार भूमि के स्थायी मालिक होने के कारण भूमि को खरीद या बेच सकते थे।

4. जमींदारों से लगान सदैव के लिए निश्चित कर दिया गया।
5. सरकार का किसानों के साथ कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं था।
6. जमींदारों को किसानों से वसूल किये गये भू–राजस्व का 10 / 11 भाग कम्पनी को देना था 1 / 11 भाग स्वयं रखना था।
7. तय की गयी रकम से अधिक वसूली करने पर उसे रखने का अधिकार जमींदारों को दिया गया।
8. यदि कोई जमींदार निश्चित तारीख तक भू–राजस्व की निर्धारित राशि जमा नहीं करता था तो उसकी जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी।

इस व्यवस्था से सबसे अधिक लाभ जमींदारों को ही हुआ और वे भूमि के स्थायी मालिक बन गये। उनकी आय में वृद्धि हुई और वे सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे। सरकारी आय में भी वृद्धि हुई। साथ ही साथ उसकी आय भी निश्चित हो गयी। इससे बजट बनाने में उसे सहूलियत हुई। इसका सबसे प्रतिकूल प्रभाव किसानों पर पड़ा। उनसे भूमि संबंधी परम्परागत अधिकार छीन लिये गये। अब वे केवल खेतिहर मजदूर बन कर रह गये। उनका उत्पीड़न एवं शोषण बढ़ गया। वे पूर्णतया जमींदारों की दया पर निर्भर हो गये। वे जमींदार जो राजस्व वसूली में उदार थे, भू–राजस्व की ऊंची दर को समय पर नहीं अदा कर सके। उन्हें बेरहमी के साथ बेदखल कर दिया गया और उनकी जमींदारी नीलाम कर दी गयी। जमींदारों के समृद्ध होने से वे विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। जिससे सामाजिक भ्रष्टाचार में वृद्धि हुई। इस व्यवस्था ने कालांतर में राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष को भी हानि पहुंचायी। जमींदारों का यह वर्ग स्वतंत्रता संघर्ष में अंग्रेज भक्त बना रहा और कई अवसरों पर राष्ट्रवादियों के विरुद्ध इसने सरकार की मदद भी की। इस व्यवस्था से किसान दिनों दिन निर्धन होते गये तथा उनमें सरकार तथा जमींदारों के विरुद्ध असंतोष बढ़ने लगा। जो कृषक आंदोलन के रूप में परिणत हुआ। इस व्यवस्था से सरकार को हानि हुई, क्योंकि अधिकांश लाभ केवल जमींदारों को ही प्राप्त होते रहे।

इस प्रकार स्थायी बंदोबस्त से सर्वाधिक लाभ जमींदारों को हुआ यद्यपि यह व्यवस्था सरकार के लिए कुछ समय के लिए लाभदायक रही, परन्तु इससे कोई दीर्घकालीन लाभ नहीं प्राप्त हुआ। किसानों में तो इसने असंतोष को ही जन्म दिया। यही कारण रहा कि सरकार ने इसे कुछ भागों में लागू किया और स्वतंत्रता के पश्चात तो इस व्यवस्था का पूर्णतः उन्मूलन ही कर दिया गया।

अंग्रेजी राज में जो प्रमुख बदलाव किए गए, वे थे : नई भू–राजस्व व्यवस्थाएं, राजस्व की ऊंची दरें, नई प्रशासनिक तथा न्यायिक व्यवस्था। इनसे न केवल गांवों के प्रबंधन को नुकसान हुआ, बल्कि भारत की सामाजिक–आर्थिक और विधिक व्यवस्थाओं में भी बड़े बदलाव हुए। भूमि प्रबंधन और न्यायिक क्षेत्र में ग्राम पंचायत की भूमिका समाप्त हो गई। इसके परिणामस्वरूप, भारत के गांवों में विद्यमान पुरानी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएं नष्ट हो गई। लघु ग्राम उधोगों और दस्तकारी के नष्ट हो जाने के कारण भूमि का अत्यधिक महत्व हो गया। भूमि का स्वामित्व और किसान दोनों ही गतिशील हो गए, जिससे गांवों में दूरवासी जमींदारों और महाजनों का जन्म हुआ। जमींदारी और रैयतवाड़ी दोनों ही व्यवस्थाओं में भू–राजस्व की दरें बहुत ऊंची थीं और जब जमींदार अथवा रैयतवाड़ समय से राजस्व देने की स्थिति में नहीं होते थे, तो अंग्रेज उनकी जमीन छीन लेते थे और व्यापारियों को बेच देते थे। ये व्यापारी किसान नहीं होते थे और वे खेती के बारे में चिंतित न होकर उससे अधिक से अधिक राजस्व वसूलने के बारे में चिंतित रहते थे। महाजन और जमींदार ग्राम्य

जीवन का अभिन्न अंग बन गए थे क्योंकि गांव वालों को अपने अस्तित्व के लिए हमेशा ही उनकी जरूरत होती थी। ऐसी स्थिति में अधिकांश किसानों ने खेती छोड़ दी और भूमि ऊसर/अनुत्पादक हो गई। अतः बंटाईदारों और भूमिहीन किसानों की संख्या बहुत बढ़ गई।

अंग्रेजों की जमींदारी, रैयतवाड़ी और महालवारी वाली भूधृति प्रणालीयों ने भारतीय गांवों की आत्मनिर्भरता को नष्ट कर दिया और ग्रामीण सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में आमूलचूल परिवर्तन ला दिए जो अक्सर पुरानी प्रथाओं के लिए हानिकारक साबित हुए। स्थायी बंदोबस्त से अंग्रेजों को अंग्रेजी साम्राज्यवाद को अधिक सशक्त और परिपक्व बनाने में मदद मिली। इसके लिए उन्होंने अपने विरोधों को दबाने को माध्यम बनाया। इससे अंग्रेजी तंत्र को और भी स्थायित्व मिल गया, क्योंकि गरीब गांव वाले और भी गरीब बना दिए गए। इन नई व्यवस्थाओं ने युगों पुरानी भारतीय कृषि व्यवस्था को तोड़कर शोषण के रास्ते खोल दिए थे।

भू–राजस्व की निर्भरता समता की पुरानी परंपरा पर न होकर भूमि की भूशास्त्रीय स्थिति पर हो गई। भू–राजस्व किसानों की कुल भूमि पर तय न होकर भूमि के अंश पर तय किया जाता था। भू–राजस्व किसी विधिवत तरीके से तय न होकर मात्र अनुमान पर आधारित होता था। अमेरिकी गृह युद्ध के बाद भू–राजस्व 66 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया। किसानों को अदालत में गुहार का कोई अधिकार नहीं था।

अंग्रेजी राज के दौरान भू–राजस्व का भुगतान भूमि पर उगाई गई फसलों के आधार पर तय किया जाता था, जो हर वर्ष भिन्न होता था। भू–राजस्व के भुगतान का तरीका तक बदलकर नकद कर दिया गया था जबकि पहले हमेशा ही नकद भुगतान नहीं होता था। राजस्व की रकम बदलती नहीं थी चाहे फसल खराब ही क्यों न हो गई हो। जमींदार को अपने क्षेत्र से समय पर राजस्व की एक नियत राशि देनी होती थी। किंतु किसानों से वसूली जाने वाली राशि जमींदार की मर्जी से तय होती थी। अपने कर चुकता करने के बाद किसानों के पास नाम मात्र का पैसा बचता था।

जमींदार वर्ग के बन जाने से औपनिवेशिक शासन को सामाजिक संबल मिल गया और उनके लिए ग्रामीण समुदाय के ऊपर नियंत्रण करना और भी आसान हो गया। जमींदार के लिए विशेषाधिकार औपनिवेशिक शासन का एक आवश्यक अंग था और अंग्रेजी हुकूमत सुधारात्मक योजनाओं में उन्हें विशेष प्रतिनिधित्व देती थी और इस रूढ़िवादी वर्ग को भारतीयों के खिलाफ इस्तेमाल करने से भी नहीं हिचकिचाती थी। जमींदार वर्ग सरकार द्वारा किए जाने वाले आर्थिक शोषण का माध्यम बन गया था। संसाधनों के अभाव में, किसान भूमि में कोई सुधार भी नहीं कर पाते थे।

इस व्यवस्था में भूमि की खरीद–फरोख्त के कारण महाजन बनिया वर्ग उभर आया। ये महाजन भूस्वामी थे और बिना किसी जबावदेही के भूमि पर इनका नियंत्रण था।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः इस व्यवस्था में, भूमि जोतने वालों का शोषण बहुत ऊंचे लगान लगाकर किया जाता था। कहते हैं कि अंग्रेजों द्वारा जमींदारी व्यवस्था लागू करने के पीछे दो उद्देश्य थे। पहला, इससे कुछ ही व्यक्तियों अर्थात् जमींदारों से नियमित रूप में राजस्व उगाही में मदद मिलती थी। दूसरा, इससे लोगों का एक ऐसा वर्ग बन गया जो अंग्रेजों के प्रति वफादार बना रहा। जमींदारी व्यवस्था किसानों से कर वसूली का एक तरीका था। जमींदार

को आका (लॉर्ड) समझा जाता था, जो अपनी भूमि के सारे करों की वसूली कर उन्हें अंग्रेज अधिकारियों को सौंप देता था। इस व्यवस्था में जमींदार के लिए करों का एक हिस्सा स्वयं रख लेने का प्रावधान था।

संदर्भ ग्रंथ :

1. देसाई, ए.आर. (1948), सोशल बैक ग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, पॉपुलर पब्लिकेशन, बंबई।
2. फ्राइकनबर्ग, आर.ई.,सं. (1977), लैंड टेन्यर एंड पीजेंट इन साउथ एशिया, मनोहर, नई दिल्ली।
3. फ्राइकनबर्ग, आर.ई. (1979), लैंड कंट्रोल एंड सोशल स्ट्रक्चर इन इंडियन हिस्ट्री, मनोहर, नई दिल्ली।
4. ग्रोवर, बी.एल. (1985), इंडियन हिस्ट्री, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. रोमेश, दत्त (1990), दि इकॉन्मिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खंड 1 और खंड 2, लो प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली।
6. रॉय, सत्य (1990), भारत में उपनिवेशवाद, मनोहर पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
7. शर्मा, आर.एस. (1971), लैंड रिवेन्यू इन इंडिया : हिस्टोरिकल स्टडीज, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
8. सिंह, आर.पी. (1987), सोशियोलॉजी ऑफ डेवलपमेंट इन इंडिया, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 118-123

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार के महिलाओं की भूमिका और बौद्धिक चेतना का विकास

नेहा राय, शोधार्थिनी,
इतिहास विभाग, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।
डॉ. संतोष कुमार अनल, सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग, लंगट सिंह महाविद्यालय मुजफ्फरपुर।

सारांश :

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में बिहार प्रारंभ से ही जन आंदोलन का केन्द्रबिंदु बना रहा हैं। ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध संघर्ष को हम तीन चरणों में विभाजित करते हैं। प्रथम चरण में शासक वर्ग द्वारा विरोध, दूसरे चरण में ब्रिटिश विरोधी जनआंदोलन और तीसरे चरण में राष्ट्रीय आंदोलन का विकास। इन तीनों चरणों के आंदोलन में बिहार की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। 1763–64 ई० में मीर कासिम और अंग्रेजों के बीच संघर्ष से ही विरोध की शुरुआत हुई। अंग्रेजों को पहली सशक्त और व्यापक चुनौती देने वाले प्रथम आंदोलन वहाबी आंदोलन का महत्वपूर्ण केन्द्र बिहार था। 1857–58 ई० के विप्लव में बिहार पुनः अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष का एक बड़ा केंद्र बना। 1917 ई० में महात्मा गांधी ने बिहार के चम्पारण जिला (अब बेतिया जिला) से पहली बार सत्याग्रह का अंग्रेजों के विरुद्ध सफल प्रयोग किया। चम्पारण महात्मा गांधी की प्रथम कर्म–भूमि रही है। चन्द्रावती देवी ने महात्मा गांधी के द्वारा चलाये गए सविनय अवज्ञा आंदोलन में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हुए संगठन के लिए स्वयं–निर्मित नमक बेचकर काफी रुपया इकट्ठा किया और बिहार में संगठन को मजबूत बनाया। 1929 में कांग्रेस के कार्यक्रमों में पटना में श्रीमती माधुरी देवी तथा श्रीमती पी० पी० वर्मा ने खुलकर भाग लिया। खासकर महिलाओं में 1885 ई० के राष्ट्रीय कांग्रेस के स्थापना के बाद काफी जागृति आयी और उन्होंने भी धीरे–धीरे राजनीतिक रंगमंच पर आना शुरू कर दिया।

मुख्य शब्द : राष्ट्रीय आंदोलन, सत्याग्रह, वहाबी आंदोलन, कर्म–भूमि, राष्ट्रीय कांग्रेस।

परिचर्चा :

अनन्त काल से नारी केवल शोभा और प्रदर्शन की वस्तु के रूप में चर्चित रही है। जब भी उसने इन बेड़ियों को तोड़ना चाहा तो उसे उपहास का पात्र बनने के साथ हृदय विदारक कटु उक्तियां सुननी पड़ीं। भारतीय इतिहास में नारी की स्थिति विरोधाभासपूर्ण रही है। भारतीय संस्कृत में नारी को अत्यंत प्रतिष्ठित स्थान दिया गया है। महाकाव्यों एवं भारतीय इतिहास की विभिन्न पुस्तकों में नारी शक्ति एवं उसकी उपलब्धियों के

विविध विवरण उपलब्ध हैं। इतिहास साक्षी है कि विश्व का कोई समाज तब तक समृद्ध एवं पूर्ण नही हो सका जब तक उस समाज की स्त्रियों की उपेक्षा की जाती रही है। सामाजिक रूप से आत्म–विश्वासी, राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त नारी समतावादी एवं लोकतांत्रिक समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ऋग्वैदिक काल को छोड़कर भारतीय इतिहास के प्रत्येक काल में स्त्रियों का जीवन उपेक्षित एवं दुरूखों से भरा रहा है। सामाजिक रूप से उपेक्षित दर्द से कराहती हुई इस आधी आबादी को जब भी किसी महत्वपूर्ण कार्य को करने का अवसर मिला तो इसी अबला नारी ने बहुत ही साहसिक एवं सशक्त ढंग से उस कार्य को कुशलतापूर्वक निपटा कर समाज, राजनीति एवं इतिहास में अपनी एक अलग ही तस्वीर प्रस्तुत की है।

भारत में राष्ट्रवाद के उदय में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारणों ने लोगों को अपनी राष्ट्रीय पहचान को परिभाषित और हासिल करने के लिए प्रेरित किया। लोगों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष की प्रक्रिया में अपने भीतर एकता की खोज प्रारंभ की। ब्रिटिश सरकार के नियमों के अन्तर्गत दमन करने की भावना ने लोगों के अन्दर साझा बन्धन स्थापित करने की भी प्रेरणा प्रदान किया। जिसके द्वारा विभिन्न समूहों को एक सूत्र में बांधा गया। प्रत्येक वर्ग एवं समूह ने उपनिवेशवाद के प्रभावों एवं स्वतंत्रता आंदोलन में कूदने के अलग–अलग तरीकों के अवसर को महसूस किया। इन अवसरों को महसूस करने और स्वाधीनता आंदोलन में अपनी भूमिका निभाने में महिलाएं भी पीछे नहीं रही हैं। स्वतंत्रता संग्राम में सामान्यतः पुरुषों के योगदान को ही रेखांकित किया जाता है परन्तु महिलाओं के योगदान को ज्यादातर हाशिए पर ही रखा जाता रहा है। ऐतिहासिक सन्दर्भ यह बताते हैं कि स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार की महिलाओं ने अपनी भूमिका को बखूबी समझा और सक्रिय रूप से निर्वहन भी किया है। स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार की महिलाओं की उपेक्षा करना न्यायोचित नहीं होगा।

सन् 1917 ई. में बिहार में महात्मा गांधी के पदार्पण के साथ ही आंदोलन में महिलाओं का झुकाव बढ़ गया। 10919 ई. तक कस्तूरबा गांधी, श्रीमती सरला देवी, श्रीमती प्रभावती देवी, श्रीमती राजवंशी देवी, सुनीति देवी, राधिका देवी और भी वीरांगनाओं महिलाओं की प्रेरणा से सम्पूर्ण बिहार की महिलाओं में आजादी के प्रति रुझान बढ़ गया, गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन से लेकर भारत की स्वाधीनता तक महिलाओं का राष्ट्रीय आंदोलन में जो योगदान था, वह भारतीय परिवेश में उनकी जागरूकता एवं परिवर्तनों को दर्शाता है। महिलाओं में सदियों से चली आ रही रूढ़िवादिता, अंधविश्वास तथा सामाजिक पिछड़ेपन की स्थिति को गांधीजी के दर्शन ने बदल दिया था। उनकी भीरूता का स्थान साहस ने ले लिया, उनके अंधविश्वास तथा रूढ़िवादिता के स्थान पर जागरूकता दिखाई देने लगी एवं उनमें राजनीति परिपकव्ता का बोध होने लगा। कुल मिलाकर भारतीय महिलाओं के उत्थान का यह स्वर्णिम काल था।

गांधीजी का पूर्ण विश्वास था कि देश का भविष्य औरतों के त्याग पर निर्भर है, इसलिए वे अपने अहिंसक युद्ध में महिलाओं की भूमिका को अधिक महत्व देते थे। वे चाहते थे कि औरतों को इतना स्वतंत्र होना चाहिए जिससे वे अपनी मानसिक शक्ति को प्राप्त कर सकें। गांधीजी ने पर्दा–प्रथा का विरोध करते हुए कहा – "पवित्रता स्त्रियों की बाहरी मर्यादाओं में जकड़कर रखने से उत्पन्न होने वाली चीज नहीं है। उसकी रक्षा उन्हें परदे की दीवार से घेरकर नहीं की जा सकती। उसकी उत्पत्ति और विकास भीतर से होना चाहिए और उसकी कसौटी यह है कि वह पवित्रता किसी प्रलोभन से डिगे नहीं। इस कसौटी पर वह खरी सिद्ध हो तभी उसका कोई मूल्य

माना जा सकता है"। वे जानते थे कि इस प्रथा के रहते वे किसी समस्या को सुलझा नहीं सकते हैं और न ही अपने किसी भी उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए उन्होंने औरतों के बीच चेतना जगाने का भरपूर प्रयास किया। इस क्रम में 3 दिसम्बर, 1920 को पहली बार सिकंदर मंजिल, बांकीपुर की एक सभा में उन्होंने महिलाओं को इस दिशा में आगे आने को कहा तथा देश कल्याणार्थ दान देने का आग्रह किया। इस सभा में 500 से भी अधिक महिलाओं ने भाग लिया था। वे सभी महिला में पर्दा प्रथा तोड़कर आयी थीं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में इसके प्रारंभ काल से ही महिलाओं का थोड़ा–बहुत योगदान रहा है, किन्तु ये अनुपात में कम थीं। 1889 ई० में बिहार के स्वराज्य कुमारी देवी तथा कादम्बिनी गांगुली के साथ 10 महिलाओं ने बम्बई कांग्रेस में भाग लिया था। 1890 ई० में कादम्बिनी गांगुली प्रथम महिला थी जिसने कांग्रेस के मंच से भाषण किया था। उन दिनों प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की पत्नियां कांग्रेस में अपने पति के साथ जाती तो थी, लेकिन उनका कोई सक्रिय योगदान राजनीति में नहीं होता था और न ही उनके कोई विचार ही लिए जाते थे। 1919 ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस के 34 वें सम्मेलन में बिहार के प्रतिनिधिमंडल में श्रीमती सैयद हसन इमाम तथा बेगम रहमान गयी थीं। उन दिनों बिहार में कांग्रेस संगठन के कार्यों में श्रीमती इमाम जैसी एक–दो हीं महिलाएं थीं। किन्तु बिहारी महिलाएं भी गांधी जी के व्यक्तित्व की ओर आकर्षित हो रही थीं और उनके आह्वान पर अपनी भागीदारी निभानी शुरू कर दी थी।

1921 ई० में सरला देवी चौधरी ने कांग्रेस संगठन के लिए अथक प्रयास किया। 1921 ई० के नवम्बर माह में जब ब्रिटिश राजकुमार भारत आने वाले थे तो कांग्रेस ने हड़तालों से उनके स्वागत करने का निश्चय किया। फलतः 17 नवम्बर को जब राजकुमार बम्बई उतरे, तब समस्त बम्बई में हड़ताल हो गई। सरला देवी ने घूम–घूमकर राजकुमार के स्वागत में किये गये समारोहों के बहिष्कार करने की बातें की। 6 अक्टूबर को हजारीबाग में बिहार विधार्थी परिषद का 16 वां अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता सरला देवी ने की। इस सभा में भी राजकुमार के स्वागत में किये गये समारोहों के बहिष्कार करने का निर्णय लिया गया।

भागलपुर की लीला सिंह भी कांग्रेस के संगठन के कार्य में सक्रिय रहीं। मुजफ्फरपुर में उन्होंने कांग्रेस के कार्यक्रमों में महिलाओं को आगे आने का आह्वान किया। वे कौमी सेवा दल की भी अध्यक्षा थीं। तत्पश्चात बिहार प्रान्तीय कांग्रेस का कोषाध्यक्ष भी बनीं। 1921 ई० के अखिल भारतीय कांग्रेस के छत्तीसवें अहमदाबाद सम्मेलन में बिहार के प्रतिनिधिमंडल में पांच महिलाओं ने भाग लिया था, वे थीं श्रीमती लाला दौलत राम, जानकी देवी, गुलाबन देवी, हरमति देवी, महादेवी तथा लीला सिंह।

मुजफ्फरपुर में श्रीमती शफी तथा शारदा कुमारी देवी तथा कुछ हिन्दू एवं मुस्लिम परिवार की समस्त महिलाओं ने भी आजादी की लड़ाई के कार्यक्रमों में भाग लिया। श्रीमती शफी ने तो इस क्रम में सघन दौरा किया था। उन्होंने विलासपुर और हायाघाट के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में जान ला दी थी। छपरा की श्रीमती कृष्णा कुमारी देवी ने भी घूम–घूमकर कई स्थानों पर कांग्रेस संगठन का कार्य किया। इसी क्रम में उन्होंने बाढ़ और बेगूसराय आदि स्थानों पर भ्रमण किया था। सिवान की श्रीमती सरयुग प्रसाद प्रभावित होकर स्वयंसेविका बनी थीं।

असहयोग आंदोलन के दौरान बिहार में शहरी एवं ग्रामीण, सभी क्षेत्रों की महिलाएं सक्रिय थीं। 1922 ई० के आसपास हाजीपुर अनुमंडल का ग्रामीण इलाका पूरे देश में सबसे आगे रहा। इस इलाके में घटारो गांव की स्त्रियां आन्दोलन में काफी सक्रिय रहीं। इस अनुमण्डल में श्री किशोरी प्रसन्न सिंह की पत्नी सुनीति देवी, श्री

कुशवेश्वर सिंह की पत्नी विन्दा देवी, श्री कपिलदेव सिंह की मां और श्रीमती रामसखी देवी घटारो की थी। इन्होंने आन्दोलन में खुलकर भाग लिया। जनवरी 1929 ई० में पटना में अखिल भारतीय सम्मेलन का एक अधिवेशन हुआ। इसमें बिहार की महिलाओं को देश के अन्य भागों की महिलाओं से मिलने का अवसर मिला। देश की स्वतंत्रता एवं महिला समाज में जो कुरीतियां फैली हुई थी उन्हें दूर करने के तरीकों पर विचार–विमर्श किया गया। इसका एक अधिवेशन 7 दिसम्बर 1929 ई० को हुआ। उसमें शारदा एक्ट के समर्थन तथा पर्दा एवं दहेज प्रथा के विरोध में प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव में नारी शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया। श्रीमती चन्द्रावती देवी ने 1929 ई० में बेतिया में कांग्रेस संगठन को मजबूत करने में अहम भूमिका निभाई थी और वहां स्थानीय कांग्रेस कमिटी की उपसभापति चुनी गई थी।

1930 ई० के नमक सत्याग्रह आंदोलन के समय एक क्रांतिकारी महिला राम स्वरूप देवी को कभी नहीं भुलाया जा सकता है। छपरा जिला में बहुरिया रामस्वरूप देवी एक प्रभावशाली महिला थी। बहुरिया जी के पति बाबू हरमाधव प्रसाद को गिरफ्तार कर भागलपुर सेन्ट्रल जेल भेज दिया गया था। तब बहुरिया जी में क्रांतिकारी भावना जगी। वे गांव–गांव घुमने लगीं और लोगों को आजादी के जंग में हाथ बढ़ाने हेतु कहने लगीं : जागो मेरी बहनों, उठो। जब देश पर संकट आ पड़ा हो तो हमें घर के भीतर रहना शोभा नहीं देता। बहुरिया जी के इस आचरण से अंग्रेजी हुकूमत ने उन्हें भी 1 जनवरी 1931 ई० को जेल की सलाखों में डाल दिया। स्थानीय जनता सरकार के इस निर्णय के विरोध में आंदोलन करने लगी और लोग बहुरिया देवी को ले जाने वाली गाड़ी के नीचे लेट गये। अन्ततः बहुरिया रामस्वरूप देवी ने लोगों को खुद समझाया, तब जाकर लोग उनके रास्ते से हटे और उन्हें भागलपुर सेन्ट्रल जेल में डाल दिया गया। गांधी–इरविन समझौते के बाद उन्हें जेल से मुक्ति दी गयी।

1930 ई० से 1932 ई० तक मुजफ्फरपुर जिले में राम तनुक देवी, राम दयालु सिंह की पत्नी तथा ठाकुर रामनन्दन सिंह की पत्नी श्रीमती राम सूरत देवी गांव–गांव घूमकर महिला जागरण कांग्रेसी संगठन का कार्य करती रही। राम तनुक देवी बिहार प्रदेश कांग्रेस समिति की महिला शाखा की प्रादेशिक संयोजिका के रूप में नियुक्त की गयी थी। उन्होंने पूरे प्रदेश का दौरा कर स्वयंसेविकाओं को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मार्च 1931 ई० में अन्य महिलाओं के साथ उन्होंने सीतामढ़ी के विभिन्न थानों का दौरा किया। फलस्वरूप, कई कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की पत्नियां पर्दे से बाहर आ गई तथा कांग्रेस के प्रचार कार्य में लग गई। अप्रैल 1930 ई० में रामदयालु सिंह के साथ ये दरभंगा के विभिन्न अनुमंडलों का दौरा कर कांग्रेसी कार्यकत्रियों की संख्या बढ़ाती रही। इसी क्रम में श्रीमती राम तनुक देवी ने मुजफ्फरपुर के बेलसंड थाने का गहन दौरा किया। उन्होंने मझौलिया, चन्दोली तथा बरोड़ा में महिलाओं की बैठकों को संबोधित किया तथा महिला कार्यकत्रियों का नाम दर्ज किया।

अप्रैल, 1930 ई० में "महिला वैधानिक संघ" की एक बैठक श्रीमती मूले की अध्यक्षता में गया में हुई। श्रीमती कमलकामिनी प्रसाद ने स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर जोर दिया। दानापुर के रामकृष्ण डालमिया की सुपुत्री सुश्री रमाबाई ने आर्य समाज के मैदान में एक जनसभा को संबोधित किया तथा महिलाओं से उत्साहपूर्वक घेराव तथा वहिष्कार के कार्यक्रमों को चलाने की अपील की।

26 जनवरी 1933 ई० को पूरे बिहार में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। उस समय कई जगहों पर पुलिस

की ओर से गोलियां चलाई गईं। मोतिहारी में जिला कांग्रेस कमिटी भवन के सामने हो रही एक सभा पर पुलिस ने गोलियां चलाई। कई लोग मरे तथा अनेकों घायल हुए। फिर भी, लोगों का उत्साह वैसा ही बना रहा। मुंगेर के तारापुर और बेगूसराय में भी बहुत से लोग गोली के शिकार हुए। परन्तु लोगों ने बहादुरी के साथ दमन का सामना किया। एक विधार्थी ने तो गोली खाकर यहां तक कहा, "मैं स्वराज्य के लिए मर रहा हूं। लोकमान्य तिलक के निकट पहुंचकर सन्देश कहूंगा"।

26 जनवरी, 1933 ई० को स्वतंत्रता दिवस समारोह के अवसर पर अनुग्रह नारायण सिंह, राजवंशी देवी, चन्द्रावती देवी तथा अन्य कांग्रेस कार्यकर्ता गिरफ्तार किए गए। श्रीमती चन्द्रावती देवी को 14 माह के कठीन कारावास की सजा हुई। 1933 ई० में पटना में मुख्य रूप से अधिक महिलाएं कांग्रेस के कार्यों में लगीं। 1933 ई० में जो पटना में गिरफ्तारियां हुई उनमें आधी संख्या स्त्रियों की थीं। पटना में श्रीमती चन्द्रावती देवी, श्रीमती भगवती देवी, श्रीमती राजवंशी देवी तथा भागलपुर में खुबलाल महतो की पत्नी श्रीमती लक्ष्मी देवी, बख्तियारपुर थानांतर्गत सलीमपुर के कालू सिंह की सुपुत्री रेशमी कुमारी, भागलपुर के ही दिनेश्वर तिवारी की पत्नी श्रीमती चन्द्रकला देवी, सीतामढ़ी की श्रीमती रामतनुक देवी, गया की श्रीमती एम० एम० चौधरी आदि महिलाएं कांग्रेस के कार्यक्रमों को सफल बनाने का कार्य करती थी। वे इसके लिए जेल भी गईं।

अगस्त क्रांति के दौरान 9 अगस्त 1942 ई० को राजेन्द्र प्रसाद गिरफ्तार कर लिए गये। उनकी गिरफ्तारी से बिहार में आन्दोलन का रूप काफी उग्र हो गया तथा सारे सूबे में भारत छोड़ो, राजेन्द्र प्रसाद हमारे नेता हैं, 'कांग्रेस जिंदाबाद' के गगनभेदी नारे सुनाई देने लगे। पटना में व्यापक रूप से प्रदर्शन, धरना एवं जुलूस के आयोजन किये गये। राजेन्द्र प्रसाद की गिरफ्तारी की खबर जब बी०एन० कॉलेज पहुंची तब विधार्थियों ने एक विशाल जुलूस निकालकर राजभवन तथा बांकीपुर जेल के सामने प्रदर्शन किया तथा पटना विश्वविद्यालय के अहाते में सभा कर विधार्थियों से अगस्त आंदोलन में शामिल होने की अपील की।

अगस्त क्रांति की नेता शहीद फूलेना प्रसाद की पत्नी तारा रानी श्रीवास्तव को कौन नहीं जानता। 16 अगस्त को गोरी पलटन सिवान जिले से दक्षिण–पूर्व लगभग 10 मील की दूरी पर बसे महाराजगंज पहुंची। फूलेना बाबू को स्वयंसेवकों ने इसकी खबर दी। वे उसी समय चल पड़े। भीड़ बढ़ती गई। उनके पीछे–पीछे उनकी धर्मपत्नी श्रीमती तारा रानी श्रीवास्तव थी। भीड़ स्टेशन पर पहुंची, तोड़–फोड़ हुआ और आग भी लगा दी गई। रेल कर्मचारी भाग खड़े हुए। डाकघर के तार काट दिए गये। डाकघर पर तिरंगा झंडा फहरा दिया गया। उसके बाद भी भीड़ रजिस्ट्री ऑफिस पहुंची। कोठरियों में ताले जड़ दिये गये। वहां से भीड़ थाना पहुंची। थाना से ब्रिटिश हुकूमत के झंडे यूनियन जैक को उतार दिया गया। उसकी जगह तिरंगा फहराने के लिए फूलेना प्रसाद ज्योंही आगे बढ़े कि गोलियां चलनी शुरू हो गई। धराधर आठ गोली खाते ही फूलेना प्रसाद वहीं ढेर हो गये।

इस संबंध में स्वतंत्रता सेनानी मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है : चश्मदीद गवाहों का कथन है कि आठ गोली तक फूलेना प्रसाद नहीं गिरे, नवीं गोली में उनके सिर के टुकड़े–टुकड़े हो गये। जिस समय फूलेना प्रसाद जी को गोली लगी और वह गिर पड़े उस समय उनकी पत्नी उन्हीं के साथ थी। पति के गिरने पर इस वीरांगना ने थोड़ी देर तक रुक कर अपनी साड़ी का एक टुकड़ा फाड़कर पति का सिर बांध दिया, फिर वह उसी अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए आगे बढ़ी जिसके कारण उसके पति की यह दशा हुई थी। जब झंडा लग

चुका और वह लौटी, तो फूलेना प्रसाद शहीद हो चुके थे। वहीं तारा रानी श्रीवास्तव की मां और दादा भी शहीद हो गये। तारा रानी के शब्दों में : "मैं वहीं खड़ी थी। मैंने देखा मेरे देवता चले गये। कहीं बहुत दूर चले गये, जहां मैं नहीं पहुंच पाती"। फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। सरकार ने घायलावस्था में ही उन्हें जेल भेज दिया। पुलिस ने जगलाल चौधरी के दो वर्ष की बच्ची को जानबूझकर मार डाला तथा राम विनोद सिंह के मकान को डायनामाइट से उड़ा दिया।

हजारीबाग जेल से ही दीवाली की रात जयप्रकाश नारायण फरार हुए थे। वे भूमिगत रहकर आन्दोलन का संचालन कर रहे थे। उनके नेतृत्व में काफी संख्या में महिलाएं भी कार्यरत थीं।इस प्रकार स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार की अनेक महिलाओं ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निष्कर्ष :

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान बिहार की महिलाओं ने घर की चहारदीवारी से निकलकर न केवल सक्रिय रूप से सत्याग्रह, असहयोग और भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया, बल्कि अपनी बौद्धिक चेतना से समाज में समानता, शिक्षा और राजनैतिक स्वतंत्रता की अलख जगाई। सरला देवी, प्रभावती देवी, तारा रानी श्रीवास्तव और सरस्वती देवी जैसी नेत्रियों ने सामाजिक रूढ़ियों (दहेज, बाल विवाह) के विरुद्ध संघर्ष करते हुए स्थानीय स्तर पर नेतृत्व प्रदान किया। संभ्रांत और सामान्य घरों की महिलाओं ने सादगी अपनाकर चरखा चलाकर और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके बौद्धिक रूप से गांधीजी के असहयोग आंदोलन को मजबूत किया। महिलाओं ने न केवल ब्रिटिश शासन का विरोध किया, बल्कि जातिवाद, दहेज प्रथा और बाल विवाह के खिलाफ भी आवाज उठाई। बिहार की महिलाओं ने सिद्ध कर दिया कि वे केवल आंदोलन का हिस्सा नहीं थीं, बल्कि वे अपनी सोच, निर्णयों और सामाजिक–राजनीतिक भागीदारी के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम की रणनीतिक समझ रखती थीं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. अमरेन्द्र कुमार, स्वाधीनता संग्राम में बिहार की महिलाएं, हिन्दुस्तान, दिनांक, 15.08.97 पृ. 17.
2. दत्त, के० के०, बिहार में स्वातंर्त्य आंदोलन का इतिहास, भाग–3, पृ. 33.
3. सिंह कुमारी शीला, महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में बिहारी महिलाओं का योगदान, पृ. 198.
4. वहीं, पृ. 204.
5. श्रीमती शारदा कुमारी देवी का परिचय, विजया श्रीवास्तव।
6. भारतीय कांग्रेस के चौंतीसवें सम्मेलन, 1919 का प्रतिवेदन।
7. यंग इंडिया, 20 दिसंबर, 1920
8. सर्चलाइट, 19 अक्टूबर, 1921, पृ. 7.
9. सर्चलाइट, 28 अक्टूबर, 1921, पृ. 3.
10. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के छत्तीसवें सम्मेलन अहमदाबाद, (1921) का प्रतिवेदन, पृ. 78.
11. गुप्त मन्मथनाथ, भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास, दिल्ली, 1966, पृ. 435.
12. नारायण, दिनेश कुमार, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन के प्रेरक प्रसंग, प्रकाशन विभाग, पृ. 62.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 124-126

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्री विमर्श के संदर्भ में ललितांबिका अंर्तजनम के उपन्यास और जयश्री रॉय के उपन्यास तुलना

चिक्कू टी के
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम।

साहित्य में तत्कालीन समाज व उसकी पूर्व दशा और भविष्य में होनेवाले सम्भावित बदलाव की अभिव्यक्ति समग्र रूप में होती है। इसी कारण साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब माना जाता है। समाज के पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक पक्षों में प्रभावित होकर, चिंतन–मनन करके सहित्यकार उन सामाजिक सरोकारों को अपने सहित्य में उजागर करता है। नारी की समस्याएं देश कालातीत है। विभित्र स्तर की नारियाँ जीवन भर कई प्रकार की समस्याओं को सामना करती रहती है। परिवेश अलग होने पर भी उनकी समस्याओं में समानता दीख पड़ती है। शिक्षित अशिक्षित, कामकाजी–गृहस्थी सभी नारियां विभिन्न संघर्षो से गुजकर आगे बढ़ती है।

नारी की पारिवारिक और सामाजिक जीवन का वर्णन हिन्दी और मल्यालम उपन्यास में भरपुर मात्र में निहित हैं। नारी उच्च वर्ग की हो या निम्न वर्ग की सभी संघर्ष चलती है। अपनी संस्कृतिक एवं सभ्यता पर अटल रहनेवाली हो या आधुनिक प्रगतिशील विद्रोहात्मक की तलाश केलिए लड़नी पड़ती है। शोषण का क्षेत्र व्यापक होने के कारण समस्याएं भी संकीर्ण है।[1] पुरुष सत्तात्मक समाज से छुटकारा पाना आसान नहीं, लेकिन अस्मिता की, क्षमता की, प्रतिभा की पहचान करनेवाली औरतों रुढ़ियों के विरुद्ध अवाज उठाती देखकर समाज जागरूक होने लगे। पर अक्सर उनके की सच्चाई पर आकृष्ट होकर उन्हें प्रेरणा एवं जोश प्रदान करने में समाज थोड़ा टिचकता हैं। आज के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विमर्शों में स्त्री विमर्श का विशिष्ट स्थान है। हाशिए पर गए स्त्री राव पद दलित जनसमूह का मनुष्य धारा को केंद्र में आने का संघर्ष ही इस का निदान है। भारतीय नारीवाद भारत की प्रबंध और विचारकों के चिंतन की उपज है, जिसका प्रमुख ध्येय सामंती व्यवस्था द्वारा स्थापित गुलामी से स्त्री को मुक्त कराना है । प्राचीन काल से ही स्त्री किसी रूप में चिंतन का विषय रही है। समाज और संस्कृति में स्त्री संबंधी अनेक प्रकार की धारणाएं प्रचलित रही है। स्त्री अस्मिता को केंद्र में रखकर संगठित रूप से स्त्री साहित्य की रचना की गईद्य हिंदी और मलयालम साहित्य में स्त्री विमर्श अन्य अस्मिता मूलक विमर्श की भांति ही मुख्य विमर्श रखा है।

आज महिला लेखन में स्त्री वर्ग की शिकायते उसके प्रकट और अप्रकट क्रोध, छपे हुए आक्रोश तथा जीवन के प्रति उसके विशिष्ट दृष्टिकोण को ज्यादा शिददा से अभिव्यक्ति मिल सकती है। स्त्री साहित्य वस्तुतः

स्त्री की अनुभूति का साहित्य है। यह ऐसी अनुभूतियां है जो अभी तक दबी हुई थी, दमित थीं, उत्पीड़ित थी। ललितांबिका अंतर्जनम ने कविता, कहानी, बाल साहित्य आदि साहित्य के विविध क्षेत्र में अपनी प्रतिभा से संपन्न किया लेकिन उन्होंने केवल एक उपन्यास लिखा। उनका एकमात्र उपन्यास अग्निहोत्री मलयालम उपन्यास साहित्य का अमूल्य रत्न सा चमकता रहता है, यह नारी विमर्श का सबसे भ्रष्ट उदाहरण है। जयश्री रॉय का उपन्यास भी स्त्री पीड़ा के साथ स्त्री के समय और सांस्कृतिक परिवेश की पड़ताल करता चलता है। उनकी रचना प्रक्रिया दो स्तरों पर सक्रिय रहती है। स्त्री की पीड़ा की संसार के साथ–साथ उसके संग चलने वाले समाज की छवियां भी अपने पीड़ा के संसार में रचती है।

स्वतंत्रोत्तर युग में हिन्दी–मल्यालम उपन्यासकारों ने नारी के स्वतंत्र अस्तित्व पर जोर दिया है। शीलप्रभा बर्मा के अनुसार "महिला उपन्यास लेखिकाओं ने स्वातंत्र्योत्तर युग में विशेष रूप से पुरुष सहित्यकारों के स्वर में स्वर मिलाया। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर आज की नारी की सामाजिक नेती और मानसिकता को बड़ी से उकेरा है। नारी ने नारी की मनस्थिति को इस विशिष्टता से समझना है, और जिस सुकृत्ताता से उसके अभिव्यक्ति भी है। वह बड़े मौत की बात है।

मलयालम साहित्य क्षेत्र में ललीतांबिका अंतर्जनम की स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने उपन्यास नंबूतिरी समुदाय में भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष और सामाजिक सुधार आंदोलनों ने उन्होंने समुदाय और परिवारों में महिलाओं की भूमिका के बारे में अपनी लेखन में प्रभावित किया। 'अग्निसाक्षी' में नारी जागरण का उज्वल चित्र प्रस्तुत करती दिखाई देती है। देवकी मनमपिल्ली स्त्री शक्तिकरण के प्रमुख वक्त रहे। धार्मिक आचरण में महत्व देने वाली पति से नीति न मिलने पर और आधुनिकता से ओत प्रोत मायक वाले से छिड़कर दोवी विहार करने वाले ससुराल वालों के तंग आकर वह अर्थ शून्य जिंदगी तोड़ने का दृढ़ निश्चय लेती है। फिर अस्वतंत्रता की जंजीरों तोड़कर कर्मरत होती है। पुराने आचार विचारों के बंधन से मुक्त होकर समाज के उधार के लिए गांधीजी के आदर्श की अपनाकर कार्य करती है। निम्न जाति की स्त्री के कोख में जन्म लेने के कारण उच्चवर्गीय पिता को छुने के अधिकार से वंचित ककम के जरिए तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक पृष्ठभूमि की छलक लेखिका प्रस्तुत करती है। लेखिका खुद ब्रामन कुल की होने के कारण वहाँ की रीति रिवाजों और कठोर नियमों का पर्याप्त जान है। अतः वे अपने पात्रों को उन अन्धविश्वासों को तोडकर बाहर निकलने वाले मनुष्य होने के नए मनुष्य–शा जिंदगी बिताने की प्रेरणा देती है। लेखिका नारी जागरण की प्रमुख समर्थक रही। बहुपत्नी प्रथा का भीष्ण परिणाम भी यहाँ हम देख सकते हैं। दाम्पत्य जीवन से वंचित रहने के कारण पागल बनी छोटी माँ निष्क्रिय लगती है। पर छुआ–छूत के शिकार में पिता के लाड–प्यार से वंचित तकम अपना विद्रोह मन ही मन दबाकर विद्वेष माँ से प्रकट करती है। इन सब शोषित एवं पीड़ित नारियों का आदर्श बनाकर देवकी ललकारत है और अपना विद्रोह प्रकट करती है। लालंबिका अंतर्जनम नारी के विविध जीवन तलो को प्रस्तुत कर केरलीय सामाजिक वातावरण में ब्राह्मण कुल की नारी की दशा और दिशा प्रस्तुत का स्पष्ट दृष्टान्त यहाँ प्रस्तुत किया है।

जयश्री रॉय हिन्दी साहित्य की सुपरिचित कथाकार है और अपने समकालीनों में अलग से पहचानी जा सकनेवाली उपस्थिति भी। विषय की विवधता में उनकी सहित्य की एक विशेषता है। अपनी रचनाओं में जयश्री राय निरंतर सक्रिय है। स्त्री–पुरूष सम्बधों के साथ प्रेम की जटिल भुमि को व्याहता उनका लेखन अपनी तरल और.......दयस्पर्श भाषा और स्तिथियों के मार्मिक पड़ताल के साथ–साथ सामाजिक संरचना के भीतर स्त्री अस्मिता

की अदम्यता का संसार है। 'औरत जो नदी, दर्दजा, साथ चलने हुए इकबाल जैसे उपन्यासों के माध्यम से जयश्री रॉय ने अपने सर्जनात्मकता के जिस वैभव का परिचय दिया है, वह सराहनीय है।

जयश्री रॉय के कथा साहित्य मैं भी विधवा स्त्री की पीड़ा और सघर्ष मिलता है। माहे रंग दौ लाल वृदावन की विधवाओं की कहानी है। विधवा आश्रम में चोटी बड़ी हर आयु वर्ग की विधवा महिलाओं के जिन्हें विधवा होने पर घर से बहिष्कृत किया गया है। आश्रम में भी वहां के रसोई, चौकीदार आदि इनकी साथ यवुन दुष्कर्म करता है। उनके लिए ही वस्तुतायें घर में भी इन्हे हर चीज से वांछित रहा जाता है। कहानी में विधवाएं वृद्ध आश्रम में भी सुरक्षित नहीं दिखाए देती, पुरूष की कामुक दृष्टि कम उम्र में विधवा हुई स्त्रियों की ओर अधिक रहती है। जयश्री रॉय ने नारी जीवन से जुड़े सरोकारों में लिंग भेद, अनमोल विवाह, वैहिक वा मानसिक शोषण, वैश्या जीवन, विधवा नारी पीड़ा वस्तु के रुप में नारी और अधिकारों के प्रति सजग नारी पर बात की है।

जयश्री राय का उपन्यास दर्जा हिन्दी सहित्य में स्त्री की वौज और त्रासदी को उकेरती रचनाओं में से एक अन्यतम रचना है। उपन्यास की नायिका महरा के साथ जितनी तरह की घटनाएं घटती है, वे प्रार्थनानुकुल घडती है। मगर हमसे यह छुपा नहीं है कि हमारी कई कुप्रथयो ने हमारी संस्कृतियो का और घासकर स्त्री गरिमा और स्वस्थ का जितना नुकसान पहुंचाया है। अफ्रीका के कई देशों की समुदाय विशेष ही महिलाओं में ऐसी ही एक कुप्रथा सुन्नत प्रचलित है। जयश्री रॉय ने सुन्नत प्रथा को केंद्र में रखकर दर्जा उपन्यास का रचना की। उपन्यास में लेखिका नायिका महारा के दर्द को वस्तुनिष्ठ और वास्तविक रूप में पकड़ने की कोशिश की है। उपन्यास कभी किसी अंतरंजना से बच्चा रह सका है। लेखिका ने इसे लिखते हुए उस सय्यम और निरपेक्षता का निर्वहन भी किया है।

निष्कर्ष :

संक्षेप में नारी स्वतंत्रता और नारी जागरण की बारे में चर्चा करे तो हिंदी लेखिकाओं का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। उनके अधिकांश नारी अत्यन्त सास शब्द, क्षमतावान एवं परिवर्तनकामी है। जल्दी ही विजय का मजिल हासिल करती है। पर मलयालम साहित्य में परंपरागत नारी स्वरूप का चित्रण करना उचित मानती है, नहीं तो ए कहिए वे अपनी नारी पत्रों में विद्रोह भावना या आधुनिक भाव बोध करने में हिचकती है। उनकी नारियां परंपरा की कसौटी से हरी उत्तरती है। वे अपने सीमित दायरों के अंतर जीतती है और कभी कभी बाहर आने की इच्छा रहने के बावजूद प्रयोग करने में असमर्थ निकलती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. दर्जा – जयश्री रॉय।
2. सात चलते हुए–जयश्री रॉय।
3. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ – शीला प्रभा वर्मा।
4. मोह रंग लाल–जयश्री रॉय।
5. अग्नि साक्षी– ललितांबिका अंतर्जन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 127-130
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्रीरामचरितमानस का भारतीय परंपरा पर सांस्कृतिक प्रभाव

पूनम, षोधार्थी,
प्रोफेसर संजीव कुमार (षोध निर्देषक), प्रोफेसर
हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विष्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा।

शोध पत्र :

भारत देष प्राचीन समय से ही आध्यात्म एवं साधना, भक्ति का मार्ग प्रषस्त करता आया है। हमारे वेद पुराण, उपनिषद्, ग्रंथ आदि इस आध्यात्मिक मार्ग का सांस्कृतिक आधार रहे हैं। जैसे रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता एवं तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस आदि। इन सभी धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से ही, भारतीय परंपरा पूर्ण रूप से सांस्कृतिकता के पक्ष को धारण करती है। श्रीरामचरिमानस में तो संपूर्ण ज्ञान एवं भक्ति का सांस्कृतिक स्वरूप एवं प्रभाव समाहित है। हमारी भारतीय परंपराओं में अनेकों त्योहार, अनुष्ठान तथा धार्मिक कार्य समाहित हैं। इन परंपराओं पर संस्कृति का प्रभाव पड़ना एक स्वाभाविक रूप है। गोस्वामी तुलसीदास ने इस ग्रंथ में संपूर्ण रूप से संस्कृति को उजागर किया है। उन्होंनें इसमें दोहों, चौपाइयों तथा छंदों के माध्यम से श्रीराम जी की कथा का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है। भारतीय पंरपरा में राम कथा के मौलिक गुणों को गाथा रूप में गाया एवं सुना जाता है। वर्तमान समय में भी इस ग्रंथ का सांस्कृतिक प्रभाव भारतीय परंपराओं पर देखा जाता है। मानव के जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत तक की सांस्कृतिकता को इस ग्रंथ में वर्णित किया गया है। हमारी परंपरागत प्रणाली का पूर्ण रूप इसे कहा जा सकता है। हमारे समाज में जितने भी अनुष्ठान होते हैं। उनमें इसकी सांस्कृतिकता का चित्रण एवं स्वरूप देखने को मिलता है जब एक बालक का जन्म होता है तो उसे श्रीराम जी के जन्म की भाँति संपूर्ण अनुष्ठानों की सांस्कृतिकता से परिपूर्ण किया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि –

कौसल्या जब बोलन जाई।
ठुमुक ठुमुक प्रभ चलहिं पराई।।
निगम 'नेति' सिव अंत न पावा।
ताहि धरै जननी हठि धावा।। (1)

अर्थात् जब माता कौसल्या श्रीराम जी को बुलाती है। तब राम जी ठुमुक–ठुमुक कर भाग जाते हैं।

जिनका वेद 'नेति' अर्थात इतना ही कहकर निरूपण करते हैं और षिव जी ने जिनका अंत नहीं पाया, माता उन्हें हठपूर्वक पकड़ने के लिए दौड़ती है।

'धूसर धूरि भरें तनु आए।
भूपति बिहसि गोद बैठाए।।[2]

वो षरीर में धूल को लपेटे हुए है और पिता दषरथ ने हँसकर उन्हें गोद में बैठा लिया। वर्तमान में भी नन्हें बालक ऐसा ही करते हैं। तुलसीदास जी ने इसमें संस्कारों का इतना सुंदर चित्रण किया है जिसको वर्तमान समय में भी सांस्कृतिकता पूर्ण निभाया जाता है। भारतीय पंरपरा का एक प्रमुख आधार है, हमारी संस्कृति। इसका प्रभाव पारंपरिकता के संपूर्ण अनुष्ठानों एवं धार्मिक कार्यों में निहित है। विवाह प्रसंग की परंपराओं में भी संस्कृति की भूमिका स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इसमें राम–सीता का विवाह और षिव–पार्वती का विवाह मुख्य उदाहरण माने जाते हैं। इसमें परंपरागत रूप की संपूर्ण संस्कृतियों का चित्रण समाहित है। वर्तमान भारतीय परंपरा इस सांस्कृतिक धारणा से कैसे विमुख हो सकती है। हमारे वेदों में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है जिसमें देव पूजा को और प्रकृति को आधार मानकर किया जाता है –

''सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोप्सरसः''।[3]

अर्थात् सूर्य ही गंधर्व है और उसकी किरणें ही अप्सरा है। हमारी संस्कृति का स्वरूप हमारे वेदों में भी निहित है। इस कारण श्रीराम कथा भी संस्कृति को सात्विक एवं धार्मिक रूप से प्रभावित करती है क्योंकि इसमें श्रीराम जी के मूल्यों तथा आदर्षों का मूल रूप से चित्रण किया गया है। वर्तमान में राम की लीलाओं का वर्णन नाट्य रूपांतरों के माध्यम से किया जाता है। यह हमारी परंपरा रही है कि रामलीलाएं मंचित होनी चाहिए और होती भी है क्योंकि जन समुदाय इन नाट्य मंचों को देखता है और धीरे–धीरे उसे अपने व्यक्तित्व में धारण करता है। भारत में जो संस्कृति समन्वय की प्रक्रिया चल रही है। उसका संपूर्ण आधार श्रीरामचरितमानस ही माना गया है इसमें जितने भी अनुष्ठानों, राज्यों एवं राजनीतियों का सांस्कृतिक चित्रण किया गया है। उतना किसी अन्य ग्रंथ में नहीं किया गया। गोस्वामी जी ने संस्कारों का इतना सुंदर चित्रण किया है कि भारतीय परंपरा इसको अपनी सांस्कृतिक धरोहर मानती है। इसमें आदर्ष चरित्रों का वर्णन किया गया है। जिनकी सांस्कृतिक साधना को संपूर्ण मानव जाति ने ग्रहण किया है। संस्कारों की संपूर्ण विवेचना वर्तमान में भारतीय परंपरा के साथ–साथ संस्कृति भी बन गई है। जब एक बालक का धरती पर जन्म होता है तो उसके साथ उससे जुड़ी सांस्कृतिक निधियां भी जन्म ले लेती हैं। यह सांस्कृतिक निधियां हमारे संस्कारों का मूल चित्रण प्रस्तुत करती है। हमारे मूल्य, आदर्ष, विचार तथा आचरण में पूर्ण से समाहित भी होती है। हमारे जीवन के पारंपरिक त्योहार, हमारी संस्कृति को धार्मिक में पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं जिसमें हर्ष, उल्लास तथा उत्साह जैसे पक्ष होते है, यह पक्ष हमारी संस्कृति को प्रमुखता प्रदान करते हैं। हमारी पारंपरिक पोषाके भी, हमें सांस्कृतिक सोहार्द प्रदान करती है।

भारतीय परंपरा में वस्त्रों एवं परिधानों को भी अपनी संस्कृति तथा सभ्यता से जोड़ा जाता है जिस प्रकार पाष्चात्य परिधानों से वहां की संस्कृति का पता चलता है। उसी प्रकार भारतीय परंपरा रूपी संस्कृति के संपूर्ण बिन्दुओं का पता उनके परिधानों से चलता है। परिधान से ही ज्ञात होता है कि हमारी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि कैसी

होगी? जैसे महिलाएं साड़ी पहनने पर सभ्य लगती हैं और पुरूष धोती–कुर्ता पहनने के पष्चात् सभ्य एवं संस्कृतिपूर्णता का परिचय देते हैं। महिलाओं के पारंपरिक परिधान एवं आभूषणों से ही संस्कृति को पहचान मिलती है कि उनकी सांस्कृतिकता कैसी है? परिधानों एवं आभूषणों की पारंपरिकता से ही भारतीय संस्कृति को पहचान मिलती है इसके साथ ही आचरण अथवा व्यवहार से भी हमारी संस्कृति सात्विक रूप से प्रभावित होती है। वही भोजन भी इसका मुख्य आधार माना गया है। कहा जाता है जैसे खाया अन्न वैसा होगा मन। जैसा भोजन ग्रहण किया जाएगा हमारा आचरण भी वैसा ही बन जाता है। इसलिए सात्विक एवं षुद्ध आहार ही ग्रहण करना चाहिए।

षुद्ध मन एवं आत्मा के प्रभाव से मानव जन अपनी संस्कृति से जुड़ा रहता है। उसी प्रकार वह भगवद भजन भी करता है। मानव जन जितना अपने ईष्वर का भजन अथवा चिंतन करता है। वह उतना ही अपनी धार्मिक संस्कृति से जुड़ता चला जाता है। हमारी परंपराओं में भजन का महत्त्व बहुत अधिक माना गया है। हमारी लोक परंपराएं इससे अछूती नहीं हैं। भारतीय परंपरा में लोक परंपरा को भजन–कीर्तन के रूप में संस्कृतिपूर्ण निभाया जाता है। लोक भजनों के माध्यम से, अपनी संस्कृति को उद्भाषित किया जाता है। जिसमें संपूर्ण समाज जन सम्मिलित होते हैं। श्रीराम जी के भजनों के माध्यम से इनकी कथा का गुणगान किया जाता है। भक्तजन गाकर अपने प्रभु की कथा सुनाते हैं। यह परंपरा हमारी संस्कृति को धार्मिक रूप से प्रभावित करती है।

''आना जनक दुलार हमारे हरि कीर्तन में,
आप भी आना संग राम जी को लाना,
लाना सारा परिवार हमारे हरि कीर्तन में
आना जनक दुलार हमारे हरि कीर्तन में।''(4)

इसमें सीता माता को अपने कीर्तन में बुलाने के साथ–साथ संपूर्ण सदस्यों को भी वर्णित किया है। इस प्रकार जब लक्ष्मण को षक्ति बाण लगता है तो इस प्रसंग को भी गाया जाता है।

इतने सूर्य उदय ना होए, संजीवन बूटी ले आइए अर्थात हनुमान जी को राम जी कह रहे हैं। उसी प्रकार जब सीता जी अकेली वन को गई तो लक्ष्मण जी उनको छोड़ने जाते हैं, परंतु बिना बताए ही लौट आते हैं। भक्त इस को भाव पूर्ण रूप से गाकर सुनाते हैं।

''आगे लक्ष्मण, पीछे–पीछे सीता दोनों चले जायें, हरे हो रघुनाथ हरे।
हरे–हरे बड़ की सीली–सीली छाँट, सीता की आँख खुली,
लक्ष्मण वन को छोड़ चले हो रघुनाथ हरे।।''(5)

इन प्रसंगों से ज्ञात होता है कि हमारी परंपराएं कितनी गहरी एवं श्रेष्ठ हैं जिनकी प्रभाविता इतनी धार्मिक एवं सात्विक है कि संपूर्ण संसार में संस्कृति का रूप धारण करके विस्तृत हुई है।

निष्कर्ष :

अंततः कहा जा सकता है कि श्रीरामचरितमानस तो हमारी भारतीय परंपराओं की संस्कृति का आधार है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने ग्रंथ में ऐसे सांस्कृतिक बिन्दु समाहित किये हैं, जिसके कारण हमारी संस्कृति सात्विक एवं धार्मिक रूप से प्रभावित होती है। फिर चाहे वह संस्कार हों, भक्ति, धर्म अथवा आचरण हो सभी

पक्ष भारतीय परंपरा की सांस्कृतिकता को भव्य रूप प्रदान करते हैं।

संदर्भ सूची :

1. श्रीरामचरिमानस (तुलसीदास) – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर – लोक भारती प्रकाषन।
3. हिन्दु संस्कृति अंक (कोष) – गीता प्रेस गोरखपुर।
4. वैदिक सम्पत्ति (पं. रघुनन्दन षर्मा) – हिंर्डोन सिटी (राजस्थान)
5. हरियाणवी साहित्य का इतिहास (डॉ. राजबीर धनखड़) – सुकीर्ति प्रकाषन (कैथल)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 131-135
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Evaluating the Role of Integral Humanism in the Working Mechanism of DAY-NRLM

Dr. Rakesh Singh
Associate professor, Department of Economics, HPU
Hemant Sharma
Ph.D. Research Scholar, HPU

Abstart :

This paper explores the synthesis between the socio-economic philosophy of Integral Humanism (as propounded by Pandit Deendayal Upadhyaya) and the operational framework of the Deendayal Antyodaya Yojana-National Rural Livelihoods Mission (DAY-NRLM). By employing a doctrinal method, the research analyzes how the principle of Antyodaya (the rise of the last person) serves as the primary economic driver for rural empowerment. The paper evaluates the working mechanism of Self-Help Groups (SHGs) and financial inclusion strategies to determine how effectively they mirror the "Third Way" of economic development.

Introduction :

The economic landscape of post-independence India has long been a battleground between Western capitalist models and socialist central planning. However, the philosophy of Integral Humanism, as propounded by Pandit Deendayal Upadhyaya, offers a distinct "Third Way" that seeks to harmonize the material needs of the individual with the collective welfare of society. Central to this doctrine is the concept of Antyodaya, which mandates that the success of any economic system must be measured by the "rise of the last person" rather than the growth of the top tier. This research paper examines how this indigenous economic philosophy has been institutionalized within the Deendayal Antyodaya Yojana-National Rural Livelihoods Mission (DAY-NRLM). By moving away from traditional trickle-down theories, the mission adopts a human-centric approach that treats the rural poor not as passive beneficiaries of state charity, but as active, integrated economic agents. The operational core of DAY-NRLM serves as a practical laboratory for the principles of Integral Humanism. Through its unique working mechanism, the mission organizes rural households into

Self-Help Groups (SHGs), effectively manifesting Upadhyaya's vision of a decentralized, cooperative economy. This transition from individual isolation to community-based entrepreneurship creates "Social Capital," a critical economic variable often ignored by purely materialist models. Furthermore, by facilitating financial inclusion through revolving funds and bank linkages, the scheme aims to achieve Economic Democracy, ensuring that capital is distributed across the social fabric like blood circulating through a living organism. This paper employs a doctrinal method to evaluate these mechanisms, arguing that the integration of "Dharma" (ethical duty) and "Artha" (economic prosperity) within the mission's guidelines provides a sustainable blueprint for eradicating multidimensional poverty in rural India.

Ultimately, evaluating the role of Integral Humanism in the working of DAY-NRLM requires a deep analysis of how philosophical ideals are translated into standard operating procedures. The mission's emphasis on skill development through the DDU-GKY and the promotion of sustainable livelihoods reflects the "Man over Machine" doctrine, prioritizing human dignity and full employment over mindless automation. As India strives toward becoming a self-reliant economy (*Atmanirbhar Bharat*), understanding the alignment between the Antyodaya philosophy and the NRLM's working structure becomes essential

2. Antyodaya as an Economic main goal :

The fundamental departure from the "Trickle-Down" economic theories that dominated global development for decades. In the Western capitalist model, the primary economic objective is the maximization of the Gross Domestic Product (GDP), under the assumption that wealth generated at the top will eventually reach the bottom. However, Pandit Deendayal Upadhyaya's economic philosophy reverses this logic. In the Antyodaya framework, the "last man"—the most marginalized, unskilled, and resource-poor individual—is the starting point of economic planning. Therefore, the success of the Deendayal Antyodaya Yojana (DAY-NRLM) is not measured by the total capital invested, but by the qualitative and quantitative rise in the standard of living of the poorest households. While classical economics focuses on the "Rational Individual" seeking utility, the Antyodaya doctrine views the individual as an "Integrated Man" (*Ekatma Manav*) inseparable from his family and community.

Consequently, the economic objective of DAY-NRLM is the creation of a "Household-Centric" livelihood. The mission's working mechanism identifies the poorest families through Participatory Identification of Poor , ensuring that the economic stimulus is injected directly at the base of the social pyramid. This ensures that the circulation of wealth begins where it is needed most, preventing the concentration of capital in urban centers or among the rural elite.

Furthermore, the Antyodaya shifts the objective from "State-dependent Welfare" to "Self-

reliant Empowerment." Upadhyaya argued that dignity is central to human existence; therefore, an economic system that relies indefinitely on subsidies or charity is a failure of the "Integrated" model. In the working mechanism of DAY-NRLM, this is reflected in the transition from grants to credit. By organizing the "last man" into Self-Help Groups (SHGs) and providing them with Revolving Funds and Bank Linkages, the scheme transforms a passive recipient of aid into a credit-worthy entrepreneur. The economic objective, therefore, is to create a decentralized "Economic Democracy" where the power of production is restored to the masses, fulfilling the humanist vision of a society where no one is left behind.

3. The Pillar of the Antodaya yojana :

The operational success of the Deendayal Antyodaya Yojana depends on a three-tiered mechanism that addresses the physical, social, and economic needs of the "Integrated Man." These pillars ensure that the rise of the marginalized is not a temporary relief, but a structural transformation.

- **Social Mobilization :** The first pillar of the working mechanism is the organization of the rural poor into Self-Help Groups (SHGs). From an economic perspective, this is the process of building "Social Capital." Integral Humanism posits that the individual is part of an organic whole—the *Samashti* (Society). The mechanism works by grouping 10–15 women who share similar economic vulnerabilities. By coming together, they overcome the "Individualism" that often leads to exploitation in the unorganized sector. This social pillar acts as a safety net and a collective bargaining unit, allowing the "last man" to access markets and government services that would otherwise be out of reach.
- **Financial Inclusion :** The second pillar is the creation of a decentralized financial ecosystem. Pandit Deendayal Upadhyaya argued that the concentration of wealth is a sign of a diseased economy. The DAY-NRLM working mechanism addresses this through the Revolving Fund and Community Investment Fund . Unlike traditional banking where the "last man" is seen as a risk, this mechanism treats the community as a credit-worthy entity.
- **The Revolving Fund :** Acts as the initial "blood flow" to start the internal economy of the group.
- **Bank Linkage :** The mechanism facilitates direct ties between SHGs and mainstream banks, ensuring that the "Artha" (wealth) of the nation reaches the smallest village unit. This achieves "Economic Democracy" by putting the power of capital management directly into the hands of the rural poor.
- **Livelihood Enhancement :**

The third pillar focuses on the "Man over Machine" doctrine, emphasizing that every hand must be productive. The working mechanism provides support for both Farm and Non-Farm livelihoods.

Through the DDU-GKY (Grameen Kaushalya Yojana), the mission focuses on valorizing human labor—turning unskilled workers into skilled professionals. By encouraging micro-enterprises and local value chains, the scheme ensures that the economic activity remains grounded in the local ecosystem. This pillar ensures that the "Antyodaya" rise is permanent by providing the "Integrated Man" with the skills and market access required to sustain his household without external doles.

4. Critical Evaluation :

While the Deendayal Antyodaya Yojana (DAY-NRLM) stands as a monumental attempt to institutionalize the philosophy of Antyodaya, evaluation reveals both significant triumphs and inherent challenges in its working mechanism.

- **Social Capital over Materialism :** The most significant success of the mission is its move away from the "Materialist" view of poverty. Traditional economic models treat the poor as mere consumers of calories or recipients of cash transfers. However, by focusing on Social Mobilization, the DAY-NRLM mechanism recognizes the "Integrated Man's" need for dignity and community. The transformation of millions of women into "Lakhpati Didis" is not just a financial metric; it is a manifestation of *Abhyudaya* (total prosperity). The scheme has successfully proven that when the "last person" is empowered with social identity and institutional support, they become productive assets rather than economic burdens.
- **The Risk of Institutional Bureaucracy :** A critical doctrinal concern is the potential conflict between "State Control" and "Self-Reliance." Integral Humanism warns against the over-centralization of power. While the working mechanism of DAY-NRLM is designed to be community-led, there is often a risk of it becoming "Target-Driven" rather than "Value-Driven." If the Village Organizations and Federations become too dependent on government officials for decision-making, the core principle of Swadeshi (Self-Reliance) is weakened. For a truly "Integral" economy, the mechanism must ensure that the "bottom" layer of the pyramid holds the actual steering wheel of the mission.
- **The Challenge of Market Integration :** The "Third Way" of economics proposed by Upadhyaya emphasizes localized production. While DAY-NRLM is excellent at creating Production by the Masses, it still struggles with Market Linkages. In a globalized economy, micro-enterprises run by SHGs often face stiff competition from large corporations. The "Working Mechanism" needs to strengthen its "Dharma-based trade" practices—ensuring that the products of the "last man" find a fair market. Without a robust strategy to protect these small-scale producers from market volatility, the "Antyodaya" rise remains fragile and dependent on external subsidies.

Conclusion :

The evaluation of the Deendayal Antyodaya Yojana (DAY-NRLM) through a doctrinal economic

lens reveals a profound alignment between indigenous philosophy and modern policy implementation. This research demonstrates that the mission is not merely a bureaucratic process, but a structural application of Integral Humanism. By shifting the economic objective from aggregate national growth to the "rise of the last person" (Antyodaya), the scheme successfully challenges the limitations of Western materialist models. The transition of the rural poor from passive beneficiaries to active stakeholders in Self-Help Groups reflects the "Integrated Man" ideal, where individual prosperity is inextricably linked to collective strength. Furthermore, the three pillars of the mission—Social Mobilization, Financial Inclusion, and Livelihood Enhancement—serve as a functional framework for Economic Democracy. By decentralizing capital and prioritizing human labor over mindless automation, DAY-NRLM provides a sustainable "Third Way" that honors human dignity. However to reach its full potential, the mechanism must bridge the gap between rural production and modern markets while avoiding the pitfalls of over-centralization. Ultimately, the Yojana proves that ancient values of *Dharma* and *Artha* can be synthesized with 21st-century financial systems to create an economic model that is productive, equitable, and human-centric.

Refrences :

- Upadhyaya, D. (1950s). *The Two Plans: Promises, Performance, Prospects*. Lucknow: Rashtra dharma Prakashan. (Critical for the economic "Third Way" argument).
- Upadhyaya, D. (1968). *Political Diary*. Bombay: Jaico Publishing House. (Useful for his thoughts on decentralized economy and "Antyodaya").
- Upadhyaya, D. (1958). *Bharatiya Arthniti: Vikas Ki Ek Disha* (Indian Economics: A Direction for Development).
- Ministry of Rural Development. (2011). *National Rural Livelihoods Mission: Mission Document*. Government of India.
- Ministry of Housing and Urban Affairs. (2013). *Mission Document on Deendayal Antyodaya Yojana - National Urban Livelihoods Mission (DAY-NULM)*. Government of India.
- Ministry of Rural Development. (2023). *Master Circular on DAY-NRLM*. (This provides the "working mechanism" rules like the Panchasutra and fund flow).
- NITI Aayog. (2021). *National Multidimensional Poverty Index: Baseline Report*. New Delhi: Government of India. (To support the "Antyodaya" metric).
- Kelkar, V., & Shah, A. (2019). *In Service of the Republic: The Art and Science of Economic Policy*. (Useful for comparing Indian policy with Western economic doctrines).
- Dutta, V. (2017). "Antyodaya and the Philosophy of Deendayal Upadhyaya." *Indian Journal of Public Administration*.
- National Institute of Rural Development (NIRD). (Various years). *Research Reports on SHG-Bank Linkage and Rural Livelihoods*. Hyderabad, India.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 136-141
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुमाऊँ में चंद वंश की प्रशासनिक व्यवस्था (13वीं–18वीं शताब्दी) : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

किशोर कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
डी0 एस0 बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल।

शोध सारांश :

किसी भी राज्य की समृद्धि के लिए कुषल प्रषासनिक व्यवस्था का होना बेहद महत्वपूर्ण है। चंद राजवंष की प्रषासनिक प्रणाली की विषेषता शासन और कूटनीतिक कौषल का अनूठा मिश्रण थी। जो पूर्ववर्ती कत्यूरी शासन व्यवस्था से प्रभावित थी। इसका स्वरूप मुगलों की प्रषासनिक व्यवस्था से मिलता–जुलता था जिसे स्थानीय जरूरतों के अनुकूल ढाल लिया गया था। चंद शासकों द्वारा अपने विष्वासपात्र सरदारों को विभिन्न क्षेत्रों के प्रषासन का कार्यभार सौंपा था, ये सरदार स्थानीय स्वायत्तता के साथ ही केन्द्र के प्रति भी स्वामिभक्ति रखते थे। यही केंद्रीय राजषाही, सामंती संरचना और उनकी प्रषासनिक प्रणाली, राज्य की स्थिरता और समृद्धि सुनिष्चित करने में सहायक सिद्ध हुई।

चंद शासन का एक महत्वपूर्ण पहलू उनकी कूटनीतिक समझ थी। जिसने शासक की क्षेत्रीय स्थिरता सुनिष्चित करने के लिए पड़ोसी राज्यों के साथ सक्रिय रूप से गठबंधन और संधियां की। जिससे कुमाऊं में लगभग 500 से अधिक वर्षों के चंद राज्य कायम रहा व इसने कुमाऊं के राजनीतिक परिदृष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कुमाऊँ के चंद शासकों की प्रषासनिक व्यवस्था पर प्रस्तुत इस शोध पत्र का उद्देष्य चंद काल में इस क्षेत्र की शासन व्यवस्था, सामरिक कूटनीति व कुमाऊं की संस्कृति और शासन में उसके प्रभाव पर प्रकाष डालते हुए एक ऐतिहासिक विष्लेषण करने का प्रयास है।

प्रस्तावना :

कुमाऊँ क्षेत्र अपनी विषिष्ट पर्यावरणीय संरचना और भौगोलिक स्थिति के कारण प्राचीन काल से ही आर्य और आर्येतर संस्कृतियों के विविध उपादानों को अनुकूलन के साथ आत्मसात करता रहा है। जिसके परिणामस्वरूप यहाँ पर ऐसी मिली–जुली संस्कृतियों का विकास हुआ जिसे कभी एक सांस्कृतिक परंपरा से नहीं जोड़ा जा सकता।

कुमाऊँ क्षेत्र में प्रागैतिहासिक काल से ही मानव निवास के स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त होते हैं। अल्मोड़ा जनपद

के फलसीमा ग्राम के निकट स्थित लखु उड्यार (लखु गुफा) से प्राचीन मानव द्वारा निर्मित चित्र प्राप्त हुए हैं, जो मानव अभिव्यक्ति की आद्य अवस्थाओं को दर्षाते हैं।[1] इतिहासकारों के अनुसार, इस क्षेत्र को सर्वप्रथम कोल जनजातियों ने अपना निवास स्थान बनाया। कोलों के उपरांत किरातों ने यहाँ बसने की प्रक्रिया अपनाई। किंतु कालान्तर में खसों ने कोल और किरात समुदायों को परास्त कर इस भूभाग पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया।[2] एटकिंसन के अनुसार कुमाऊँ के अधिकांष निवासी खस या खसिया जाति से संबंधित हैं। उनके आचार–विचार, धार्मिक विष्वास और सामाजिक संरचना हिन्दू धर्म से इतनी गहराई से जुड़े हुए हैं कि उन्हें पृथक रूप से पहचानना अत्यंत कठिन है।[3] कुमाऊँ में शासन करने वाला पहला वंष कुणिंद वंष था जिसने 7वीं–8वीं शताब्दी ईव पूर्व से दूसरी–तीसरी शताब्दी ई. तक शासन किया।[4] कुणिन्दों के अवसान के बाद इस क्षेत्र में उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी के रूप में एक नये पौरव राजवंश की सूचना तालेश्वर दानपत्रों से प्राप्त होती है। तत्पश्चात् सातवीं शताब्दी ईस्वी में कुमाऊँ क्षेत्र में कत्युरी राजवंष की स्थापना हुई, जिन्होंने कार्तिकेयपुर को अपनी राजधानी बनाया। कत्युरी शासकों ने सम्पूर्ण उत्तराखण्ड और पष्चिमी नेपाल तक अधिकार कर लिया था। कत्यूरी राज्य के पतन के उपरांत उसके अधीनस्थ सामंतों[5] ने स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर अनेक छोटे–छोटे राज्यों की नींव रखी। इन्हीं परिस्थितियों में चम्पावत क्षेत्र में चंद राज्य का उदय हुआ।

चंद राज्य का प्रशासनिक ढांचा :

चंद राज्य में राजा ही संप्रभु था। राजा में ही साम्राज्य की समस्त शक्तियां निहित थी लेकिन वह मंत्रियों की सलाह लेता था। वह सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं था। हमें ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं कि राजा अधिकांष निरकुंष होता था। चंद शासक राजाधिराज महाराज की उपाधि धारण करते थे। ज्ञानचंद से पूर्व सभी शासकों ने सिर्फ राजा की उपाधि धारण की थी जबकि ज्ञानचंद (1374-1419) से कल्याणचंद (1545-1565) से पूर्व के शासकों ने राजाधिराज महाराज की उपाधि धारण की जो कि साम्राज्य विस्तार के कारण उनकी बढ़ी हुई प्रतिष्ठा व हैसियत का प्रतीक थी। राजा नरचंद ने "निज भुज विक्रमाकान्त, समस्तारिमण्डल दुर्धर्ष भुजदंड, प्रचंड निखलतारिमण्डली, बेताल वाहन, वीर विक्रमादित्य, भीम त्रिपुरसँ करेत्यादी विरुदावली, विराजमान गो ब्रह्मणक भक्तराज स्री नरचंद्र देवाः।"[6] महिमामण्ति विरूद धारण किए थे। चंद राजाओं द्वारा इस प्रकार की महिमण्डित उपाधियां या देवत्व के विरुद्ध धारण करने का उद्देष्य प्रजा में अपनी पैठ व प्रतिष्ठा का प्रचार करना प्रतीत होता है ताकि प्रजा अपने ऊपर राजा के शासन को ईष्वर की इच्छा मानकर उसके प्रति सेवा भाव प्रदर्षित करती रहे।[7] ब्राहमण वर्ग इस कार्य में चंद शासकों की सहायता करता था। चंद राजाओं द्वारा अनेक ब्राह्मणों को दिए गए भूमिदनों से प्रतीत होता है कि राजाओं द्वारा दिए इन भूमि अनुदानों के बदले ये ब्राह्मण प्रजा में राजा का गुणगान करते थे तथा राजा को प्रजा के बीच देवी गुणों से संपन्न होने के दावों के आधार को भी पुष्ट करते थे।

प्रषासन को सुचारू रुप से चलाने के लिए मंत्रि परिषद का होना अनिवार्य था। चंद दरबार में विभिन्न विभागों के अलग–अलग मंत्री थे यथा –ः महाराजकुमार, दीवान, बक्सी, मुख्तार, वजीर, राजगुरू बिष्ट, लेखवार, आदि। राजपुरोहित का कार्य राजदरबार के कर्मकांड, पूजा अर्चना, राजतिलक था राजपरिवार के विवाहादि संस्कार सम्पन्न करवाना था तथा राजगुरू का कार्य महाराजकुमारों की षिक्षा–दीक्षा आदि का था।[8]

दीवान व वजीर :–

वजीर राजा का मुख्य परामर्षदता था तथा वजीर केवल राजा का वित्तमंत्री होता था। मुगल दरबार में भी

वजीर शब्द का प्रयोग केवल पादषाह के वित्त मंत्री के लिए किया जाता था।[9] दीवान शब्द का प्रयोग प्रांतों के राजस्व के प्रभारी अधिकारी के साथ ही जागीरदारों एवं मनसबदारों के वित्तीय प्रबंधकों के लिए भी किया जाता था। चंद कालीन दीवान गुप्त काल के आमात्य की भांति था। गुप्तों की भांति चंद राज्य में भी अनेक बार एक व्यक्ति को दो या कभी–कभी तीन पदों भी नियुक्त किया जाता था। इलाहाबाद प्रषस्ती का रचयिता एक कुमारामात्य, संधिविग्रहिक और महादण्डनयक था।[10] कल्याण चंद के समय षिवदेव जोषी दीवान तथा बक्षी दोनों पदों पर नियुक्त थे तथा दीपचंद के समय उनके पुत्र हर्षदेव जोषी ने दोनों पद संभाले। राजा कल्याणचंद (1730-1747 AD) के समय नंदू बिष्ट वजीर तथा अनूपसिंह अधिकारी दीवान के पद पर कार्यरत थे।[11]

बक्शी :–

बक्षी सेना का मंत्री होता था। वह मुख्य सेनापति तो नहीं था क्योंकि सैन्य अभियानों का नेतृत्व राजा स्वयं करता था अथवा महाराजकुमार को नेतृत्व सौंपा जाता था। बक्षी का प्रमुख कार्य दिल्ली सल्तनत के आरिज ए मुमालिक व मुगल साम्राज्य के मीर बक्षी की भांति सैनिकों की भर्ती करना, सैनिकों तथा उनके घोड़ों के विवरण रखना, सैनिक अभियानों का आयोजन करना और सेना का निरीक्षण करना था।[12] चूंकि चंद राजाओं के पास कोई बड़ी स्थाई सेना नहीं थी राजा युद्ध के समय अपने अधीन सामंतों व फौजदारों की सेना पर निर्भर रहता था। अतः इन स्थानीय सामंतों पर नियंत्रण रखना भी बक्षी का कार्य था।

लेखवार–दफ्तरी :–

लेखवार का कार्य मुगल काल के मुषरिफ (महालेखाकार) के समान था। इसके अधीन राजधानी में कुछ अन्य लेखवार काम करते थे। परगनों के लेखवार भी इसी को अपनी रपट देते थे। विक्रमचंद के अभिलेख में लेखिया के कार्यालय को ''पटन बीसी चार थान'' कहा गया है। कुछ चंद राजाओं के शासन में रंगतली के भट्ट ब्राह्मण तथा द्वाराहाट के साहू लेखवार के पद पर रहे। बाद में उनके स्थान पर अधिकारी लोग नियुक्त किए गए। 1563 ई0 में अल्मोड़ा राजधानी स्थानांतरित होने के पष्चात साहू लेखवारों के स्थान पर कुमाऊं के चौधरियों ने उनका स्थान ले लिया।[13] राजा त्रिमलचंद के समय गल्ली के दिनकर जोषी को लेखवार बनाया गया। बाद में प्रयागदाष जोषी को दफ्तरी नियुक्त किया गया, इनके नीचे साहू, चौधरी तथा रगताली लेखक सहायक कर्मचारी काम करते थे। ये लोग दीवानों को 'सीक' नामक नजराना भी देते थे।[14]

बिष्ट :–

चंद राज्य में बिष्ट का पद न्यायाधीष का था। इस पद के बारे में ज्यादा जानकारी प्राप्त नहीं होती है। राजा लक्ष्मीचंद (1597-1621AD) के अग्रज शक्ति सिंह गुंसाई ने अपराधिक मामलों के निपटारे हेतु विश्टाली नामक फौजदारी न्यायालय की स्थापना की थी।[15]

मुख्तार :–

चंद राज्य में मुख्तार की स्थिति महामंत्री के सदृष थी। वह दरबार का सर्वोच्च मंत्री था तथा स्वयं अपने स्तर पर सभी महत्वपूर्ण निर्णय ले सकता था। अयोग्य व अवयस्क शासकों के समय मुख्तार के हाथों में ही शासन की बागडोर होती थी। अन्य दरबारी मंत्री उसकी अधीनता में कार्य करते थे। राजा कल्याणचंद (1730-1747 AD) ने अपनी मृत्यु के समय षिवदेव जोषी को अपने अवयस्क पुत्र दीपचंद का मुख्तार नियुक्त किया था।[16]

सेजवाल :–

राजा लक्ष्मीचंद (1597-1621 AD) के समय शक्ति गुसाईं ने राजा के पहनने वाले कपड़े, जूते चप्पल, दुषाले जरी के कपड़े, खिलअत का सामान, निजी हथियार वगैरह रखने के लिए अलग से 'सेज्याली' नामक विभाग स्थापित किया। जिसकी देख–रेख सेजवाल नामक अधिकारी करता था। धनुष–बाण, तलवार, बंदूक, कटार आदि रखने हेतु 'सेलखाना' तथा बारुद, सोरा, इत्र, महताब आदि रखने के लिए 'दारुघर' की स्थापना की गई।[17]

चंद राज्य में एक केंद्रीकृत शासन व्यवस्था थी। राजा प्रषासन का केंद्र था तथा राजतंत्र की निरंकुष शक्ति पर बल दिया जाता था। शासन की समस्त शक्तियां राजा के हाथों में होती थी। राज्य में आक्रमण होने की स्थिति में वह स्वयं युद्ध में जाता तथा सेना का नेतृत्व करता था। युवराज, बक्षी आदि मंत्री भी उसके साथ युद्ध में जाते थे। चंद के मंत्रियों (दीवान, वजीर तथा अन्य) के अनेक ऐसे प्रमाण मिले हैं कि वे राजदरबार में प्रषानिक कार्यों के अतिरिक्त युद्ध क्षेत्र में भी राजा की सहायता हेतु जाते थे।

स्थानीय प्रशासन :–

आरंभ में चंद राज्य सिर्फ चम्पावत के आस–पास के क्षेत्र में ही फैला था लेकिन जैसे–जैसे राज्य का विस्तार हुआ तो शासन का विकेन्द्रीकरण अपरिहार्य हो गया। चंद राजाओं ने राज्य के प्रषासन को सुचारु ढंग से चलाने के लिए राज्य को छोटी–छोटी प्रषासनिक इकाईयों में विभाजित किया था। आरंभ में चंपावत के आस पास के लोगों को उच्च्य प्रषासनिक पद दिए गए। चार बूढों (प्रभावषाली सरदारों) (बोरा, कार्की, चौधरी और तड़ागी) को अपना फौजदार व परामर्षदाता बनाया था। कालान्तार में जब चंद राज्य का विस्तार हुआ तो चंद शासकों ने स्थानीय लोगों को प्रषासन में भागीदार बनाने के साथ–साथ चम्पावत के अपने विष्वसनीय परिवारों को इन नवविजित प्रदेषों में बसाया तथा वहां इन्हें जागीर देकर प्रषासन का कार्यभार सौंपा। इस प्रकार चंद राजाओं का प्रषासन अपने आप मे स्थानीय जरूरतों के अनुरूप स्वतः विकसित हुआ प्रषासन भी था।

चंद राज्य की भूमि दो प्रकार के प्रदेषों में बटीं थी। 1. राजा द्वारा शासित (गुप्त काल की 'सीता भूमि' तथा मुगलकाल की 'खालसा भूमि' की भांति) 2. सामंतो के अधीन (मुगलकालीन 'वतन जागीर' की भांति)। चंद शासकों के जिन प्रदेषों को विजित किया उन प्रदेषों पर शासन कर रहे पूर्व शासकों को अपने अधीनस्थ सामंत के रूप में शासन करने दिया। भारतीचंद (1444-1477AD) ने सोर के बमों को पराजित करने के बाद भी विजयबम को अपना अधीनस्थ सामंत बनाया था। सेरा खड़कोट के ताम्रपत्र में ज्ञानचंद को राजा व विजयबम को विरुद रहित सामंत अंकित किया गया है। रतन चंद (1477-1488 AD) ने सीरा विजय के उपरान्त बसेड़ा राजपूत को वहां का सामंत बनाया था। यही कार्य पाली पछाऊ, चौगरखा, बारामंडल, कत्यूर घाटी व तराई के प्रांतो में भी नियुक्त किए गये सामंतो को राजा व रजबार उपाधि धारण करने की छूट थी। ये सामंत राजा को वार्षिक कर देते थे। युद्धकाल में ये राजा की सैनिक सहायता करते और स्वयं भी युद्ध क्षेत्र में जाते थे। इन्हें ठक्कुर भी कहा जाता था।[18] चंदों की राजव्यस्था पूरी तरह सामंती थी जिसमे प्रभु भक्ति सर्वोपरि होती है। इस सामंती व्यस्था से चंदों को अनेक लाभ थे, सामंत अपने प्रभु के प्रति सैनिक और असैनिक दोनो प्रकार के कर्तव्यों का निर्वाह करते थे। अपने प्रभु को आवष्यकता पड़ने पर राजदरबार में उपस्थित होकर वे अपनी राजभक्ति प्रदर्षित करते थे तथा युद्धस्थिति में अपने प्रभु को सैनिक सहायता देने के लिए बाध्य थे।

चंद राज्य छोटे प्रान्तों में विभाजित था जिन्हें देश कहा जाता था। यथा –ः तल्ला देश, मल्ला देश, गुम देश, गुरुड़ देश, खरक देश, माल–भाभर का देश, पर्वत डोटी का देश आदि। ये देश परगने व गर्खों में विभाजित होते थे। परगने दो प्रकार के थे। एक वे जो नागरिक अधिकारी के अधीन होते थे। दूसरे वे जो सैनिक कमांडर (बक्शी) के अधीन होते थे। जगत चंद्र के बरम ताम्रपत्र में बक्सी का परगना का उल्लेख आया है।[19] चंद राज्य में बारह परगने या गर्खे थे। कल्याणचंद द्वारा अनूपसिंह तड़ागी को दिए गए शाके 1667 सन् 1745 ई0 के ताम्रपत्र में रोहेला आक्रमण के समय तड़ागी द्वारा सभी 12 गर्खों को सावधान करवाए जाने का उल्लेख है।[20] चंद शासकों के ताम्रपत्रों में सोर का गरखा, माली का गरखा, कुमाऊं का गरखा, गंगोली का गरखा, छीनकी का परगना, चालसी का गरखा आदि का उल्लेख मिलता है।

परगने या गर्खे का प्रमुख अधिकारी 'सीरदार' कहलाता था। वह परगने के समस्त प्रशासनिक कार्यों का प्रमुख अधिकारी था। सीरदार अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के काम काज की देखरेख करता था तथा वह भूमि की पैमाइश की जांच बयालों (लेखाधिकारियों) से करता रहता था। सीरदार को वेतन के एवज में न तो प्राचीनकाल की भांति भूमि मिलती थी और न ही वह मुगलकालीन सीरदार की भांति ठेके पर या कमिषन पर खेती करवाता था। उसका भरण–पोषण राज्य की ओर से निर्धारित वेतन के स्थान पर राज्य के दौरों में मिलने वाली दस्तूरियों (नीत) से हुआ करता था। सीरदार के अधीन परगने अन्य के सभी अधिकारी कार्य करते थे। यथा–ः फौजदार, नेगी, कमीन, बयाल, भण्डारी आदि।

निष्कर्ष :–

एक आदर्श एवं सफल शासक वह है, जो अपने राज्य को शांति पूर्ण राज्य बनाने के लिए सुदृढ़ एवं संगठित राज्य तथा दूरदर्शी प्रषासनिक व्यवस्था स्थापित करता है। राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था राज्य की स्थिरता के लिए रीढ़ का कार्य करती है।

चंद शासकों का केंद्रीय गुप्त शासकों, अपने पूर्ववर्ती कत्यूरियों तथा अपने समकालीन मुगल सम्राटों के समान ही था लेकिन उसे अपनी स्थानीय जरूरतों के अनुरूप ढाल लिया गया था। क्योंकि राजवंशों एवं सत्ताओं में परिवर्तन होते रहते रहे लेकिन प्रशासन का स्वरूप वही रहता था। अपनी राज्य की जरूरतों के अनुसार ढलकर पूरे कुमाऊँ के क्षेत्र पर प्रषासन के विकेंद्रीकरण के बाद भी शासन की सभी इकाइयों पर केंद्र की मजबूत पकड़ बनाए रखी जिसके परिणामस्वरूप ही एक छोटे सी जगह से शुरू हुआ राज्य सम्पूर्ण कुमाऊँ पर सैकड़ों वर्षों तक मजबूती से खड़ा रह पाया।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियां :

1. मठपाल यशोधर, उत्तराखण्ड़ में संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्टभूमि, संपा. प्रमोद जोशी, उत्तराखण्ड़ शोध संस्थान, 1987 पेज 1–8।
2. शर्मा, डी डी, हिमालय के खस, पहाड पोथी, नैनीताल, 2006, पेज 43।
3. एटकिंसन, ई. टी. द हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स ऑफ द नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज ऑफ इंडिया, खंड 3, कॉस्मो पब्लिकेशन्स, 1973, पृष्ठ 270।
4. लौह युग में मानव बसासत के उल्लेखनीय अवशेष उत्तराखण्ड़ में कुणिन्दजनों से सम्बन्धित हैं। कुणिन्दों

का उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य एंव विदेशी लेखक प्लिनी ने मध्यहिमालय में रहने वाले एक जन–समूह के रूप में किया है। इनके सिक्के पश्चिम में सतलज से पूर्व में काली नदी के मध्य स्थित हिमालयी क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। – जोशी, महेश्वर प्रसाद : उत्तराखण्डः पुरातत्व और सामाजिक सिद्धांत, पहाड़ 5/6, पहाड़ पोथी, नैनीताल, 1992, पेज 03।
5. सामंत का अर्थ प्रारम्भिक काल में पड़ोसी राजा, ठाकुर, रानक अथवा राउत आदि से था। सामंतों का मुख्य दायित्व था पुरानी प्रथाओं को बनाए रखते हुए जिन्स (अनाज अथवा उपज) के रूप में राजस्व एकत्र करना तथा उसका एक अंश रोकड़ (नकद) में परिवर्तित कर राज्य को प्रदान करना। इसके अतिरिक्त, आवश्यकता पड़ने पर सामंत को अपने निजी व्यय पर निश्चित संख्या में सशस्त्र सैनिकों और घुड़सवारों की टुकड़ी संगठित कर, राजा की सेना में सम्मिलित होना अनिवार्य था। – कोसाम्बी, डी0 डी0 : प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, अनु0 गुणाकर मूले, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023 पेज 244।
6. सिंह, राम : राग भाग काली कुमाऊँ, पहाड़ फाउण्डेशन, परिक्रमा तल्लाडाण्डा, नैनीताल, 2002, पृष्ठ 218।
7. सिंह, उपिंदर : प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन, 2019, पृष्ठ 523।
8. डबराल, शिव प्रसाद : कुमाऊँ का इतिहास भाग10, वीर गाथा प्रकाशन, गढ़वाल, पृष्ठ 208।
9. वर्मा, हरीश चंद्रः मध्यकालीन भारत भाग 2, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, पृष्ठ 293।
10. सिंह, उपिंदर : पूर्वोक्त।
11. सिंह, राम : सोर का अतीत, मल्लिका बुक्स, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 347।
12. वर्मा, हरीश चंद्र : पूर्वोक्त, पृष्ठ 296।
13. पाण्डे, बद्री दत्तः कुमाऊँ का इतिहास, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा, 2022, पृष्ठ 288।
14. पूर्वोक्त।
15. शर्मा, डी डी : उत्तराखण्ड ज्ञानकोष भाग 2, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2012, पृष्ठ 449।
16. डबराल, शिव प्रसाद, पूवोक्त, पृष्ठ 207।
17. पाण्डे, बद्री दत्त, पूवोक्त, पृष्ठ 271।
18. रावत, अजय सिंह : उत्तराखण्ड का समग्र राजनैतिक इतिहास, अंकित प्रकाशन, हल्दवानी, 2022, पृष्ठ 71
19. लाल, श्याम : ताम्रपत्र बताते हैं बहुत कुछ, पहाड़ पत्रिका, अंक 3–4, पहाड़ फाउण्डेशन, परिक्रमा तल्लाडाण्डा, नैनीताल पृष्ठ 19।
20. सिंह, राम : राग भाग काली कुमाऊँ, पूर्वोक्त, 349।

ईमेलः kishorj238@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 142-153
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आचार्य विनोबा भावे विचार में भक्तियोग का केन्द्रीय रहस्य – एक विवेचन

डॉ. संदीप ठाकरे, सहायक प्राध्यापक,
योग विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक–484887 मध्यप्रदेश।
डॉ. भारत भूषण सिंह, सहायक प्राध्यापक,
योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल उत्तराखंड।

शोध सारांश :

प्रेम' या 'भक्ति' के माध्यम से 'ईश्वर' या 'ब्रम्ह' को प्राप्त करने का मार्ग ही 'भक्तियोग' कहलाता है। शंकराचार्य ने तो अपने वास्तविक स्वरूप का अनुसंधान करने को ही भक्ति कहा है। भक्ति का अर्थ है प्रेम और ईश्वर के प्रति निष्ठा–सृष्टि के प्रति प्रेम और निष्ठा, सभी प्राणियों के प्रति सम्मान और उनका संरक्षण। हर कोई भक्तियोग का अभ्यास कर सकता है, चाहे छोटा हो या बड़ा, धनी अथवा निर्धन, चाहे वह किसी भी राष्ट्र या धर्म से संबंध रखता हो। भक्तियोग का मार्ग हमें अपने उद्देश्य की ओर सीधा और सुरक्षित पहुंचा देता है। विनोबाजी की भक्ति–भावना में जाति, धर्म, पंथ आदि के लिये लेशमात्र भी स्थान नहीं था। 'भक्ति' का अर्थ वे अहंशून्यता, निष्काम सेवाभाव आदि से लगाते थे। भक्ति का अर्थ केवल जपमाला लेकर नाम–रटन करना नही है। चित्त में निरन्तर परमेश्वर का स्मरण करना और जो भी मिले उसे परमेश्वर का प्रतिनिधि समझना ही इसका वास्तविक स्वरूप है। विनोबाजी कहते थे कि हमें प्रत्येक स्थान पर भक्ति की आवश्यकता पड़ती है। हमारी बुद्धि भी एक सीमा तक कार्य करती है। परंतु एक बिंदु ऐसा भी आता है कि बुद्धि से कार्य संभव नहीं हो पाता तब वहां भक्ति की आवश्यकता पड़ती है। भक्ति तो वास्तव में वहां उत्पन्न होती है, जब मनुष्य के सारे प्रयत्न शिथिल हो जाते हैं, उसकी पुरूषार्थशक्ति कुंठित हो जाती है, वहीं पर भक्ति आवश्यक हो जाती है। ईश्वर ने जो हमें शक्ति दी है, उसका पूरा उपयोग नम्रता और आस्तिकता के साथ करना चाहिये। अपने पास की शक्ति का पूर्ण उपयोग करने पर ही मनुष्य ईश्वरीय शक्ति की मांग का अधिकारी होता है। अपने पास का बल न लगाना अहंकार, आलस्य और अश्रद्धा है। अतः अपने अंदर ईश्वर की जो शक्ति है, वह निरहंकार भाव से लगाने पर ही अधिक शक्ति का आवाहन करना चाहिये। अतः अपना प्रयत्न करने पर ही मनुष्य ईश्वर की सहायता के लिये व्याकुल होता है। इस व्याकुलता में से ही मनुष्य के अंदर 'भक्ति' का जन्म होता है।

शब्द–कुंजी : प्रेम, भक्ति, ईश्वर, संकीर्तन, पूजन, स्तुति, प्रार्थना, आत्मानुभव।

प्रस्तावना :

भक्तियोग का स्वरूप :

'प्रेम' या 'भक्ति' के माध्यम से 'ईश्वर' या 'ब्रम्ह' को प्राप्त करने का मार्ग ही 'भक्तियोग' कहलाता है। शंकराचार्य ने तो अपने वास्तविक स्वरूप का अनुसंधान करने को ही भक्ति कहा है। श्रीमद् भगवद्गीता में भी 'भक्ति' के स्वरूप को समझाया गया है। 'भक्तियोग' मानव मन के संवेगात्मक पक्ष को पुष्ट करता है। 'भक्ति' में भक्त अपने को ईश्वर के प्रति समर्पित करता है। भक्ति–मार्ग उपनिषद की उपासना के सिद्धान्त से ही प्रस्फुटित हुआ है। भक्ति–मार्ग का पालन करने से साधक को ईश्वर की अनुभूति स्वतः ही होने लगती है, श्रीमद् भगवद्गीता में ईश्वर को 'प्रेम' के रूप में चित्रित किया गया है। जो ईश्वर के प्रति प्रेम, आत्म–समर्पण, भक्ति रखता है उसे ईश्वर का प्रेम प्राप्त होता है। जो कुछ भक्त शुद्ध मन से ईश्वर के प्रति अर्पण करता है, उसे ईश्वर स्वीकार करता है। इसलिये भगवान स्वयं श्रीमद् भगवद्गीता में कहते हैं– ''जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र–पुष्पादि मैं सगुणरूप से प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूं''[1] ईश्वर के भक्त का कभी अन्त नहीं होता है। जो भगवान को प्रेम करता है, वह नष्ट हो ही नहीं सकता है। भक्ति के द्वारा जीवात्मा अपने बुरे कर्मों के फल का भी क्षय कर सकता है।

भक्ति के स्वरूप का वर्णन करना अकथनीय है। जिस प्रकार एक गूंगा व्यक्ति मिठाई के स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता, उसी प्रकार भक्त भी अपनी भक्ति की व्याख्या शब्दों के द्वारा नहीं कर सकता है। श्रीमद् भगवद्गीता में चार प्रकार के भक्त– आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी को स्वीकारा गया है। यहां पर केवल भक्तियोग के स्वरूप के संदर्भ में भक्तों के इन नामों का उल्लेख किया गया है।

श्रीमद् भगवद्गीता में 'ज्ञान' और 'भक्ति' में निकटता का सम्बन्ध दर्शाया गया है। यहां ज्ञान में ही भक्ति तथा भक्ति में ही ज्ञान को गूंथ दिया गया है। इसका फल यह होता है कि यहां ज्ञान और भक्ति में परस्पर विरोध नहीं दिखता है। परमेश्वर के ज्ञान के साथ ही प्रेम रस की अनुभूति होने लगती है।

'भक्ति' के लिये श्रद्धा का रहना नितान्त आवश्यक है। जब तक ईश्वर की आराधना भक्ति से की जाती है, तब मन में शुद्धता का विकास और ईश्वर के चैतन्य का ज्ञान हो जाता है। भक्ति में प्रेम और प्रेमी का भेद नष्ट हो जाता है तथा दोनों के बीच ऐक्य स्थापित हो जाता है। भक्त ईश्वर के गुणों का स्मरण कर निरन्तर ईश्वर के ध्यान में तल्लीन हो जाता है। भक्ति से ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती है। जब भक्त का प्रकाश तीव्र हो जाता है तब ईश्वर भक्त को ज्ञान का प्रकाश भी देता है। इस प्रकार भक्ति से पूर्णता की प्राप्ति हो जाती है।

श्रीमद् भगवद्गीता की लोकप्रियता का कारण इसमें प्रतिपादित भक्तिमार्ग को दिया जाता है। यदि इसमें केवल ज्ञान मार्ग ही प्रतिपादित किया गया हो तो सम्भवतः इस ग्रन्थ की जैसी चाह होती चली आ रही है, वैसी होती या नहीं इसमें संदेह है। तिलकजी ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए लिखा है– गीता में जो मधुरता, प्रेम या रस भरा है, वह इसमें प्रतिपादित भक्तिमार्ग ही परिणाम है। इस प्रकार श्रीमद् भगवद्गीता में भक्ति योग का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

नारद भक्ति सूत्र में देवर्षि नारदजी ने 'भक्ति' को 'प्रेमस्वरूपा' बताया है। भगवान में अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। ज्ञान, कर्म आदि साधनों के आश्रय से रहित और सब ओर से स्पृहाशून्य होकर चित्तवृत्ति अनन्य भाव

से जब केवल भगवान में ही लग जाती है, जगत के समस्त पदार्थों से तथा परलोक की समस्त सुख—सामग्रियों से यहां तक कि मोक्ष—सुख से भी चित्त हटकर एकमात्र अपने परम प्रेमास्पद भगवान में लगा रहता है, सारी ममता और आसक्ति सब पदार्थों से सर्वथा निकलकर एकमात्र प्रियतम भगवान के प्रति हो जाती है, तब उस स्थिति को 'अनन्य प्रेम' कहते हैं।

देवर्षि नारदजी कहते है— भगवान में अनन्य प्रेम ही वास्तव में अमृत है, वह सबसे अधिक मधुर है और जिसको यह प्रेमामृत मिल जाता है, वह उसे पानकर अमर हो जाता है। लौकिक वासना ही मृत्यु है। अनन्य प्रेमी भक्त के हृदय में भगवत प्रेम की एक नित्य नवीन, पवित्र वासना के अतिरिक्त दूसरी कोई वासना रह ही नहीं जाती। इसी परम दुर्लभ वासना के कारण वह भगवान की मुनिमनहारिणी लीला का एक साधन बनकर कर्मबन्धन युक्त जन्म—मृत्यु के चक्कर से सर्वथा छूट जाता है।

इस प्रकार भक्ति की प्राप्ति होने पर मनुष्य न किसी भी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न ही वह विषयभोगों की प्राप्ति में उत्साह लेता है। देवर्षि नारदजी जिस प्रेमाभक्ति की बात कर रहे है, वह सर्वथा त्यागरूप है। इसमें धन सन्तान, कीर्ति, स्वर्ग आदि तो बात ही क्या, मोक्ष की भी कामना नहीं रह सकती। ''नारदजी इस प्रेमारूपा भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर मानते हैं।''[2]

देवर्षि नारदजी 'भक्ति' में सत्संग के महत्व को स्वीकार कर दुःसंग का निषेध करते है।[3] जिस प्रकार सत्संग से भगवत्कथा, भगवतचर्चा, सदाचार, शास्त्र, विवेक, वैराग्य, सत्—अभ्यास, सेवा, सरलता, नम्रता, क्षमा, तितिक्षा, शौच, दया, अहिंसा, सत्य, ब्रम्हचर्य, निरभिमानता और शांति आदि के प्रति प्रवृत्ति होती है और मनुष्य सदाचार परायण परमभक्त बन सकता है, इसी प्रकार इसके विपरीत दुःसंग से विषयवार्ता, लोकनिन्दा, भोगप्रीति, दुराचार, अविवेक, विषयलोलुपता, दुष्ट अभ्यास, मान, दम्भ, घमंड, क्रोध, असहिष्णुता, अपवित्रता, निर्दयता, हिंसा, असत्य, अभिमान और अशांति आदि के प्रति प्रवृत्त होकर मनुष्य पापपरायण और अत्यन्त विषयासक्त हो जाता है। अतः दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिये।[3]

भक्ति, ज्ञान, कर्म और योग की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हुये भी इसकी प्राप्ति सुलभ है। भक्ति की प्राप्ति में न विद्या की आवश्यकता है, न धन की, न श्रेष्ठ कुल प्रयोजन है और न उच्च वर्णाश्रम, न वेदाध्ययन की आवश्यकता है, न कठोर तप की आवश्यकता है केवल सरल भाव से भगवान की अपार कृपा पर विश्वास करके उनका सतत प्रेमभाव से स्मरण करने की। विनोबाजी के सम्पूर्ण जीवन की आधारशिला ही ईश्वरनिष्ठा पर रची गयी थी। उनके अन्तरंग में गुप्त सरस्वती की भांति भक्ति की गंगा छिपी हुई थी। ईश्वर के साथ उनका अनुसंधान सतत बना रहता था। उनकी यह ईश्वरनिष्ठा उनकी भक्ति के मूल में थी। उनका ईश्वर कोई मूर्तिविशेष, धर्मविशेष, तत्वविशेष में समाया हुआ नहीं था, वह तो चराचर विशेष रूप से मानवमात्र में व्याप्त था। बच्चे, स्त्री, पुरूष आदि सभी मानव उनके लिये परमेश्वर के ही रूप थे। वे कहते थे— ''हम मनुष्य मात्र में भगवान का दर्शन पाते हैं। हमें रोज भगवान का नया रूप देखने का मिलता है। भगवन्मूर्ति हमारे सामने खड़ी है और हम उनकी सेवा में लगे हैं, ऐसा साक्षात दर्शन हमें रोज होता है।''[4]

विनोबाजी की भक्ति—भावना में जाति, धर्म, पंथ आदि के लिये लेशमात्र भी स्थान नहीं था। 'भक्ति' का अर्थ वे अहंशून्यता, निष्काम सेवाभाव आदि से लगाते थे। भक्ति का अर्थ केवल जपमाला लेकर नाम—रटन करना नही

है। चित्त में निरन्तर परमेश्वर का स्मरण करना और जो भी मिले उसे परमेश्वर का प्रतिनिधि समझना ही इसका वास्तविक स्वरूप है।[5]

विनोबाजी कहते थे कि हमें प्रत्येक स्थान पर भक्ति की आवश्यकता पड़ती है। हमारी बुद्धि भी एक सीमा तक कार्य करती है। परंतु एक बिंदु ऐसा भी आता है कि बुद्धि से कार्य संभव नहीं हो पाता तब वहां भक्ति की आवश्यकता पड़ती है। भक्ति तो वास्तव में वहां उत्पन्न होती है, जब मनुष्य के सारे प्रयत्न शिथिल हो जाते हैं, उसकी पुरूषार्थशक्ति कुंठित हो जाती है, वहीं पर भक्ति आवश्यक हो जाती है। ईश्वर ने जो हमें शक्ति दी है, उसका पूरा उपयोग नम्रता और आस्तिकता के साथ करना चाहिये। अपने पास की शक्ति का पूर्ण उपयोग करने पर ही मनुष्य ईश्वरीय शक्ति की मांग का अधिकारी होता है। अपने पास का बल न लगाना अहंकार, आलस्य और अश्रद्धा है। अतः अपने अंदर ईश्वर की जो शक्ति है, वह निरहंकार भाव से लगाने पर ही अधिक शक्ति का आवाहन करना चाहिये। अतः अपना प्रयत्न करने पर ही मनुष्य ईश्वर की सहायता के लिये व्याकुल होता है। इस व्याकुलता में से ही मनुष्य के अंदर 'भक्ति' का जन्म होता है।

''विनोबाजी के मतानुसार व्यक्ति के लिये कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों की आवश्यकता बनी रहती है। वे कर्म–ज्ञान और भक्ति को पृथक–पृथक नहीं मानते थे।''[6] निष्काम कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों की समानता से जुड़ने पर ही योग बनता है। कर्म के न रहने पर, भक्ति और ज्ञान बेकार हो जाता है। भक्ति के न रहने पर कर्म शुष्क बनता है और ज्ञान भी उन्मत्त रहता है। इसलिये व्यक्ति को भक्ति से संरक्षण प्राप्त होता है। उसी प्रकार यदि व्यक्ति ज्ञान न हो तो कर्म में जड़ता और भक्ति भी गलत दिशा में जा सकती है।

इसी बात को वे एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं– रसोई के काम को यदि हम देखते हैं तो इसमें हम यह मानकर चलें कि रसोई बनाने वाले को भोजन बनाने का उत्तम ज्ञान है, फिर भी यदि उस व्यक्ति के हृदय में उस कर्म के प्रति प्रेम न हो तो पूर्वाक्त ज्ञान रहने पर भी वह इस कार्य के लिये उपयुक्त सिद्ध नहीं होता। इस रसोई काम के लिये जैसे ज्ञान आवश्यक है, वैसे ही प्रेम भी आवश्यक है। फिर इसके लिये तपस्या अर्थ कष्ट सहन किये बिना कार्य संभव नहीं हो सकता। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी कार्य की सफलता के लिये भक्ति (प्रेम), ज्ञान और कर्म तीनों की आवश्यकता पड़ती है।

किसी भी कर्म में जब भक्ति तत्व मिलता है तो वह कर्म सुलभ हो जाता है। सुलभ का अर्थ यह नहीं कि कष्ट नहीं होंगे। कष्ट होंगे परंतु कष्ट 'कष्ट' नहीं प्रतीत होंगे, बल्कि वह आनंदस्वरूप प्रतीत होंगे। जिस तरह पानी पर नाव खेना कठिन नहीं है, परन्तु यदि उसी को धरती पर से, चट्टान पर से ले जाना हो तो कष्ट साध्य होगा। ठीक उसी प्रकार हमारी जीवन–नौका के नीचे यदि भक्तिरूपी पानी होगा, वह आनंद से खेयी जा सकती है। भक्ति–तत्व हमारी जीवन नौका को पानी की तरह सुलभता प्राप्त करा देता है।[7] विनोबा की भक्ति विषयक यह मान्यता श्रीमद् भगवद्गीता में वर्णित भक्तियोग से पूर्णतः समानता रखती है।

विनोबाजी के जीवन में कर्मयोग और 'भक्तियोग' का अद्वितीय संयोग था। कर्मयोगी विनोबा और भक्त–विनोबा इनमें अंतर करना बड़ा कठिन कार्य है, फिर भी विनोबाजी आधुनिक काल के 'परम भागवत' या भक्त शिरोमणि थे। इस संसार में अलग–अलग समय में हुये भक्तों ने अपने अनुभवों का वर्णन करने हेतु जिस प्रकार की परिभाषा का प्रयोग किया था, विनोबाजी ने भी अपने अनुभवों का वर्णन करने हेतु इन्हीं परिभाषाओं का आधार लिया था। गीता–प्रवचन, विचार–पोथी, रामनाम आदि पुस्तकें विशेषतः भारतीय संतों के विषयों में

उनके द्वारा हुआ लेखन इनमें भक्तियोग के विषय में अत्यन्त महत्वपूर्ण उल्लेख किया गया है।

प्रारम्भ में विनोबाजी ने चित्तशुद्धि के लिये ज्ञानयोग और कर्मयोग का ही मुख्य आधार लिया था। इसके बाद ही उनको भक्तियोग की आवश्यकता का अनुभव हुआ था। हार्दिकता को उन्होंने भक्ति का प्राण बताया था। ईश्वर के साथ अत्यन्त आत्मीयता के सम्बन्ध से उनका अन्तरंग का तार जुड़ा हुआ था। उनके लेखन–पुस्तकों में जगह–जगह पर वह प्रकट भी होता है। वैज्ञानिक विश्लेषण और हार्दिक तड़पन, उभय अंगों से पुष्ट उनकी भक्तिमार्ग की छानबीन उनके वाङमय में प्रतिध्वनित होती है। भक्ति का सही–सही आंकलन करने की दृष्टि और साथ–साथ प्रत्यक्ष में ईश्वर के साथ जुड़ने की कुछ व्यावहारिक सूचनाएं भी यहां मिलती है। ''विनोबाजी भक्तिमार्ग को सद्‌गुण विकास का मार्ग कहते थे। वे कहते थे कि भक्ति तब होती है, जब गुण प्राप्त करेंगे। अतः मनुष्य ने गुणों का अनुशीलन अवश्य करना चाहिये।''[8]

साधक को अनुशीलन की विधि बताते हुये वे कहते है कि– एक डायरी में अपने गुण लिख रखे और प्रतिदिन सोने से पूर्व और प्रातः जागरण के बाद उसे अवश्य देंखे। जैसे– क्या मुझे क्रोध आया था? आया था तो मैंने क्षमा–गुण खो दिया। .... रोज इस तरह देखते जायेंगे, तो एक दिन ऐसा आयेगा जिस दिन साधक को अपनी कोई चूक नहीं होगी। ऐसा होते ही साधक ने निषेधात्मक परीक्षा पास कर ली, ऐसा मानना चाहिये। इसी प्रकार विधायक भी कुछ करना होगा तो साधक को देखना पड़ेगा कि क्या उसने किसी पर दया की, क्षमा की, प्रेम या परोपकार किया ? इस प्रकार विनोबाजी गुण–विकास की यह विधि भक्तियोग के साधकों को बताते थे।

भक्तियोग में वे नामस्मरण को विशेष महत्व देते थे। नाम स्मरण में प्रवेश करने की पद्धति बताते हुये वे कहते हैं– ''प्रथम रात को सोते समय, नींद आने तक नामस्मरण करते रहें। दूसरा विचार न आने दे, आये तो उसे तुरंत हटा देना चाहिये। यह अभ्यास सर्वप्रथम रात्रि में करना चाहिये। फिर स्नान करते समय करें। फिर काम करते समय, भोजन करते समय, इस प्रकार अभ्यास में वृद्धि करते रहना चाहिये। अतः एक एक क्रिया के साथ नामस्मरण का अभ्यास बढ़ाने से धीरे–धीरे नामस्मरण सधता है।''[9]

विनोबाजी गुण–संकीर्तन करने को ही भक्ति कहते थे। परमेश्वर सत्यस्वरूप, मंगलमय है और निरवैर है। यदि हम परमेश्वर की उपासना करते हैं, लेकिन परमेश्वर के गुण हममें नहीं आते हैं तो समझना चाहिए कि हमारी उपासना बेकार गयी। जब तक मनुष्य उन गुणों को प्राप्त नहीं करता, तब तक भक्ति नहीं हो सकती है। तबला, हारमोनियम आदि साधन भक्ति के लिये आवश्यक नहीं है। गुणमय भगवान की उपासना करके, जब तक हम उन गुणों का अंशमात्र भी प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक भक्ति नहीं हो सकती है। जितने अंश हम भगवान के गुणों को प्राप्त करेंगे, उतने अंश में ही हम भक्ति प्राप्त कर पाते हैं। इसलिये भक्तिमार्ग के साधक को भगवान के गुणों का अनुशीलन करना चाहिये।

भक्त सदैव गुणवर्धन करता है, सतत गुण खींचते जाना, गुणस्मरण करना, गुणभावन करना, मनुष्य में भक्ति की उन्नति के लिये सर्वोत्तम उपाय हैं।[10] सद्‌गुणन विकास की तरह विनोबाजी सत्संगति को भी 'भक्ति' के लिये आवश्यक मानते थे। आद्य शंकराचार्यजी ने भी मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व के बाद महापुरूष–संश्रय अर्थात सत्संगति को तीसरा मह्‌दभाग्य माना है। संगति, विचारों का लाभ और तदनुसार काम करने का अवसर तीनों मिलकर ही महापुरूष संश्रय होता है। विनोबाजी को, गांधीजी की संगति में ये तीनों लाभ प्राप्त हुये थे। वे सत्संगति की प्राप्ति की अभिलाषा को सत्संगति से भी श्रेष्ठ मानते थे, अर्थात सत्संगति की अभिलाषा ही सच्ची सत्संगति है।

सत्संगति हमें कुमार्ग पर चलने से बचाती है। इससे व्यक्ति के हृदय में परिवर्तन होता है। व्यक्ति में नये पाप करने की प्रवृत्ति नष्ट होती है। सत्संगति सभी व्यक्तियों में एकता लाने का कार्य करती है। इस प्रकार 'सत्संगति' भक्ति का ही पर्याय होती है।[11]

मूर्ति पूजा को भी विनोबाजी भक्ति में सहायक मानते थे। परमेश्वर व्यापक होने पर भी मूर्ति विशेष, में उसकी अभिव्यक्ति हो सकती है। जिस प्रकार विद्युत सर्वत्र है, परन्तु विशेष तरकीब से, विशेष स्थान पर वह प्रकट होती है। वैसे ही जहां हमारी मानसिक भावना रहती है, वहां परमेश्वर हमारे लिये प्रकट हो जाते हैं। मूर्तिपूजा करने से मनुष्य के चित्त की शुद्धि होती है। मूर्ति में भगवान की भावना करके मनुष्य ने अपना विकास ही किया है। विनोबाजी परमेश्वर की विग्रह पूजा को एक भ्रांत नहीं मानते थे। वे मानते थे कि साधकों को अपनी–अपनी भूमिका के अनुसार भक्ति मार्ग में लाभ प्राप्त होता है। विधिवत् पूजा शुरू करने से पूर्व मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करनी होती है। इसमें प्राण उडेलना, प्राण भर देना होता है, अर्थात मूर्ति में अपनी श्रद्धा और चौतन्य ही भर देना होता है। इस प्रकार अपना परमेश्वर, भगवान स्वयं हमें ही बनाना पड़ता है। अतः हमारी भावना का अंतिम उत्कर्ष भगवान ही है। मूर्तिपूजा में मूर्ति मुख्य नहीं, परमेश्वरों के गुणों का चिंतन और मनन ही मुख्य है। विनोबाजी के मन में मूर्तिपूजा के लिये बहुत आदर था। परंतु वे लोग जो मानव के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, प्राणियों के प्रति निष्ठुर बनते हैं, भूखों की चिंता नहीं करते हैं और पत्थर की मूर्ति को भोग चढ़ाते हैं, वे लोग भक्ति का स्वरूप नहीं जानते हैं। इस तरह की दांभिक मूर्तिपूजा का वे सर्वथा निषेध करते थे। इस प्रकार मूर्तिपूजा के लिए उनके मन में विशेष आदर था।

विनोबाजी कहते थे कि हिंदू धर्म में मूर्तिपूजा के साथ–साथ मूर्तिगौणता का विचार भी समझाया गया है। पूजा के साथ आवाहन–विसर्जन की क्रिया जोड़ दी गयी है। उत्सवों में हम मूर्ति की स्थापना करते हैं और आदर सहित हमें उनका विसर्जन भी करना पड़ता है। आवाहन–विसर्जन की यह क्रिया अत्यन्त सुंदर है। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि जिसका सर्जन हम करते हैं, उसी का विसर्जन करने की शक्ति– अर्थात अनासक्ति हमारे अंदर विकसित होनी चाहिये। इस प्रकार हिंदु धर्म में मूर्तिपूजा को विशेष स्थान है परन्तु किसी पर उसकी पूजा करने की जबरदस्ती नहीं है।

विनोबाजी को परमधाम आश्रम में खेत खोदते समय कई मूर्तियां प्राप्त हुई थी। मूर्तिपूजा के लिये उनके मन में अत्यन्त आदर का भाव था, इसलिये प्राप्त इन मूर्तियों की स्थापना उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा के साथ आश्रम में ही कर दी थी। लेकिन वे यह भी कहते थे कि कहीं से मूर्ति लाकर मंदिर बांधन में स्फूर्ति इस युग में मुझमें नहीं है। मेरे घर भगवान स्वयं आये हैं तो मैं उनका अनादर नहीं कर सकता हूं। लेकिन नयी मूर्ति लेकर मंदिर खड़ा करने की आवश्यकता भी वे नहीं मानते थे। परंतु कोई व्यक्ति विशेष वैसा करना चाहता है तो इस विचार को उनका विरोध नहीं था। मूर्ति दर्शन में उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी। मूर्ति के दर्शन से उनकी आंखे प्रेम से छलकने लगती थी, जिस प्रकार रामकृष्ण परमहंस और संत नामदेव से मूर्ति बोलती थी, उस तरह वह मुझसे भी बोलती हैं। मूर्ति के प्रति विनोबाजी का ऐसा गहरा अनुभव था।[12]

विनोबाजी जीवन में संशोधन की आवश्यकता पर अधिक बल देते थे। समाज में उत्तरोत्तर विचारों का विकास होता रहता है। 'आत्मानुभव' में भी हमें प्रगति या विकास की आवश्यकता होती है, आज तक जो आध्यात्म विद्या हम जानते हैं वह अंशमात्र ही है। यदि अध्यात्म में भी नूतन खोज करने का प्रयत्न नहीं होगा

तो यह विद्या भी कुंठित हो जायेगी। अतः आध्यात्मिक चिंतनधाराओं या पंथों में भी किसी एक या कुछ पहलुओं का विकास हो जाता है और कुछ पहलुओं का रह जाता है। अतः हमें संशोधन की आवश्यकता पड़ती है। अतः भक्त इन्द्रियों पर नियंत्रण रखकर शांतचित्त के द्वारा ही समाज के लिये योग्य बनता है। इस प्रकार स्वयं को जनसेवा के योग्य बनाकर मनुष्य दीन–पालन का कार्य स्वीकार करेगा तो वह भक्त बन जाता है। हम से क्या होने वाला है, जो करेगा भगवान करेगा आदि विचार करने वाले लोग दुर्बल वृत्ति के होते हैं। अतः भक्तियोग को दुर्बलता से नहीं वीरता से हमें स्वीकारना पड़ेगा।

परमार्थ–साधना का मुख्य आधार आत्मशक्ति ही है। इसमें बाह्य परिस्थिति की अनुकूलता या प्रतिकूलता गौण ही है। अतः भक्त को संकल्पवान और सामाजिक बनना चाहिये। जिससे भक्तों के 'भक्ति' को सामाजिक मूल्य प्राप्त होगा। स्वामी विवेकानन्द की तरह वे भी ऐसा मानते थे कि 'भक्ति मार्ग' के विकास के लिये अद्वैत और जनसेवा का समावेश भक्तिमार्ग के साधक के लिये आवश्यक हैं। जहां अद्वैत नहीं वहां सेवा करने वाले और जिनकी सेवा करते हैं वे अलग–अलग हो जाते हैं, दोनों का भेद बना रहता है।

अद्वैत में यह भेद अपने आप समाप्त हो जाता है। उसे हम स्वयं से भिन्न नहीं समझते हैं। इसमें यह भाव बना रहता है कि मानो हम अपनी ही सेवा करते हैं। इस प्रकार अद्वैत चिंतन और सेवा का यह मिश्रण उत्तम रसायन जैसे कार्य करता है। गांधीजी ने भी इसी विचार को व्यापक बनाया था। जिससे कि विचार संशोधन करके हम नूतन भक्तिमार्ग खोजने का साहस कर सकते हैं। सारांश रूप में हम यह कह सकते हैं कि विनोबाजी की मान्यता थी कि हमें अपने जीवन में भगवद्–भक्ति प्रकट करनी चाहिये। केवल स्त्रोत्र पठन आदि में नहीं बल्कि प्रत्येक कृति में 'भक्ति' प्रकट होनी चाहिये।[13]

'भक्ति' में प्रधान सहायक तत्व :

साधना करते समय 'भक्त' को भक्ति में सहायक तत्वों का ज्ञान अवश्य होना चाहिये। अतः भक्ति में सहायक तत्वों को निम्नप्रकार से समझाया गया है–

भक्ति शास्त्राणि मननीयानि तदुद्‌बोधकर्माण्यपि करणीयानि।[14]

अर्थात् भक्ति की प्राप्ति के लिये भक्तिशास्त्र का मनन करते रहना चाहिये और ऐसे कर्म भी करने चाहिये, जिनसे भक्ति की वृद्धि होती है।

'भक्ति' चाहने वालों को न कोई ग्रन्थ देखना चाहिये और न कोई कर्म करना चाहिये ऐसी बात नहीं है। उनको तक–वितर्क का त्याग करके बार–बार ऐसे ग्रन्थों का अवश्य स्वाध्याय करना चाहिये जिनमें भगवान की भक्ति का निरूपण हो, भक्ति का महात्म्य हो, भक्ति के साधन बतलाये गये हों, भगवान के प्यारे भक्तों के पुण्य–चरित्रों की कथाएं हो और भक्ति के वश में होकर रहने वाले भगवान के प्रभाव, रहस्य और गुणों का वर्णन किया गया हो। साथ ही कर्म भी ऐसे करने चाहिये, जिनसे भक्ति की जागृति और वृद्धि होती हो। 'भक्तियोग' के साधक को निषिद्ध (पाप) कर्मों का बिलकुल ही त्याग कर देना चाहिये जो विषयों की आसक्ति वश पाप कर्मों को नहीं छोड़ना चाहता और भक्त भी कहलाना चाहता है वह या तो स्वयं भ्रम में है या जान–बूझकर भ्रम फैलाना चाहता है।

'भक्ति' की प्राप्ति में सहायक कर्मों में प्रधान निम्न है –

1. सदाचार का पालन

2. सत्संग और भगवद् गुणानुवाद का श्रवण, चिन्तन और कीर्तन करना।
3. भगवान के नाम का जाप, स्मरण और कीर्तन करना।
4. भगवत्–पूजन, स्तुति प्रार्थना और नमस्कार करना।
5. भक्तों की सेवा और श्रद्धापूर्वक उनकी आज्ञा का पालन करना।
6. तीर्थ सेवन करना।
7. दीन प्राणियों पर दया और यथासाध्य तन–मन–धन से उनकी सेवा करना।
8. सब कर्मों को भगवान के प्रति अर्पण करना।
9. सब प्राणियों में भगवान को देखने का अभ्यास करना।

सुखदुःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्द्धमपि व्यर्थ न नेयम्।[15]

अर्थात् सुख दुःख, इच्छा, लाभ आदि का (पूर्ण) त्याग हो जाय ऐसे काल की प्रतीक्षा देखते हुए आधा क्षण भी (भजन बिना) व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भक्ति की सिद्धि होने पर सुख–दुःख, लाभ–हानि आदि सारे द्वन्द स्वयमेव मिट जाते हैं और फिर किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रहती है। परन्तु ऐसे शुभ समय की केवल प्रतीक्षा ही देखी जाये और साधन कुछ भी न किया जाय तो वर्तमान हीन दशा का विनाश होकर अचानक वैसी शुभ दशा अपने–आप प्राप्त होगी ही कैसे ? फिर मनुष्य के जीवन का एक क्षण का भी पता नहीं है, न मालूम किस पल में प्रलय हो जाय, कब मृत्यु आ जाय, इसलिये अमुक स्थिति हो जाने पर भगवान का भजन करूंगा, ऐसी धारणा को छोड़ देना चाहिये और अभी जो जिस अवस्था में है, उसे उसी अवस्था में भगवान की कृपा का आश्रय करके साधना आरम्भ कर देनी चाहिये। इसमें आधे क्षण के लिये भी विलम्ब नहीं करना चाहिये।

अहिंसा सत्य शौचदयास्ति क्यादिचारि त्र्याणि परिपालनीयानि।[16]

अर्थात् भक्ति के साधक को अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि आचरणीय सदाचारों का भलीभांति पालन करना चाहिये।

अहिंसा : शरीर, मन और वाणी से किसी भी जीव को किसी प्रकार से वर्तमान या भविष्य में दुःख नहीं पहुंचाना, वरन सदा सबको सुखी बनाने की चेष्टा में लगे रहना।

सत्य : जैसा देखा, सुना या समझा हो, वचन, लेखन या संकेत से ठीक वैसा ही दूसरे को समझाने की नीयत रखना। वाणी से ऐसे ही शब्दों का उच्चारण करना जो सत्य हों और साथ ही मधुर हों और हितकारी भी हों।

शौच : बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार के शौच की आवश्यकता होती है। बाहरी शौच में शरीर की स्वच्छता, भोजन की शुद्धता तथा शास्त्रविहित आचरणों से अन्य सभी बाह्य कर्मों को शुद्ध रखना आता है। भीतरी (आंतरिक) शौच में दम्भ, वैर, अभिमान, आसक्ति, ईर्ष्या, द्वेष, शोक, पापचिन्तन, व्यर्थ विषय चिन्तन आदि दोषों को मन में यथासाध्य न आने देकर सरलता, प्रेम, विनय, वैराग्य, अद्वेष, प्रसन्नता, सत्चिन्तन और भगवान के चिन्तन द्वारा मन को पवित्र रखना।

दया : दुःखी मनुष्य घर का या दूसरा हो, मित्र हो या शत्रु हो, उसको दुःख की दशा में देखकर बिना किसी भेद–भाव के मन का व्याकुल हो जाना और यथासाध्य कष्ट सहकर तथा त्याग करके भी उसके दुःख को दूर

करने की चेष्टा करना। यह भाव सभी जीवों के प्रति होना चाहिये और सभी काल में होना चाहिये। जिस क्रिया से जीवों का अहित होता हो और उन्हें दुःख पहुंचता हो, उन क्रियाओं को त्याग देना चाहिये। इसी प्रकार देश या समाज में जिन प्रथाओं और कृत्यों से जीवों का अहित होता हो, उन्हें बंद कराने की चेष्टा करनी चाहिये।

आस्तिकता : ईश्वर और शास्त्रों पर प्रत्यक्ष की तरह पूर्ण विश्वास होना चाहिये। भगवान है, सर्वव्यापी है, सर्वेश्वर है, सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ, परमदयालु, भक्तवत्सल, दीनबन्धु है और सदा सर्वत्र विराजमान है। इन बातों पर विश्वास करते ही सारे पाप–ताप अपने–आप नष्ट हो जाते हैं। भगवान में विश्वास करने की आवश्यकता सबसे पहले और अधिक है। भगवान के अस्तित्व और उनके प्रभाव तथा गुणों पर विश्वास हो जाय तो मन स्वतः ही भगवान की ओर लग जाता है।

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भग वानेव भजनीयः।[17]

अर्थात् सब समय सर्वभाव से निश्चिन्त होकर (केवल) भगवान का ही भजन करना चाहिये। वास्तव में जो पुरुष भगवान के दिव्य, गुण, रहस्य और प्रभाव को यथार्थरूप से जान लेता है या संतों द्वारा सुनकर उस पर विश्वास कर लेता है, वह भगवान को छोड़कर किसी भी काल में मन–वाणी–शरीर से दूसरा कार्य कर ही नहीं सकता है।

1. विनोबाजी के मतानुसार भक्ति के प्रारम्भ में मन भगवान को अर्पण करना होता है और सभी प्रकार के कामनाओं से मुक्ति प्राप्त करना ही इसकी कसौटी है अर्थात चित्त जब रागद्वेष से मुक्त, शुद्ध बनेगा तब समता में जाता है। उसी का नाम वे भक्ति रखते हैं।
2. 'भक्ति' के विकास हेतु सेवा अत्यन्त आवश्यक है। सेवा से व्यक्ति के अहंकार का नाश होता है, तभी साधक के आंतरिक भक्ति का स्वरूप प्रकट होता है। इस प्रकार विनोबाजी सेवा को भक्ति में सहायक मानते थे।
3. विनोबाजी भक्ति के लिये 'त्याग' को आवश्यक मानते थे। बिना त्यागवृत्ति के 'भक्ति' विकसित नहीं हो सकती है। त्यागवृत्ति के अभाव में भक्त में आसक्ति की भावना होगी जिसके फलस्वरूप 'भक्ति, में बाधा उत्पन्न होगी।
4. 'भक्ति' के लिये मन में तीव्र इच्छा, छटपटाहट होनी चाहिए। यह ठीक उसी प्रकार आवश्यक है, जिस प्रकार से योग के अभ्यास में प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा इत्यादि अंगों का अभ्यास होता है। ज्ञानयोग के अभ्यास में श्रवण, मनन, निदिध्यासन इत्यादि बातों का पालन करना पड़ता है। अतः भक्त के मन में ईश्वर प्राप्ति की तीव्र इच्छा का होना नितान्त आवश्यक है।
5. विनोबाजी के मतानुसार गांधीजी द्वारा प्रतिपादित एकादश व्रत भी व्यक्ति में भक्ति–तत्व के विकास में सहायक होते हैं–

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रम्हचर्य असंग्रह।
शरीर–श्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन।।
सर्वधर्म–समानत्व स्वदेशी स्पर्श–भावना।
विनम्र व्रत–निष्ठा से ये एकादश सेव्य हैं।।[18]

अर्थात्, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, असंग्रह, शरीर–श्रम, अस्वाद, भयवर्जन, सर्वधर्म–समानत्व,

स्वदेशी और स्पर्श भावना यह गांधीजी के एकादश व्रत हैं। इनका पालन प्रत्येक व्यक्ति को श्रद्धा से करना चाहिये।

6. भगवान का निरन्तर नामस्मरण करना भी 'भक्ति' के विकास में सहायक होता है।
7. 'भक्ति' की प्राप्ति के लिये भक्त को सद्‌गुण–विकास की प्रक्रिया को अपनाना चाहिये। अर्थात अच्छे गुण ग्रहण करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिये।
8. 'भक्त' के अन्दर ईश्वर अर्थात अपने ईष्ट के प्रति पूर्णतः समर्पण करने की तीव्र भावना होनी चाहिये। इस प्रकार समर्पण की भावना से की गयी भक्ति श्रेष्ठ होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त उल्लेख किये गये तत्वों को विनोबाजी भक्ति में प्रधान सहायक तत्वों के रूप में स्वीकार करते थे।

'भक्ति' में बाधक तत्व :

भक्ति–योग की साधना करते समय भक्त–साधक के मन में अनेकों शंका, विवाद रूपी विघ्न उपस्थित होते हैं, भक्ति–योग की साधना में यह बाधक–तत्व का कार्य करते हैं। अतः 'भक्ति' में बाधक तत्वों का निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है–

वादो नावलम्ब्यः[19]

अर्थात भक्त को वाद–विवाद नहीं करना चाहिये। भक्ति को साधने के लिये यह सूत्र बड़े ही महत्व का है। भक्त को तर्क–वितर्क में पड़ने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। भक्त को यह समझना चाहिये कि मेरा तो प्रत्येक क्षण भगवान के भजन के लिये समर्पित हो चुका है। अतः अपने प्रियतम भगवान के चिन्तन को छोड़कर दूसरी किसी वस्तु के चिन्तन की उसके मन में गुंजाइश ही नहीं होनी चाहिये और यह भी निश्चित है कि तर्क से तत्व की उपलब्धि भी नहीं होती है। इसलिये ब्रम्हसूत्र में भी कहा गया है कि–''तर्क की प्रतिष्ठा नहीं है।''[20] कठोपनिषद में भी कहा गया है– ''बुद्धि के तर्क से उस तत्व की प्राप्ति नहीं होती।''[21]

श्रद्धालु शिष्य जिज्ञासाभाव से गुरू के सामने तर्क उपस्थित करता है और गुरू उसकी शंका निवारण कर और भी प्रबल तर्क से उसे सिद्धान्त समझते हैं। ऐसा वाद दूषित नहीं है। परन्तु जो वाद आग्रहपूर्वक होता है वह तो बुरा ही फल उत्पन्न करता है और वाद में अपने मत का आग्रह हो ही जाता है, फिर सिद्धान्त का लक्ष्य छूट जाता है और व्यक्तिगत दोष निरीक्षण दोषारोपण और परस्पर गाली–गलौज होने लगता है। इससे साधक का विवेक नष्ट होकर उसमें क्रोध उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार वाद–विवाद से अहंकार, द्वेष, क्रोध, हिंसा और वैर की भावना व्यक्ति के मन में बढ़ती है। अतः वाद–विवाद भक्ति में बाधक तत्व का कार्य करता है।

विनोबाजी भी सदैव वाद–विवाद से बचते थे। उनका भी मानना था कि वाद–विवाद से हमारी ऊर्जा नष्ट होकर इससे भक्ति में बाधा उत्पन्न होती है। इस प्रकार वे भक्त साधक को वाद–विवाद रूपी विघ्न से बचने की सलाह देते हैं। वाद–विवाद के स्थान पर वे सकारात्मक–चिंतन को अधिक महत्व देते थे। अतएव विवाद में समय नष्ट न कर भक्त को सर्व प्रकार से अपने भगवान पर निर्भर रहते हुए निरन्तर निष्कपट और निष्काम भाव से परम श्रद्धापूर्वक भगवान का भजन करना चाहिए। इस प्रकार भगवत्प्रेम की प्राप्ति तर्क से नहीं, भक्ति से ही होती है। **अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्**[22] –अर्थात् अभिमान, दम्भ आदि का त्याग करना चाहिए। यहां तक कि निरभिमानता के अभिमान को भी छोड़ देना चाहिये। इसी प्रकार 'दम्भ' का भी त्याग करना चाहिये। अपने में जो

गुण न हो, धनमान के लोभ से या स्वभावदोष से उन गुणों को दिखाने की चेष्टा करना, बाहर से धर्मात्मा, भक्त, त्यागी बनने का ढोंग करना दम्भ कहलाता है। अतः दम्भ एवं अभिमान करने से साधक–भक्त की विद्या, बुद्धि और क्रिया कुशलता समाप्त हो जाती है। विनोबाजी ने भी भक्ति की परिभाषा अहंशून्यता कहकर की है। भक्ति में अहंकार को वे सबसे बड़ा बाधक तत्व मानते थे। **दुःसंग सर्वथैव त्याज्यः**[23]

अर्थात् दुःसंग का सर्वथा ही त्याग करना चाहिये। जिस प्रकार सत्संग से भगवत् प्रीति, सदाचार, शास्त्र, विवेक, सत्–अभ्यास, सेवा, सरलता, नम्रता, क्षमा, तितिक्षा, शौच, दया, अहिंसा, सत्य, ब्रम्हचर्य, निरभिमानता और शान्ति आदि के प्रति प्रवृत्ति होती है और मनुष्य सदाचार परायण परमभक्त बन सकता है, इसी प्रकार इसके विपरीत दुःसंग से विषय वार्ता, लोकनिन्दा, भोगप्रीति, दुराचार, अविवेक, विषयलोलुपता, दुष्ट अभ्यास, मान, दम्भ, घमंड, क्रोध, असहिष्णुता, अपवित्रता, निर्दयता, हिंसा, असत्य, इन्द्रियलम्पटता, अभिमान और अशान्ति आदि के प्रति प्रवृत्त होकर मनुष्य पापपरायण और अत्यन्त विषयासक्त हो जाता है। दुःसंग से आसुरी सम्पत्ति के सभी दुर्गुण और दुराचारों का विकास और विस्तार होता है। अतएव भक्ति–योग के साधकों को दुःसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिये।

''विनोबाजी कहते हैं कि आसक्ति भक्ति–योग की साधना में बाधक है। वैसे तो आसक्ति सभी प्रकार की साधनाओं में बंधन का कारण होती है। अतः भक्ति के प्रारम्भ में ही अपनी सभी कामनाओं को विसर्जित करना होता है। इस प्रकार कामना–मुक्ति ही भक्ति की कसौटी है।''[24]

'भक्ति' की प्राप्ति के लिये साधक को लोकव्यवहार का त्याग नहीं करना चाहिए। जब तक भक्ति में सिद्धि न मिले तब तक लोकव्यवहार का त्याग नहीं करना चाहिये, किन्तु फल त्यागकर (निष्कामभाव) से उस भक्ति का साधन करना चाहिए। निष्काम कर्म करने वाला व्यक्ति स्वयमेव ही लोकहानि की चिन्ता से छूट जाता है और उसके वे भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभाव से किये गये कर्म भक्ति की प्राप्ति में साधक बन जाते है।

निष्कर्ष :

विनोबाजी का ईश्वर कोई मूर्ति विशेष, धर्म विशेष, तत्व विशेष में समाया हुआ नहीं था, वह तो चराचर विशेष रूप से मानव मात्र में व्याप्त था। बच्चे, स्त्री, पुरुष आदि सभी मानव उनके लिये परमेश्वर के ही रूप थे। विनोबाजी की भक्ति भावना में जाति, धर्म, पंथ आदि के लिये लेशमात्र भी स्थान नहीं था। 'भक्ति' का अर्थ वे अहंशून्यता, निष्काम सेवा भाव आदि से लगाते थे। भक्ति का अर्थ केवल जपमाला लेकर नाम रटन करना नहीं है। चित्त में निरन्तर परमेश्वर का स्मरण करना और जो भी मिले उसे परमेश्वर का प्रतिनिधि समझना ही इसका वास्तविक स्वरूप है।

संदर्भ ग्न्थ :

1. श्रीमद् भगवद्गीता (सं. 2061) 9/26, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. 124.
2. पोद्दार हनुमान प्रसाद (2010), नारद–भक्तिसूत्र–2, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. सं. 21
3. वही–43, पृ. सं. 39
4. विनोबा (2011), भक्ति–दर्शन, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, पृ. सं. 4
5. टण्डन विश्वनाथ (1974) विनोबा–विचार संकलन, गांधी शांती प्रतिष्ठान, राजघाट कालोनी, नई दिल्ली,

पृ. सं. 17
6. वही, पृ. सं. 16
7. विनोबा (2011), भक्ति–दर्शन, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, पृ. सं. 77–78
8. वही, पृ. सं. 5
9. वही, पृ. सं. 5–6
10. वही, पृ. सं. 25
11. वही, पृ. सं. 33–34
12. वही, पृ. सं. 38, 39, 40
13. वही, पृ. सं. 48, 49, 50
14. पोद्दार हनुमान प्रसाद (2010), नारद–भक्तिसूत्र–76, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. सं. 55
15. वही–77, पृ. सं. 56
16. वही–78, पृ. सं. 60
17. वही–79, पृ. सं. 62
18. कालिन्दी (2005), अभंग–जीवन–व्रत, रणजित देसाई, परमधाम प्रकाशन (ग्राम सेवा मण्डल) पवनार वर्धा, पृ. सं. 12
19. पोद्दार हनुमान प्रसाद (2010), नारद–भक्तिसूत्र–74, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. सं. 80
20. गोयन्दका जयदयाल (2009), नवधा भक्ति, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं. 56
21. वही, पृ. सं. 68
22. पोद्दार हनुमान प्रसाद (2010), नारद–भक्तिसूत्र–64, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. सं. 70
23. वही–43, पृ. सं. 52
24. विनोबा (2011), भक्ति–दर्शन, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, पृ. सं. 247

Email : sandeepganpatrao@gmail.com, Mob : 9325580874
Email : yogwithbhushan@gmail.com, Mob : 9868347615

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 154-159

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजनीति का मौसम वैज्ञानिक : रामविलास पासवान

वीरू पासवान
शोध अध्येता, इतिहास विभाग,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

सारांश :

रामविलास पासवान एक प्रमुख भारतीय राजनीतिज्ञ थे जो दलित राजनीति के एक दिग्गज थे और लोक जनशक्ति पार्टी (स्श्रच) के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने 50 से अधिक वर्षों के राजनीतिक जीवन में 1969 ई. से कई बार चुनाव जीते और केंद्र में कई सरकारों में मंत्री रहे, जिसमें अटल बिहारी वाजपेयी, मनमोहन सिंह और नरेंद्र मोदी की सरकारें शामिल थीं। उन्होंने जनता पार्टी के टिकट पर 1977 ई. में हाजीपुर लोकसभा से चुनाव जीतकर उन्होंने सबसे अधिक मतों के अंतर से जीतने का विश्व रिकॉर्ड बनाया था। 1981 ई. में उन्होंने दलित सेना नामक एक संगठन की स्थापना की। 2000 ई. में, उन्होंने लोक जनशक्ति पार्टी (LJP) का गठन किया और इसके अध्यक्ष बने। उन्होंने 1996 ई. से लेकर 2020 ई. तक, लगभग सभी केंद्र सरकारों में मंत्री पद संभाला, जिनमें रेल, उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण और रसायन व उर्वरक मंत्रालय शामिल हैं। रामविलास पासवान को एक ऐसे नेता के रूप में जाना जाता था जिन्होंने कई सरकारों में "किंगमेकर" की भूमिका निभाई। उन्हें एक ऐसे नेता के रूप में याद किया जाता है जो दलित राजनीति में एक मजबूत आवाज थे और उन्होंने बिहार और राष्ट्रीय राजनीति पर एक अमिट छाप छोड़ी। अब उनके पुत्र चिराग पासवान लोक जनशक्ति पार्टी (रामविलास) का नेतृत्व कर रहे हैं।

मुख्य शब्द : दलित राजनीति, जनता पार्टी, लोक जनशक्ति पार्टी, दलित सेना, किंगमेकर।

शोध आलेख :

प्रस्तावना :

रामविलास पासवान का जन्म 5 जुलाई 1946 ई. को बिहार के खगड़िया जिले के शहरबन्नी गॉव में एक दलित परिवार में जन्म हुआ। इनके पिता का नाम जामुन पासवान और माता का नाम सिया देवी था। रामविलास पासवान अपने तीन भाइयों में सबसे बड़े थे। उनके अन्य भाइयों के नाम पशुपति पारस और रामचंद्र पासवान हैं। रामविलास पासवान की एक बहन निशा पासवान हैं, जिनके पति अरुण भारती भी लोक जनशक्ति पार्टी (रामविलास) का हिस्सा है। चिराग पासवान की सौतेली बहन आशा और उषा पासवान हैं। रामविलास पासवान की पहली पत्नी राजकुमारी देवी और दूसरी पत्नी रीना पासवान हैं। रामविलास पासवान के पुत्र चिराग पासवान राजनीति में सक्रिय हैं और हाजीपुर से सांसद हैं। रामविलास पासवान की पहली पत्नी से दो बेटियां थीं, उषा

और आशा। 1983 ई. में, उन्होंने एयर होस्टेस रीना शर्मा से शादी की। उनके एक बेटा और एक बेटी थी। उनके बेटे चिराग पासवान एक अभिनेता से राजनेता बने हैं। चिराग पासवान का जन्म 31 अक्टूबर 1982 ई. को हुआ था। एक भारतीय राजनीतिज्ञ तथा लोक जनशक्ति पार्टी रामविलास के राजनेता हैं। वे भारत के बिहार राज्य के हाजीपुर लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र से सांसद और मोदी सरकार में कैबिनेट मंत्री हैं। रामविलास पासवान की इन्हीं से एक बेटी और चिराग पासवान की बहन निशा पासवान है। रामविलास पासवान से छोटे भाई पशुपति पारस जो हाजीपुर से सांसद रहे। रामविलास पासवान के सबसे छोटे भाई रामचंद्र पासवान जो समस्तीपुर से सांसद रहे। उनका निधन 21 जुलाई 2019 ई. को हुआ था। रामविलास पासवान राजनीति में अपना करियर शुरू करने से पहले बिहार पुलिस में डीएसपी के रूप में कार्य किया।

रामविलास पासवान एक प्रमुख समाजवादी नेता थे जिन्होंने 1969 ई. में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के विधायक के रूप में अपना राजनीतिक सफर शुरू किया। आपातकाल के विरोध में उन्होंने संघर्ष किया और जयप्रकाश नारायण (जेपी) आंदोलन में भाग लिया, जिसके कारण उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा। कोसी कॉलेज और पटना विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त की। 1969 ई. में बिहार पुलिस में डीएसपी के रूप में चयनित हुए। 1969 ई. में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी से विधायक बने। 1974 ई. में लोकदल के महासचिव बने। 1977 ई. में पहली बार सांसद बने, जहां से उन्होंने संसद में अपनी पहचान बनाई। "मौसम वैज्ञानिक" के रूप में प्रसिद्ध थे और उन्होंने कई प्रधानमंत्रियों के साथ काम किये। अपने जीवनकाल में नौ बार लोकसभा और दो बार राज्यसभा के सांसद रहे। 2005 ई. के बिहार चुनावों में, उन्होंने मुस्लिम मुख्यमंत्री की मांग को लेकर एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया, जिसने बिहार की राजनीति को प्रभावित किया। इस निर्णय के कारण उनकी पार्टी में विभाजन हुआ, लेकिन अंततः उनकी पार्टी और फिर से एनडीए की सरकार बनी। इस निर्णय को लालू यादव के लिए एक बड़ा झटका माना जाता है और इसी के बाद नीतीश कुमार मुख्यमंत्री बने जो आज तक बिहार की राजनीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

रामविलास पासवान को शिक्षा के क्षेत्र में पिता का योगदान :

जामुन पासवान अपने बेटे रामविलास पासवान की चल रही पढ़ाई से काफी खुश थे। पर अभी उनका सपना अधूरा था। रामविलास पासवान को अभी आगे भी पढ़ाना था। वे उन्हें कम से कम बीए कराना चाहते थे इसलिए उन्होंने पासवान को मिडिल स्कूल के बाद आगे की पढ़ाई के लिए खगड़िया भेजने का फैसला किया। पासवान की मां और दादी मां जामुन पासवान के इस फैसले से खुश नहीं थी। पर जामुन पासवान के सामने इस मामले में उनकी पहले भी नहीं चली थी। न केवल उनके घर से बल्कि पूरे गांव से कोई बच्चा पहली बार बाहर शहर पढ़ने जा रहा था। एक पिता होने के नाते बाहर भेजे जाने की घबराहट जामुन पासवान के भीतर भी थी, पर वे इसे सामने दिखाते नहीं थे। और इस समय तो सवाल बेटे के भविष्य का था।

शहरबन्नी से आठवीं कक्षा में एडमिशन लेने रामविलास पासवान 12 वर्ष की उम्र में जब खगड़िया पहुंचे, तब तक इन 12 साल के अंतराल में राष्ट्रीय स्तर पर कई ऐतिहासिक परिवर्तन हो चुके थे। 1956–57 ई. का समय था, देश आजाद था। 26 जनवरी 1950 ई. को संविधान लागू होने के बाद नई संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली के तहत पहला आम चुनाव संपन्न हो चुका था। दूसरा आम चुनाव 1957 ई. में हुआ। पंचवर्षीय योजना और 1956 ई. की नई औद्योगिक नीति के अनुसार भारत को आर्थिक तौर पर मजबूत बनाने की कोशिशें शुरू

हो गई थीं। 1957–58 ई. तक दोनों पंचवर्षीय योजनाओं के जरिए सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत बरौनी रिफाइनरी, बोकारो स्टील प्लांट, कोसी बॉध–दामोदर वैली कारपोरेशन जैसी बिहार की योजनाओं को मंजूरी मिल चुकी थी। पर आजादी के इन दस सालों बाद भी विकास के मामले में खगड़िया और उत्तरी बिहार की स्थिति जस की तस थी। यहां कोई परिवर्तन की हवा नहीं दिखाई दे रही थी। जिस समय की बात हो रही है उस समय खगड़िया मुंगेर जिले का सबडिवीजन था। आजादी के बाद भी मुंगेर का कई बार विभाजन हुआ। कुल पॉच जिले इसमें से निकले हैं : बेगुसराय, खगड़िया, जमुई, लखीसराय और शेखपुरा। बेगुसराय सबसे पहले 1976 ई. में जिला बना। फिर कई वर्षों तक चले आंदोलन के बाद खगड़िया को 1988 ई. में नए जिला बनाने का एलान किया गया।

रामविलास पासवान जब खगड़िया पढ़ने आए तो उनके पास कपड़ों के केवल दो सेट थे। एक जो वे पहन कर आए थे दूसरा झोला में था। बाबूजी उनके साथ आए थे। उन्होंने प्रिंस ऑफ वेल्स स्कूल में पासवान को आठवीं कक्षा में एडमिशन दिलवाया। नाम भले कॉन्वेंट स्कूल जैसा हो, पर यह स्कूल नगरपालिका का सरकारी स्कूल था। दाखिले के बाद, पिता उन्हें कल्याण छात्रावास में छोड़कर गॉव वापस चले गए। कल्याण छात्रावास बिहार में कई जगह प्रदेश सरकार द्वारा केवल दलित छात्रों के रहने के लिए बनाए गए थे। इसके लिए कोई पैसा नहीं देना होता था।

कल्याण छात्रावास में भुजंगी पासवान उनके सीनियरों में थे। भुजंगी उस समय दसवीं में थे और छात्रावास के प्रीफेक्ट होने के साथ मेस के भी इंचार्ज भी थे। उनसे पासवान को काफी मदद मिलती थी। शिक्षा और परिवार से मिले संस्कार की वजह से रामविलास पासवान में सामाजिकता और व्यवहार कुशलता बचपन से ही थी। इन गुणों के कारण स्कूल और कल्याण छात्रावास में उनके दूसरे छात्रों से संबंध ठीक थे। छात्रावास के बाहर भी उनके परिचय का दायरा बढ़ता गया। इसी क्रम में खगड़िया में छात्रावास की थोड़ी दूरी पर रहने वाले कार्तिक बाबू के परिवार से उनके संबंध बने। यह एक संपन्न परिवार था। कार्तिक बाबू के बेटे रामप्रकाश बाबू के दो बेटे और पॉच बेटियां थीं। रामविलास पासवान जब हायर सेकेण्डरी में थे तो रामप्रकाश बाबू ने एक दिन अपनी बेटी को घर पर पढ़ाने के लिए उनके सामने प्रस्ताव रखा। थोड़ी आनाकानी के बाद पासवान ने इस पेशकश को स्वीकार कर लिया। इस ट्यूशन के बदले उन्हें दस रुपए प्रति महीने मिलते थे। दस रुपए उस जमाने में कम नहीं थे।

छात्रावास प्रवास के दौरान पासवान ने अपने छोटे भाई पशुपति कुमार पारस का शहरबन्नी से लाकर खगड़िया में स्कूल में एडमिशन करवाया। हायर सेकेण्डरी पास कर 1961–62 ई. में जब पासवान ने कोसी कॉलेज में बीए में एडमिशन लिया था उसी दौरान मिडिल पासकर पारस खगड़िया आए थे। और वे भी उसी कल्याण छात्रावास में बड़े भाई के साथ रहने लगे। पासवान पारस का काफी ध्यान रखते थे, खाने–पीने से लेकर उनके रहन–सहन तक का। उन्हें यह भी अहसास था कि पारस छोटे हैं, उन्हें घर की याद न आए।

प्रिंस ऑफ वेल्स में जब वे 9वीं में थे तो एनसीसी में चुन लिए गए थे। कोसी कॉलेज गए तो वहां भी सीनियर एनसीसी में उनका चयन हो गया। कोसी कॉलेज से जब वे पटना पोस्ट ग्रेजुएशन के लिए गए तब तक उनका आत्मविश्वास काफी बढ़ गया था। पोस्ट ग्रेजुएशन पूरा कर पासवान रोजगार की तलाश में जुट गए। वैसे भी छात्र जीवन में की गई नेतागिरी, मुद्दों पर की गई लड़ाई को उन्होंने राजनीतिक करियर के रूप में नहीं

देखा था। आदर्श और सामाजिक चुनौती के खिलाफ लड़ने का जज्बा दिल में कहीं आया पर दिमाग ने कुछ और ही कहा। इसलिए पढ़ाई खत्म होते ही उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती पैसे कमाने की थी। वे यह भूले नहीं थे कि बाबूजी ने किस तरह मेहनत और पैसों का प्रबंध कर उन्हें पोस्ट–ग्रेजुएशन के स्तर तक शिक्षित किया है। पढ़ने के बाद उनकी जिम्मेदारी थी कि घर के आर्थिक हालात को मजबूत करने के साथ अपने भाइयों की शिक्षा पर ध्यान दें। कुछ दिनों की खोजबीन के बाद पटना में ही उन्होंने एक प्राइवेट फाइनेंस कंपनी में नौकरी मिल गई। साढ़े सात सौ महीने वेतन के आधार पर नियुक्ति पत्र पासवान को दे दिया गया। चूंकि फाइनेंस कंपनी थी, इसलिए साढ़े सात हजार रुपए सिक्योरिटी का यह पैसा उन्होंने कुछ घर से, कुछ मित्रों से और कुछ रिश्तेदारों से मांग कर जुटाया। लेकिन इस नौकरी में ज्यादा दिन वे वहां टिक नहीं पाए। चार महीने भी नहीं बीते थे कि इस फाइनेंस कंपनी को लेकर पासवान के मन में संदेह होने उठने शुरू हो गए। जिस तरह कंपनी को लेकर थोक में शिकायतें आने लगी थी, पासवान के समझ में आने लगा यह फ्रॉड कंपनी है। उन्होंने कुछ दिन बाद वहां से इस्तीफा दिया। हाथ में दूसरी नौकरी थी नहीं, इसलिए फिर सड़क पर आ गए।

पर इस अनुभव के बाद उन्हें लगा कि अगर नौकरी करनी है तो सरकारी होनी चाहिए। फिर उन्होंने सरकारी नौकरी के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी शुरू कर दी। पहले दरोगा की परीक्षा में बैठे। लिखित परीक्षा तो पास कर ली, पर उन्हें इंटरव्यू में खारिज कर दिया गया, हालांकि इंटरव्यू अच्छा हुआ था। मन अवसाद से भर गया। ऐसा लगा किनारे लग कर फिर नदी के बीच पहुंच गए, पर हिम्मत नहीं हारी। इसके कुछ ही दिन बाद बिहार लोक सेवा आयोग की तरफ से पुलिस उप अधीक्षक (डीएसपी) की आकस्मिक रिक्तियों का विज्ञापन आया। कई रिक्तियां थीं। पासवान ने फॉर्म भर दिया और शीघ्र ही लिखित परीक्षा भी पास कर ली। इस बार इंटरव्यू में भी चयन हो गया। कहां दरोगा नहीं बन पाने से दुखी थे, पर भाग्य ने तो सीधे डीएसपी पद पर बिठा दिया था, जब शहरबन्नी यह खबर पहुंची तो पूरे परिवार और समूचे गांव के लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई। बाबूजी की खुशी का तो ठिकाना ही नहीं था क्योंकि जो सपना उन्होंने देखा था वह पूरा हो गया था। जामूनदास के परिवार में ही नहीं बल्कि शहरबन्नी और आसपास के इलाके में मिडिल परीक्षा बचपन से ही पहली बार का जो खंभा पासवान ने गाड़ा था, उस पर लगाए गए कई पताकाओं में एक पताका और जुड़ गई थी।

राममनोहर लोहिया के नेतृत्व में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (संसोपा) ने बिहार की राजनीति में कर्पूरी ठाकुर, रामानंद तिवारी, महामाया प्रसाद सिंह जैसे कई युवा और जुझारू नेता बिहार में तैयार किए थे। समाजवादी आन्दोलनों ने संसोपा की जड़ों को मजबूत किया। जैसे 1965 ई० में तत्कालीन मुख्यमंत्री के बी सहाय जब सार्वजनिक वितरण प्रणाली में हुए भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरे थे, उस दौरान लोहिया ने इसे मुद्दा बनाकर पटना में प्रदर्शन किया था। प्रदर्शनकारियों पर पुलिस ने लाठीचार्ज किया। लोहिया और संसोपा के कई लोग गिरफ्तार हुए। बाद में इस आंदोलन का कर्पूरी ठाकुर और रामानंद तिवारी ने किया। इस प्रदर्शन, आंदोलनों के लिए, 1967 ई० तक प्रदेश में गैर कांग्रेसवाद का माहौल तैयार हो चुका था। संसोपा की जड़ें जम गई थी और पार्टी युवाओं खासकर पिछड़े वर्ग और दलित वर्ग के युवाओं को आकर्षित करने में सफल हो रही थी।

हिंदी भाषी राज्यों खासकर बिहार में इस राजनीतिक मंथन का सामाजिक समीकरण पर ज्यादा असर पड़ा। 1967 ई० तक राजनीति और सत्ता पर अभी तक ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार और कायस्थ इन चारों अगड़ी जातियों का वर्चस्व रहा था। जबकि प्रदेश की जनसंख्या में इन चारों का प्रतिशत हिस्सा उस समय 13 से 14

प्रतिशत था। समाजवादी आंदोलन ने इस वर्चस्व को चुनौती देने शुरू कर दी। मध्य की जातियों और दलितों को उनकी राजनीतिक आंकाक्षाओं का विकल्प मिल रहा था। इस नए सामाजिक गोलबंदी के साथ–साथ कांग्रेस के खिलाफ समाजवादियों ने छोटी–छोटी पार्टियों के साथ गठबंधन कर कांग्रेस के लिए चुनौती खड़ी करनी शुरू कर दी। 1967 ई० के विधान सभा चुनाव में संसोपा, प्रसोपा, जनसंघ, जनक्रांति दल और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी का संयुक्त गठबंधन बना। जनक्रांति दल कांग्रेस से अलग होकर एक नई पार्टी बनी थी। इस चुनाव में कांग्रेस बहुमत नहीं पा सकी। बिहार सहित आठ राज्यों में पहली बार गैर कांग्रेसी सरकार बनी। बिहार में इस संविद सरकार के मुख्यमंत्री महामाया प्रसाद सिन्हा बने। हालांकि वे ज्यादा दिन तक अपनी सरकार और अपना पद नहीं संभाल पाए।

दरअसल चुनाव के बाद मंत्रिमंडल के गठन को लेकर वीपी मंडल ने महामाया प्रसाद से नाराजगी जताकर 'शोषित समाज दल' के नाम से जो पार्टी बनाई थी वह कांग्रेस के भरोसा देने की वजह से बनी थी। कांग्रेस की तरफ से उन्हें समर्थन देने का वादा किया गया था। विश्वास मत के जरिए योजना के पहले चरण में कांग्रेस महामाया प्रसाद की सरकार गिराने में सफल रही। चुकी मंडल लोकसभा के सदस्य थे इसलिए शोषित समाज के सतीश प्रसाद सिंह ने 28 जनवरी 1968 को कांग्रेस के समर्थन से मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। मंडल ने तुरंत लोकसभा से इस्तीफा दिया, पटना दौड़े। सतीश प्रसाद से इस्तीफा दिलाया। खुद मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। सतीश प्रसाद सिंह ने उनके लिए गाड़ी छोड़ दी थी। पर बीपी मंडल की यह सरकार केवल 47 दिन चली। कांग्रेस ने बीपी मंडल सरकार से समर्थन वापस ले लिया। कांग्रेस की रणनीति का यह दूसरा चरण था। आगे यही राजनीतिक खेल केंद्र में समाजवादी उसने जनता पार्टी और जनता दल की सरकार के साथ भी किया।

बरहाल, मंडल सरकार गिरने के बाद संयुक्त गठबंधन ने भोला पासवान शास्त्री के नेतृत्व में सरकार बनाने का एक बार फिर दावा किया और उन्हें राज्यपाल ने इसका मौका दिया। भोला पासवान शास्त्री मुख्यमंत्री बने। बिहार में पहली बार कोई दलित मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बैठा था। भोला पासवान, रामविलास पासवान के रिश्तेदार थे। भोला पासवान शास्त्री की यह सरकार भी केवल 3 महीने चली और इसके बाद फरवरी 1969 में मध्यावधि चुनाव का एलान हो गया।

पासवान की राजनीतिक शुरुआत कुल मिलाकर अजीबोगरीब रही। किसी ने दबाव बनाया, किसी ने चुनौती दी, किसी ने समझाया तो चुनाव लड़ने का मूड बन गया। पर उस समय तक पासवान न तो किसी पार्टी में थे और न ही दलगत राजनीति में उनका कोई स्थान था। लिहाजा चुनाव लड़ने के फैसले के बाद उनके सामने पहला सवाल था किस पार्टी से लड़े? कांग्रेस में उनके लिए कोई जगह न तो थी न हीं गैर कांग्रेसवाद की राजनीतिक हवा में सांस ले रहे पासवान कांग्रेस में जाने के बारे में सोच सकते थे। सामाजिक न्याय को लेकर जज्बा था, शोषित–वंचितों को लेकर दिल में जगह थी, इसलिए उन्हें शुरू में शोषित समाज पार्टी ज्यादा पसंद आ रही थी, नई पार्टी थी। पासवान को बीपी मंडल की राजनीति का न तो पूरा पता था न ही उनसे कोई दिलचस्पी। उनको तो शोषित समाज दल का नाम पसंद था। पर 1969 के चुनाव तक 'शोषित समाज दल' का भविष्य खत्म होता दिखाई देने लगा था। इसलिए पासवान को विकल्प के रूप में ले देकर संसोपा ही नजर आ रही थी।

शोषित समाज बनने के पहले वैसे भी पासवान का झुकाव संसोपा की तरफ था। वे संसोपा को गरीबों की पार्टी मानते थे। वे संसोपा नेता कर्पूरी ठाकुर से प्रभावित थे। इसलिए फैसला किया संसोपा से चुनाव लड़ेंगे। अलौली विधानसभा क्षेत्र का फैसला तो गढ़पुरा में बुआ जी के घर पर हुई बैठक और फिर ट्रेन के डिब्बे में मिश्री सदा से हुई मुलाकात के बाद हो गया था। पर उनको तब थोड़ा झटका लगा जब उन्होंने देखा चक्कर लगाने के बावजूद संसोपा के पार्टी दफ्तर और नेताओं में उन्हें कोई पूछ ही नहीं रहा है। चूंकि रामजीवन सिंह पार्टी के जिलाध्यक्ष थे, इसलिए वे अपनी खुद की सिफारिश लेकर उनसे सीधे जाकर मिले थे।

मुंगेर जिले के विधानसभा क्षेत्र के टिकट बंटवारे को लेकर संसोपा के कार्यालय में बैठक हुई तो अलौली क्षेत्र से पासवान के टिकट पर फैसला सर्वानुमति से ले लिया गया। किसी ने बैठक में बताया कि पासवान नया लड़का है। चुनाव लड़ना चाहता है। काफी उत्साही है। सो पासवान के इकलौते दावे पर सभी ने मोहर लगा दी। जिला कमेटी के भेजे गए इस इकलौते नाम को पार्टी संसदीय बोर्ड को भी मंजूरी मिल गई। पासवान को जब यह खबर मिली कि उन्हें टिकट मिल रहा है, तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा, लगा कि आधा चुनाव जीत गए हैं। उन्हें काफी दिन बाद में यह पता चला कि पार्टी की बैठक में अलौली के टिकट के लिए वे इकलौते दावेदार थे और यह कि मिश्री सदा के खिलाफ पार्टी का कोई दूसरा नेता अलौली से मैदान में उतरना ही नहीं चाहता था।

निष्कर्ष :

रामविलास पासवान बिहार के लोकप्रिय नेताओं में से एक थे और उन्हें व्यापक जनसमर्थन प्राप्त था। उन्हें 1977 में पहली बार हाजीपुर निर्वाचन क्षेत्र से रिकार्ड मतों के अंतर से छठी लोकसभा के सदस्य के रूप में चुना गया। वर्ष 2019 में वह राज्यसभा के लिए चुने गए थे। लगभग दो दशकों से से ज्यादा समय तक केंद्र की कई सरकारों में महत्वपूर्ण मंत्रालयों की जिम्मेदारी संभाली। वर्ष 2021 में रामविलास पासवान को मरणोपरांत सार्वजनिक जीवन में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए भारत के नागरिक सम्मान 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया। पीएम मोदी ने 5 जुलाई 2021 को रामविलास पासवान की जयंती पर उन्हें याद करते हुए कहा था कि वह भारत के अत्यंत अनुभवी सांसद और प्रशासक थे। प्रधानमंत्री मोदी ने कहा था, "आज मेरे मित्र स्वर्गीय रामविलास पासवान जी की जयंती है। उनकी कमी मुझे बहुत खलती है। वे भारत के सर्वाधिक अनुभवी सांसदों और प्रशासकों में से एक थे। जनसेवा में उनके योगदान और कमजोर वर्ग को शक्ति संपन्न बनाने के लिए उन्हें हमेशा याद रखा जाएगा"।

संदर्भ ग्रंथ :

1. श्रीवास्तव, प्रदीप, संकल्प, साहस और संघर्ष, पेंगुइन रैंडम हाउस, नई दिल्ली, वर्ष 2020.
2. नायर, के. शोभना, Ram Vilas Paswan : The Weathervane of Indian Politics, रोली बुक्स, नई दिल्ली, वर्ष 2024.
3. नवभारत टाइम्स, NBT News, रामविलास का निधन, 8 अक्टूबर 2020, पृ. सं. 1.
4. कुमार, डॉ. संतोष, समाजवाद के विकास में बिहारी नायकों की भूमिका, जानकी प्रकाशन, पटना, वर्ष 2019.
5. रंजन, डॉ. नेहा, आधुनिक बिहार में जातीय संघर्ष, जानकी प्रकाशन, पटना, वर्ष 2015.

ईमेल – virupaswan2055@gmail.com, मोबाईल 6202640386

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 160-167

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Global Partnerships in Transition : Emerging Trends, Strategic Realignments, and the Future of International Cooperation

Dr. Ritesh Kumar Chaurasia
Assistant Professor,
Dept. of Defence and strategic studies, Bareilly College, Bareilly (UP)

Abstract :

In the evolving landscape of international relations, global partnerships are undergoing a profound transformation driven by shifting power dynamics, technological advancements, and emerging security challenges. The gradual transition from a unipolar to a multipolar world order—marked by the relative decline of United States dominance and the simultaneous rise of powers such as China and India—has redefined the nature, scope, and objectives of international cooperation. This paper examines the emerging trends shaping global partnerships, including the rise of minilateralism, issue-based coalitions, and strategic alignments such as the Quadrilateral Security Dialogue and BRICS. The study highlights how technological innovation, particularly in areas such as artificial intelligence, cyber security, and critical infrastructure, is influencing new forms of collaboration and competition. Economic interdependence is increasingly being recalibrated through supply chain diversification, trade realignments, and the growing emphasis on economic resilience. Furthermore, global challenges such as climate change, pandemics, and energy security are compelling states to adopt flexible, multi-layered partnership frameworks that transcend traditional alliances.

By analyzing strategic realignments across key regions, including the Indo-Pacific and Eurasia, the paper underscores the role of middle powers and regional actors in shaping the future of international cooperation. It also evaluates the challenges confronting global partnerships, such as geopolitical rivalries, trust deficits, and institutional limitations. The paper concludes that the future of global cooperation will likely be characterized by adaptive, network-based partnerships that balance competition with collaboration, thereby redefining the architecture of global governance in the 21st

century.

Introduction :

The international system in the 21st century is experiencing a significant transformation, marked by the reconfiguration of global partnerships and the evolution of international cooperation frameworks. The post-Cold War order, largely shaped by the dominance of the United States and its network of alliances, is gradually giving way to a more complex and dynamic multipolar structure. Emerging powers such as China and India, along with resurgent actors like Russia, are increasingly asserting their influence in global affairs, thereby reshaping traditional patterns of diplomacy, security, and economic engagement. Global partnerships today extend beyond conventional military alliances and encompass a wide spectrum of cooperation, including economic integration, technological collaboration, climate governance, and transnational security. Institutions such as the United Nations, World Trade Organization, and International Monetary Fund continue to play important roles, yet they are increasingly complemented—and in some cases challenged—by emerging groupings like BRICS, the Shanghai Cooperation Organisation, and the Quadrilateral Security Dialogue. These developments signal a shift from rigid, formal alliances toward more flexible and issue-based partnerships, often referred to as "minilateralism."

The transition in global partnerships is also driven by structural changes in the global economy and rapid technological advancements. The rise of digital economies, artificial intelligence, and cyber capabilities has introduced new domains of cooperation and competition, compelling states to forge partnerships that enhance innovation, resilience, and strategic autonomy. At the same time, disruptions caused by events such as the COVID-19 pandemic have exposed vulnerabilities in global supply chains and underscored the need for diversified and secure economic networks.

This paper seeks to analyze the emerging trends, strategic realignments, and future trajectories of global partnerships in this evolving international environment. It explores how states are adapting to changing geopolitical realities, the role of new and existing institutions, and the implications of these transformations for global governance and stability. By examining these dynamics, the study aims to provide a comprehensive understanding of how international cooperation is being redefined in an era of transition.

Conceptual Framework: From Alliances to Partnerships :

The transformation of global cooperation in the 21st century reflects a fundamental conceptual shift—from rigid, treaty-bound alliances to flexible, interest-driven partnerships. Traditionally, alliances were rooted in formal agreements, clearly defined obligations, and collective defense commitments, as exemplified by organizations such as the North Atlantic Treaty Organization during

the Cold War. These alliances were primarily security-centric, structured around the idea of countering a common adversary, and often operated within a bipolar global order. In contrast, contemporary global partnerships are more fluid, adaptive, and multidimensional. They are not necessarily based on binding treaties but are instead driven by shared interests, strategic convergence, and issue-specific cooperation. This shift is largely a response to the complexities of a multipolar world, where power is diffused among multiple actors, including states, international organizations, and non-state entities. Countries such as India increasingly pursue "multi-alignment" strategies—engaging with diverse partners like the Quadrilateral Security Dialogue, BRICS, and the Shanghai Cooperation Organisation—to maximize strategic autonomy while advancing national interests.

A key feature of this conceptual transition is the rise of **minilateralism,** where small groups of like-minded countries collaborate on specific issues rather than relying on large, universal institutions such as the United Nations. Minilateral frameworks offer greater efficiency, flexibility, and speed in decision-making, particularly in areas such as maritime security, counterterrorism, and emerging technologies. For instance, the Quadrilateral Security Dialogue focuses on Indo-Pacific stability, while BRICS emphasizes economic cooperation and reform of global financial governance. Another important dimension of this framework is the broadening scope of cooperation. Unlike traditional alliances that were primarily military in nature, modern partnerships encompass diverse sectors such as trade, digital governance, climate action, public health, and innovation ecosystems.

The experience of the COVID-19 pandemic highlighted the necessity of cross-sectoral collaboration, leading to new forms of partnerships involving governments, private companies, and international organizations. The concept of strategic autonomy has become central to this transition. States are increasingly cautious about overdependence on any single power and seek to diversify their partnerships to mitigate risks. This has resulted in overlapping and sometimes competing networks of cooperation, where countries simultaneously engage in multiple groupings with different objectives. Such a networked approach reflects the realities of globalization, where interdependence coexists with geopolitical competition.

This shift can be understood through a synthesis of realist and liberal perspectives. While realist considerations—such as power balancing and national interest—continue to shape partnerships, liberal ideas of interdependence, institutional cooperation, and mutual gains also play a crucial role. The result is a hybrid model of international cooperation that blends competition with collaboration.

Drivers of Change in Global Partnerships :

The transformation of global partnerships is not accidental; it is driven by a combination of structural, technological, economic, and geopolitical factors that are reshaping the nature of

international cooperation. These drivers reflect the evolving realities of a complex and interdependent world, where traditional alliance systems are increasingly insufficient to address emerging challenges. One of the most significant drivers is the transition from a unipolar to a multipolar world order. The relative decline of the United States and the simultaneous rise of powers such as China and India have altered the balance of power in international relations. Additionally, the reassertion of Russia has intensified geopolitical competition, particularly in regions like Eastern Europe and the Indo-Pacific.

This diffusion of power has encouraged states to diversify their partnerships and avoid overdependence on a single dominant actor. Rapid technological change is redefining the scope and nature of global partnerships. Emerging technologies such as artificial intelligence, cybersecurity, quantum computing, and space technologies have become central to both cooperation and competition. Countries are increasingly forming strategic technology partnerships to secure supply chains, enhance innovation, and protect critical infrastructure. Technology-driven collaborations between states and private sector actors are also expanding, creating new hybrid forms of global partnerships. The growing importance of non-traditional security challenges—such as climate change, pandemics, terrorism, and energy insecurity—has significantly influenced global partnerships. These challenges are transnational in nature and cannot be addressed by individual states alone. As a result, countries are increasingly engaging in cooperative frameworks under institutions like the United Nations and informal coalitions to tackle shared threats. This has broadened the agenda of international cooperation beyond conventional military concerns.

The limitations of large multilateral institutions have led to the rise of minilateralism—small, flexible groupings of countries focused on specific issues. Platforms such as the Quadrilateral Security Dialogue and the Shanghai Cooperation Organisation exemplify this trend. These frameworks allow for quicker decision-making, targeted cooperation, and adaptability to changing geopolitical circumstances, making them attractive alternatives to traditional alliances. States are increasingly prioritizing strategic autonomy in their foreign policies. Countries like India pursue multi-alignment strategies, engaging with multiple partners across different platforms to maximize their national interests while maintaining independence in decision-making. This approach reflects a pragmatic recognition that rigid alliances may limit policy flexibility in a rapidly changing global environment. Intensifying geopolitical rivalries—particularly between the United States and China—are also shaping the evolution of global partnerships. These rivalries are influencing the formation of competing blocs, technological decoupling, and strategic realignments. At the same time, countries seek to balance competition with cooperation, leading to complex and overlapping partnership networks.

Middle powers and regional actors are playing an increasingly important role in shaping global

partnerships. Countries such as India, Japan, and Australia are actively participating in regional and global initiatives, contributing to a more decentralized and inclusive international system. Their involvement enhances the diversity and resilience of global partnerships.

Role of Emerging Powers :

Emerging powers have become central actors in the transformation of global partnerships, reshaping the architecture of international cooperation through their growing economic strength, technological capabilities, and strategic ambitions. Countries such as India, China, Brazil, and South Africa are no longer passive participants in global governance; instead, they actively influence norms, institutions, and decision-making processes.

Emerging powers are instrumental in the transition from a Western-dominated international order to a more multipolar system. The rise of China as a major economic and military power, alongside the steady ascent of India, has altered traditional power hierarchies. These states advocate for a more inclusive global order that reflects contemporary realities, often challenging the dominance of institutions historically led by the United States and its allies. Emerging powers have played a key role in establishing and strengthening alternative platforms of cooperation. Groupings such as BRICS and the Shanghai Cooperation Organisation provide avenues for political, economic, and security collaboration outside traditional Western-led institutions. These platforms emphasize principles such as sovereignty, non-interference, and equitable development, offering alternative models of global governance. A significant contribution of emerging powers is the promotion of South–South cooperation, which focuses on collaboration among developing countries. Nations like India and Brazil have expanded development partnerships in Africa, Asia, and Latin America through capacity-building initiatives, infrastructure development, and technology transfer. This approach reduces dependence on traditional donor-recipient relationships and fosters mutual growth. Emerging powers often operate within a dual framework of competition and cooperation. For example, while India and China compete for regional influence in Asia, they also cooperate within multilateral platforms such as BRICS. This reflects the complexity of modern international relations, where states pursue pragmatic engagement across multiple domains despite underlying strategic rivalries.

Emerging powers tend to prioritize strategic autonomy by engaging in diverse and overlapping partnerships. India, for instance, participates in the Quadrilateral Security Dialogue while simultaneously maintaining ties with Shanghai Cooperation Organisation and BRICS. This multi-alignment strategy enables emerging powers to maximize their national interests without being constrained by rigid alliance structures. Emerging powers are increasingly contributing to global governance by shaping international norms and agendas. They play active roles in addressing global

challenges such as climate change, sustainable development, and public health. For instance, India has taken leadership initiatives in renewable energy and climate diplomacy, while China has expanded its global economic footprint through infrastructure and connectivity projects. Economic growth and technological advancement have enabled emerging powers to expand their global influence. China has become a global manufacturing hub and a leader in digital infrastructure, while India is emerging as a key player in information technology and digital innovation. These capabilities enhance their ability to form strategic partnerships and influence global supply chains.

Challenges in Evolving Global Partnerships :

While global partnerships are expanding in scope and flexibility, they are also confronted with a range of structural, political, and operational challenges. These obstacles complicate cooperation, limit effectiveness, and, in some cases, create friction among partners. Understanding these challenges is essential to assessing the future trajectory of international collaboration.

One of the most significant challenges arises from intensifying geopolitical rivalries, particularly between the United States and China. Strategic competition in areas such as trade, technology, and military influence often leads to polarization within global partnerships. Similarly, tensions involving Russia in regions like Eastern Europe further complicate cooperative frameworks. These rivalries can fragment partnerships, forcing smaller states to navigate complex strategic choices. Global partnerships often involve countries with differing political systems, economic priorities, and strategic goals. This diversity can lead to a trust deficit, making sustained cooperation difficult. For example, within groupings like BRICS or the Shanghai Cooperation Organisation, member states may share broad objectives but differ significantly on specific geopolitical issues. Such divergences can slow decision-making and reduce the effectiveness of collective action.

Traditional multilateral institutions such as the United Nations, World Trade Organization, and International Monetary Fund face criticism for being slow, bureaucratic, and sometimes unrepresentative of current global realities. Decision-making processes in these institutions are often hindered by political deadlock, limiting their ability to respond effectively to emerging challenges. This has led to the proliferation of alternative and informal partnership frameworks, which, while flexible, may lack institutional stability. The rise of multiple partnership platforms—such as the Quadrilateral Security Dialogue, BRICS, and regional alliances—has created a complex web of overlapping and sometimes competing frameworks. Countries often participate in several groupings simultaneously, which can lead to policy inconsistencies and coordination challenges. This "networked complexity" may dilute the effectiveness of partnerships and create confusion regarding priorities and commitments.

Significant disparities in economic development among partner countries pose another major challenge. Developing nations may lack the financial and technological capacity to fully participate in global initiatives, leading to unequal benefits from partnerships. This imbalance can create tensions and limit the inclusivity of international cooperation, particularly in areas such as trade, climate finance, and technological access. While technology has become a key driver of partnerships, it also introduces new challenges. Competition over emerging technologies—such as artificial intelligence, 5G, and cybersecurity—can lead to fragmentation and mistrust. Concerns over data security, intellectual property, and digital sovereignty often hinder collaboration, especially between technologically advanced and developing nations. The resurgence of nationalism and protectionist policies in many countries has weakened the spirit of multilateralism. Governments increasingly prioritize domestic interests over global commitments, leading to reduced cooperation in areas such as trade liberalization and climate agreements. This inward-looking approach can undermine long-term global partnerships and hinder collective problem-solving.

Conclusion :

The transformation of global partnerships in the contemporary international system reflects a broader shift in the nature of power, cooperation, and governance. As the world transitions from a predominantly unipolar order to a more complex multipolar structure, traditional alliance systems are increasingly being supplemented—and in some cases replaced—by flexible, issue-based partnerships. The roles of major powers such as the United States, China, and India, along with the growing influence of emerging and middle powers, have fundamentally reshaped the dynamics of international collaboration. This study has highlighted that global partnerships today are driven by multiple interconnected factors, including shifting power balances, technological advancements, economic interdependence, and the rise of non-traditional security challenges. Frameworks such as BRICS, the Quadrilateral Security Dialogue, and the Shanghai Cooperation Organisation illustrate the emergence of diverse and adaptive models of cooperation that move beyond rigid alliance structures. These platforms reflect a growing preference for flexibility, strategic autonomy, and multi-alignment in foreign policy.

At the same time, the evolution of global partnerships is not without challenges. Geopolitical rivalries, institutional limitations, trust deficits, and economic inequalities continue to constrain the effectiveness of international cooperation. The limitations of traditional institutions such as the United Nations and the World Trade Organization underscore the need for reform and innovation in global governance mechanisms. Moreover, the experience of the COVID-19 pandemic has demonstrated both the necessity and the fragility of global cooperation in addressing transnational crises. Looking

ahead, the future of international cooperation will likely be characterized by a hybrid model that blends competition with collaboration. Global partnerships are expected to become more networked, decentralized, and issue-oriented, involving not only states but also international organizations, private sector actors, and civil society. In this evolving landscape, the ability of countries to balance national interests with collective responsibilities will be crucial.

In conclusion, global partnerships in transition represent both an opportunity and a challenge for the international community. If effectively managed, they can foster stability, innovation, and inclusive development. However, their success will depend on the willingness of states to build trust, embrace adaptability, and commit to cooperative solutions in an increasingly interconnected and uncertain world.

References :

- Organisation for Economic Co-operation and Development (OECD). (2025). Global perspectives on triangular co-operation (2nd ed.). OECD Publishing.
- Glennie. J. (2025). Circular cooperation: Evolving international partnerships for the 21st century. Global Cooperation Institute.
- Boston Consulting Group. (2025). Future international cooperation in a fragmented world. BCG.
- World Economic Forum. (2025). Global Cooperation Barometer 2025 (2nd ed.). WEF.
- United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD). (2024). Global cooperation in science, technology and innovation for development. United Nations.
- Doha Forum. (2025). Future of international cooperation report 2025. Doha Forum Publications.
- Lenz. C. (2025). European and global cooperation in research and innovation: Case studies and policy insights. CEPS.
- Simonov. M. (2025). The Belt and Road Initiative and partnership dynamics in global politics. ScienceDirect.
- Yun. T. (2025). International partnerships in AI-driven healthcare: Opportunities and challenges. National Institutes of Health (NIH).
- United Nations. (2024). Pact for the Future. United Nations General Assembly Resolution A/RES/79/1.
- Global Cooperation Institute. (2025). Reimagining partnerships: From aid to mutual cooperation frameworks.

mr.ritesh29@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 168-170

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नशा मुक्ति केंद्र के मरीजों की मानसिक स्वास्थ्य पर राजयोग मेडिटेशन के द्वारा पढ़ने वाला सकारात्मक प्रभाव

यश पाल सिंह, शोधार्थी,
मणिपुर अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय एवं शैक्षणिक अनुसंधान केन्द्र (RERF), शान्तिवन, आबू रोड, राजस्थान।

सारांश :

यह शोध–पत्र नशा मुक्ति केंद्रों में रह रहे रोगियों के मानसिक स्वास्थ्य पर राजयोग मेडिटेशन के प्रभावों का अध्ययन करता है। राजयोग मेडिटेशन एक प्रभावी उपचार है जो रोगियों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार कर सकता है, जैसे कि तनाव, चिंता, और अवसाद को कम करना। यह मेडिटेशन रोगियों को आत्म–नियंत्रण, भावनात्मक स्थिरता, और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने में मदद करता है। भारत में नशे से मुक्ति की प्रक्रिया केवल शारीरिक उपचार तक सीमित नहीं है, बल्कि मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक पुनर्वास भी अत्यंत आवश्यक है। राजयोग मेडिटेशन, जो मन को शांत, स्थिर और सकारात्मक बनाने पर केंद्रित है, मरीजों की मानसिक स्थिति को सुदृढ़ करने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इस शोध में राजयोग के नियमित अभ्यास से तनाव में कमी, आत्म–संतुलन, भावनात्मक नियंत्रण तथा सकारात्मक व्यवहारिक परिवर्तन जैसे लाभों का आकलन किया गया है।

परिचय :

नशा मुक्ति केंद्रों का मुख्य उद्देश्य मरीजों को शारीरिक निर्भरता से मुक्त करके उन्हें मानसिक रूप से मजबूत बनाना है। वर्तमान समय में मादक पदार्थों का दुरुपयोग एक गंभीर सामाजिक समस्या बन चुका है। WHO और विभिन्न राष्ट्रीय सर्वेक्षणों के अनुसार, नशे की लत का उपचार केवल चिकित्सा पद्धतियों से पर्याप्त नहीं होता, बल्कि मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप, भावनात्मक समर्थन और जीवन–शैली में सुधार अनिवार्य है। राजयोग मेडिटेशन मन के विभिन्न स्तरों को शुद्ध एवं संतुलित करने वाली पद्धति है। यह न केवल तनाव को कम करता है, बल्कि व्यक्ति को आत्म–जागरूक, आत्म–नियंत्रित और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने में सक्षम बनाता है।

साहित्य समीक्षा :

कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोधों में यह पाया गया है कि ध्यान–आधारित पद्धतियाँ जैसे माइंडफुलनेस, विपश्यना, और राजयोग, मानसिक तनाव को कम करने में अत्यंत प्रभावी हैं। शोध से ज्ञात हुआ है कि ध्यान करने वाले व्यक्तियों में कोर्टिसोल स्तर कम होता है, नींद की गुणवत्ता में सुधार होता है और भावनात्मक असंतुलन कम होता है। मादक पदार्थों की लत से उभर रहे व्यक्तियों में भावनात्मक अस्थिरता, चिड़चिड़ापन, अवसाद और चिंता

सामान्य लक्षण होते हैं। राजयोग विचारों की शुद्धता, सकारात्मक चिंतन, आत्म–सम्मान और आंतरिक शांति प्रदान करता है, जो पुनर्वास की प्रक्रिया में अत्यंत सहायक है।

शोध उद्देश्य :

1. यह अध्ययन करना कि राजयोग मेडिटेशन मरीजों के तनाव और चिंता के स्तर को किस प्रकार प्रभावित करता है।
2. मरीजों की नींद की गुणवत्ता, आत्म–नियंत्रण और भावनात्मक स्थिरता में संभावित परिवर्तन का विश्लेषण।
3. यह मूल्यांकन करना कि राजयोग मेडिटेशन मादक पदार्थों से मुक्ति की सम्पूर्ण प्रक्रिया में कितनी सहायता प्रदान करता है।

कार्यविधि :

अध्ययन के लिए 60 मरीजों का चयन किया गया, जिनमें से 30 को राजयोग समूह में और 30 को नियंत्रण समूह में शामिल किया गया। राजयोग समूह को 8 सप्ताह तक प्रतिदिन 30 मिनट का मेडिटेशन कराया गया। सत्रों में श्वास–नियंत्रण, सकारात्मक संकल्प, आत्म–संवाद और मूल्य–आधारित चिंतन शामिल थे। नियंत्रण समूह को केवल नियमित चिकित्सकीय उपचार दिया गया। अध्ययन के दौरान PSS, GAD-7, PSQI, और Emotional Regulation Index जैसे मान्य मनोवैज्ञानिक मापक उपयोग किए गए।

डेटा विश्लेषण :

प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण t-test तथा ANOVA पद्धति द्वारा किया गया। राजयोग समूह के मरीजों में तनाव स्कोर में 28% की कमी, चिंता में 32% सुधार, नींद की गुणवत्ता में 40% वृद्धि और भावनात्मक नियंत्रण में 35% सुधार देखा गया, जबकि नियंत्रण समूह में परिवर्तन सीमित रहे। इससे स्पष्ट होता है कि राजयोग मेडिटेशन मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

चर्चा :

अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि राजयोग मेडिटेशन नशा मुक्ति केंद्रों में एक प्रभावी मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप हो सकता है। मरीजों के व्यवहार में सकारात्मकता, आत्म–नियंत्रण में वृद्धि तथा आवेगपूर्ण प्रतिक्रियाओं में उल्लेखनीय कमी देखी गई। यह भी पाया गया कि मरीज भविष्य के प्रति अधिक आशावादी हुए और जीवन में सुधार लाने के प्रति उनका दृष्टिकोण सकारात्मक हुआ। राजयोग की विशेषता यह है कि इसमें किसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान या कठिन शारीरिक क्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती, जिससे इसे आसानी से अपनाया जा सकता है।

निष्कर्ष :

यह शोध स्पष्ट करता है कि राजयोग मेडिटेशन नशा मुक्ति केंद्रों की पुनर्वास प्रक्रिया में एक प्रभावी, सरल और सुरक्षित तकनीक है। यह मरीजों के तनाव, चिंता, अवसाद और भावनात्मक असंतुलन को कम कर उन्हें मानसिक रूप से मजबूत बनाता है। इसे नियमित उपचार कार्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।

संदर्भ :

1. Rajyoga Research Wing Publications

2. Indian Journal of Mental Health Studies
3. WHO Mental Health Surveys
4. Meditation and Rehabilitation Reports
5. राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य संस्थान, भारत सरकार।
6. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ योगा एंड मेडिटेशन।
7. जर्नल ऑफ क्लिनिकल साइकोलॉजी, यूएसए।
8. ब्रह्माकुमारीज राजयोग मेडिटेशन सेंटर, माउंट आबू।

पत्राचार : धौला धार लाइन्स के पास, योल कैंप, जिला कांगड़ा, तहसील धर्मशाला (HP) – 176052
मोबाइल 9418054979 ईमेल : yeshgora@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 171-174

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विद्यार्थी जीवन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का प्रभाव एवं परिणाम

डॉ. शिवलाल मीना

सहायक आचार्य, राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुराबाग, आमेर रोड, जयपुर, राजस्थान।

1. प्रस्तावना (Introduction)

21वीं सदी को डिजिटल क्रांति का युग माना जाता है, जिसमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने मानव जीवन की संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। शिक्षा क्षेत्र, विशेष रूप से विद्यार्थी जीवन, इस परिवर्तन का केंद्र बन गया है।

AI अब केवल एक तकनीकी अवधारणा नहीं रह गई है, बल्कि यह एक ऐसा उपकरण बन चुका है जो सीखने, समझने और ज्ञान अर्जित करने के तरीकों को पूरी तरह बदल रहा है। ChatGPT, Google Assistant, Grammarly, और अन्य AI आधारित प्लेटफॉर्म विद्यार्थियों के लिए नए अवसरों के द्वार खोल रहे हैं।

आज का विद्यार्थी पारंपरिक शिक्षा प्रणाली से हटकर एक डिजिटल, इंटरैक्टिव और Personalized Learning Environment में प्रवेश कर चुका है।

इस अनुसंधान पत्र का उद्देश्य विद्यार्थी जीवन में AI के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण करना है।

2. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

विभिन्न शोधों में यह पाया गया है कि AI शिक्षा प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रहा है।

- UNESCO की रिपोर्ट के अनुसार, AI शिक्षा को अधिक सुलभ और समावेशी बना सकता है।
- कई अध्ययनों में यह भी पाया गया कि AI आधारित learning tools छात्रों के learning outcomes को बेहतर बनाते हैं।
- दूसरी ओर, कुछ शोधों में यह चिंता व्यक्त की गई है कि AI छात्रों में dependency बढ़ा सकता है।

यह समीक्षा दर्शाती है कि AI का प्रभाव मिश्रित (mixed) है, जिसमें लाभ और हानि दोनों शामिल हैं।

3. अनुसंधान के उद्देश्य (Objectives)

- AI के उपयोग के वर्तमान स्वरूप को समझना।
- विद्यार्थी जीवन पर इसके प्रभावों का गहन अध्ययन।
- सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणामों की तुलना करना।

- भविष्य में शिक्षा प्रणाली पर AI के प्रभाव का आकलन करना।

4. अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

यह अध्ययन मुख्यतः ''द्वितीयक डेटा (Secondary Data)'' पर आधारित है।

डेटा स्रोत :

- शोध पत्र (Research Journals)
- ऑनलाइन लेख और रिपोर्ट्स।
- शिक्षा से संबंधित संस्थानों के प्रकाशन।

विश्लेषण विधि :

- तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis)
- गुणात्मक अध्ययन (Qualitative Analysis)

5. विद्यार्थी जीवन में AI के उपयोग के क्षेत्र

5.1 स्मार्ट लर्निंग प्लेटफॉर्म :

AI आधारित प्लेटफॉर्म छात्रों को उनकी क्षमता के अनुसार पाठ्य सामग्री प्रदान करते हैं।

5.2 वर्चुअल ट्यूटर :

AI ट्यूटर छात्रों के प्रश्नों का तुरंत उत्तर देते हैं और personalized guidance प्रदान करते हैं।

5.3 मूल्यांकन प्रणाली (Assessment System) :

AI ऑटोमेटेड grading और feedback देने में सक्षम है, जिससे शिक्षकों का समय बचता है।

5.4 भाषा और लेखन सहायता :

Grammarly जैसे टूल्स छात्रों की भाषा और लेखन कौशल को सुधारते हैं।

6. सकारात्मक प्रभाव (Positive Impacts)

6.1 व्यक्तिगत शिक्षण (Personalized Learning)

AI छात्रों के learning patterns को समझकर customized content प्रदान करता है, जिससे सीखना अधिक प्रभावी हो जाता है।

6.2 सीखने की गति में वृद्धि :

AI छात्रों को तेजी से जानकारी प्राप्त करने में मदद करता है, जिससे उनकी productivity बढ़ती है।

6.3 शिक्षा की पहुंच (Accessibility)

AI ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में भी शिक्षा को सुलभ बनाता है।

6.4 नवाचार और कौशल विकास :

AI छात्रों को coding, data analysis, और problem-solving जैसे skills विकसित करने में मदद करता है।

6.5 24×7 सहायता :

AI आधारित प्लेटफॉर्म किसी भी समय छात्रों को सहायता प्रदान करते हैं, जिससे self-learning को बढ़ावा मिलता है।

6.6 कौशल विकास :

AI छात्रों में डिजिटल स्किल्स और तकनीकी ज्ञान को बढ़ाता है, जो भविष्य के करियर के लिए आवश्यक है।

7. नकारात्मक प्रभाव (Negative Impacts)

7.1 निर्भरता (Dependency)

AI पर अत्यधिक निर्भरता छात्रों की स्वतंत्र सोच को कमजोर कर सकती है।

7.2 रचनात्मकता में कमी :

जब छात्र AI से सीधे उत्तर प्राप्त करते हैं, तो उनकी critical thinking प्रभावित होती है।

7.3 शैक्षणिक ईमानदारी (Academic Integrity)

AI के कारण plagiarism और cheating की समस्या बढ़ रही है। AI के माध्यम से छात्र बिना समझे उत्तर प्राप्त कर लेते हैं, जिससे मौलिकता प्रभावित होती है।

7.4 मानसिक और सामाजिक प्रभाव :

AI के अधिक उपयोग से छात्रों में मानवीय संपर्क और संवाद कौशल कम हो सकते हैं।

7.5 डेटा सुरक्षा और गोपनीयता :

AI प्लेटफॉर्म पर व्यक्तिगत जानकारी साझा करने से डेटा सुरक्षा का खतरा बढ़ सकता है।

8. केस स्टडी (Case Studies)

- **केस 1 : AI आधारित लर्निंग :**

एक अध्ययन में पाया गया कि AI आधारित प्लेटफॉर्म का उपयोग करने वाले छात्रों के अंक पारंपरिक छात्रों की तुलना में बेहतर थे।

- **केस 2 : AI का दुरूपयोग :**

कुछ छात्रों ने AI का उपयोग केवल असाइनमेंट पूरा करने के लिए किया, जिससे उनकी समझ में कमी देखी गई।

9. डेटा विश्लेषण (Data Analysis)

प्रमुख निष्कर्ष :

- 70% छात्र AI का उपयोग पढ़ाई में करते हैं।
- 50% छात्र AI पर निर्भर हो चुके हैं।
- 65% शिक्षकों का मानना है कि AI उपयोगी है लेकिन नियंत्रित होना चाहिए।

(यह आंकड़े उदाहरणात्मक हैं, वास्तविक शोध में survey आवश्यक होगा)

10. चर्चा (Discussion)

AI शिक्षा में एक परिवर्तनकारी शक्ति है, लेकिन इसका प्रभाव उपयोगकर्ता के व्यवहार पर निर्भर करता है।

संतुलित उपयोग से AI एक Powerful Learning Tool बन सकता है, जबकि अति–निर्भरता इसे हानिकारक बना सकती है।

11. निष्कर्ष (Conclusion)

AI ने विद्यार्थी जीवन को सरल, तेज और अधिक प्रभावी बना दिया है। यह शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार को बढ़ावा देता है।

हालांकि, इसके नकारात्मक प्रभावों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसलिए AI का उपयोग संतुलित और जिम्मेदारी से किया जाना चाहिए।

12. सुझाव (Recommendations)

छात्रों के लिए :

- AI का उपयोग learning tool के रूप में करें, shortcut के रूप में नहीं।
- अपनी critical thinking विकसित करें।

शिक्षकों के लिए :

- AI आधारित शिक्षण विधियों को अपनाएं।
- छात्रों को ethical use सिखाएं।

नीति निर्माताओं के लिए :

- AI उपयोग के लिए guidelines बनाएं।
- शिक्षा प्रणाली में AI को सुरक्षित रूप से integrate करें।

13. भविष्य की संभावनाएं (Future Scope)

- AI आधारित virtual classrooms
- Fully automated education systems
- Adaptive learning technologies

14. संदर्भ (References)

- शिक्षा एवं तकनीक से संबंधित विभिन्न शोध पत्र।
- AI आधारित प्लेटफॉर्म की आधिकारिक वेबसाइट्स।
- ऑनलाइन शिक्षा संसाधन।
- UNESCO Reports on AI in Education.
- Research Journals on Educational Technology.
- AI Tools Official Documentation.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 175-179

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Digital Pedagogy and Blended Learning : Transforming Education in the 21st Century

Dr. SWATI DIXIT

Assistant Professors, Rajasthan Shiksha Prashikshan Vidyapeeth Shahpura Bagh, Jaipur.

Abstract :

The integration of digital technologies into education has significantly reshaped teaching and learning practices worldwide. Digital pedagogy and blended learning have emerged as transformative approaches that combine technological innovation with traditional instructional methods. This paper explores the conceptual framework of digital pedagogy and blended learning, their theoretical foundations, benefits, challenges, and future implications. Drawing upon existing research, the study highlights how these approaches enhance student engagement, promote personalized learning, and foster digital literacy. At the same time, it addresses issues such as the digital divide, teacher preparedness, and infrastructural limitations. The paper concludes that effective implementation of digital pedagogy and blended learning requires institutional support, teacher training, and equitable access to technology.

Keywords : Digital Pedagogy, Blended Learning, Educational Technology, Online Learning, Hybrid Education.

1. Introduction :

The 21st century has witnessed rapid technological advancement that has profoundly influenced educational systems across the globe. The increasing availability of digital tools, internet connectivity, and online resources has transformed traditional classroom practices into dynamic and interactive learning environments. The COVID-19 pandemic further accelerated the shift toward digital platforms, compelling educational institutions to adopt online and hybrid models of instruction (Dhawan, 2020). Digital pedagogy and blended learning have emerged as key frameworks guiding this transformation. While digital pedagogy focuses on the purposeful integration of technology in teaching, blended learning combines face-to-face instruction with online learning components (Graham, 2013). These approaches aim to enhance accessibility, flexibility, and learner engagement. This paper examines

their theoretical basis, advantages, challenges, and future prospects in contemporary education.

2. Conceptual Framework

2.1 Digital Pedagogy :

Digital pedagogy refers to the intentional and reflective use of digital technologies to support and transform teaching and learning processes. It emphasizes active learning, collaboration, and critical thinking through digital tools (Fullan & Langworthy, 2014). Rather than merely digitizing traditional methods, digital pedagogy seeks to redesign instructional strategies to create interactive and student-centered experiences.

Common tools used in digital pedagogy include Learning Management Systems (LMS), virtual classrooms, multimedia content, simulations, and collaborative platforms. According to Bates (2015), effective digital pedagogy requires aligning technological tools with pedagogical goals to enhance learning outcomes.

2.2 Blended Learning :

Blended learning, also known as hybrid learning, integrates traditional face-to-face classroom instruction with online educational materials and activities. Graham (2013) defines blended learning as the systematic combination of online and in-person instruction to optimize learning effectiveness. Models of blended learning include :

Flipped Classroom Model : Students review instructional materials online before attending class discussions (Bergmann & Sams, 2012).

Rotation Model : Learners alternate between online and face-to-face instruction.

Flex Model : Content delivery occurs primarily online, with teacher support as needed.

Blended learning leverages the strengths of both traditional and digital methods, promoting flexibility and active engagement.

3. Theoretical Foundations :

Digital pedagogy and blended learning are grounded in several educational theories :

3.1 Constructivism :

Constructivist theory emphasizes that learners actively construct knowledge through experience and interaction (Piaget, 1972). Digital tools such as simulations and collaborative platforms support experiential and inquiry-based learning.

3.2 Connectivism :

Siemens (2005) proposed connectivism as a theory for the digital age, highlighting the role of networks and technology in knowledge creation. Learning occurs through connections between information sources, individuals, and digital platforms.

3.3 Social Learning Theory :

Bandura's (1977) social learning theory emphasizes learning through observation and interaction. Online discussion forums and collaborative projects foster peer learning and knowledge sharing.

4. Benefits of Digital Pedagogy and Blended Learning

4.1 Enhanced Student Engagement :

Interactive multimedia, gamified assessments, and real-time feedback increase learner motivation and participation (Hrastinski, 2019).

4.2 Personalized Learning :

Digital platforms allow adaptive learning pathways, enabling students to progress at their own pace (Means et al., 2013).

4.3 Flexibility and Accessibility :

Blended learning provides flexibility in time and location, making education accessible to diverse learners, including working professionals and rural students (Graham, 2013).

4.4 Development of Digital Literacy :

Students acquire essential digital competencies necessary for academic and professional success in the modern world (Fullan & Langworthy, 2014).

4.5 Improved Learning Outcomes :

Research indicates that blended learning can produce better academic performance compared to purely traditional methods (Means et al., 2013).

5. Challenges and Limitations

5.1 Digital Divide :

Inequitable access to devices and internet connectivity remains a major barrier, particularly in developing regions (UNESCO, 2021).

5.2 Teacher Preparedness :

Effective digital pedagogy requires adequate teacher training and technological competence (Bates, 2015).

5.3 Technical and Infrastructure Issues :

Frequent technical disruptions and inadequate infrastructure can hinder learning continuity.

5.4 Reduced Social Interaction :

Over-reliance on online platforms may limit face-to-face interaction and affect social development.

5.5 Screen Fatigue and Distraction :

Extended screen time can negatively impact students' concentration and well-being (Dhawan, 2020).

6. Implications for Educational Policy and Practice :

Governments and institutions must prioritize digital infrastructure development and teacher professional development programs. Policies such as India's National Education Policy (NEP) 2020 emphasize technology integration and digital literacy to strengthen the educational ecosystem (Ministry of Education, 2020).

Institutional strategies should include :

- Investment in digital infrastructure.
- Continuous teacher training programs.
- Development of inclusive and accessible digital content.
- Monitoring and evaluation of blended learning outcomes.

7. Conclusion :

Digital pedagogy and blended learning represent a paradigm shift in contemporary education. By integrating technology with traditional instructional methods, educators can create dynamic, inclusive, and learner-centered environments. Although challenges such as digital inequality and technological barriers persist, strategic planning and policy support can address these issues effectively. As education continues to evolve in the digital age, digital pedagogy and blended learning will play a crucial role in preparing learners for future academic and professional demands.

References :

- Bandura, A. (1977). Social learning theory. Prentice Hall.
- Bates, A. W. (2015). Teaching in a digital age: Guidelines for designing teaching and learning. BCcampus.
- Bergmann, J., & Sams, A. (2012). Flip your classroom: Reach every student in every class every day. International Society for Technology in Education.
- Dhawan, S. (2020). Online learning: A panacea in the time of COVID-19 crisis. Journal of Educational Technology Systems, 49(1), 5–22. https://doi.org/10.1177/0047239520934018?
- Fullan, M., & Langworthy, M. (2014). A rich seam: How new pedagogies find deep learning. Pearson.
- Graham, C. R. (2013). Emerging practice and research in blended learning. In M. G Moore (Ed.), Handbook of distance education (3rd ed., pp. 333–350). Routledge.
- Hrastinski, S. (2019). What do we mean by blended learning? TechTrends, 63(5), 564–569.
- Means, B., Toyama, Y., Murphy, R., & Baki, M. (2013). The effectiveness of online and blended learning:

A meta-analysis. Teachers College Record, 115(3), 1–47.
- Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Government of India.
- Piaget, J. (1972). The psychology of the child. Basic Books.
- Siemens, G. (2005). Connectivism: A learning theory for the digital age. International Journal of Instructional Technology and Distance Learning, 2(1), 3–10.
- UNESCO. (2021). Education in a post-COVID world: Nine ideas for public action. UNESCO.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 180-186
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

काव्यशास्त्रीय आलोचना का स्वरूप

डॉ. रेखा कुमारी त्रिपाठी
अतिथि प्राध्यापिका (हिंदी एवं अनुवाद विभाग)
हिंदी विश्वविद्यालय, हावड़ा।

शोध सार (Abstract) :

आलोचना मानव मन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। विचार शक्ति का उदय होने के साथ ही आलोचना का आरंभ हो जाता है। जब मनुष्य किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के संपर्क में आता है, उसे समय उसके ऊपर जो उसे व्यक्ति या वस्तु का प्रभाव पड़ता है, उसके संबंध में वह अपनी धारणा बना लेता है। उसे धारण की अभिव्यक्ति ही से मन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में पाठक करता ही है। उस अभिव्यक्ति में जब क्रमबद्धता एवं सौष्ठव आ जाता है, तो उसे आलोचना कहने लगते हैं। इसी प्रकार की आलोचना का जन्म साहित्य मैं पहले पहला होता है, जिसे प्रभाव वादी अथवा आत्म प्रधान आलोचना कहते हैं। आलोचना कई प्रकार के होते हैं सैद्धांतिक आलोचना, व्यवहारिक आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना, काव्यशास्त्रीय आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना और तुलनात्मक आलोचना।

शास्त्रीय आलोचना सैद्धांतिक आलोचना का व्यवहारिक स्वरूप है। जब आलोचक किसी कृति का अध्ययन करके उसका परीक्षण शास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर करता है, तब उसे शास्त्रीय आलोचना कहते है।

काव्यशास्त्रीय आलोचना (Classical Criticism) भारतीय और पाश्चात्य साहित्य में काव्य की आत्मा, उसके लक्षणों, गुणों, दोषों, और अलंकारों का सैद्धांतिक विवेचन करने वाली विधा है। यह रचना की पारखी है जो रस, छंद, अलंकार, और आनंद के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन करती है, जिसमें रस और ध्वनि सिद्धांत मुख्य हैं।

काव्यशास्त्रीय आलोचना भारतीय साहित्य चिंतन की वह पद्धति है जिसमें काव्य के स्वरूप, तत्व, प्रयोजन और मूल्यांकन के सिद्धांतों पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया जाता है। इसका विकास संस्कृत काव्यशास्त्र में भरत, भामह, दंडी, वामन, आनंदवर्धन, कुन्तक, मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों द्वारा हुआ।

मुख्य शब्द (Keywords) :

रस (भावानुभूति), अलंकार (सौंदर्य), रीति (शैली), ध्वनि (व्यंजना), और साधारणीकरण (तादात्म्य)।

भूमिका :

भारतीय साहित्य परंपरा में काव्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि जीवन–दृष्टि, सौंदर्य–बोध और आत्म–अनुभूति का माध्यम रहा है। इस काव्य को समझने, परखने और मूल्यांकित करने के लिए जो शास्त्रीय

पद्धति विकसित हुई, उसे 'काव्यशास्त्रीय आलोचना' कहते हैं। यह आलोचना न तो केवल कवि की प्रशंसा है और न ही छिद्रान्वेषण। यह एक व्यवस्थित चिंतन है जो काव्य के स्वरूप, हेतु, प्रयोजन, तत्व और आस्वाद की प्रक्रिया को तर्कसंगत आधार देता है। पाश्चात्य क्रिटिसिज्म जहाँ बाह्य यथार्थ, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र से अधिक संचालित है, वहीं भारतीय काव्यशास्त्रीय आलोचना का अंतिम लक्ष्य 'रस–निष्पत्ति' अर्थात सहृदय को आनंद की अवस्था तक पहुँचाना है। प्रस्तुत शोध–पत्र में इसी आलोचना के स्वरूप, विकास, प्रमुख सिद्धांतों और आधुनिक संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता पर विस्तार से विचार किया गया है।

आलेख :

काव्यशास्त्रीय आलोचना :

अवधारणा और क्षेत्र 'काव्यशास्त्र' शब्द दो पदों से बना है काव्य. शास्त्र। शास्त्र का अर्थ है अनुशासन, नियम या व्यवस्थित ज्ञान। अतः काव्यशास्त्र काव्य संबंधी व्यवस्थित ज्ञान है। जब इसी शास्त्र के नियमों को आधार बनाकर किसी कृति का विश्लेषण–मूल्यांकन किया जाता है, तो वह काव्यशास्त्रीय आलोचना कहलाती है। इसका क्षेत्र तीन स्तरों पर फैला है :

- **सैद्धांतिक पक्ष :** काव्य क्या है, काव्य की आत्मा क्या है, काव्य के भेद कितने हैं, आदि का निर्धारण।
- **लक्षण-ग्रंथ पक्ष :** गुण, दोष, अलंकार, रीति, वृत्ति आदि के लक्षण और उदाहरण।
- **व्यावहारिक पक्ष :** किसी विशिष्ट रचना को इन सिद्धांतों पर कसकर उसका मूल्यांकन करना।

इस प्रकार यह आलोचना नियम–निष्ठ भी है और रस–निष्ठ भी। नियम काव्य को अराजक होने से बचाते हैं, और रस उसे यांत्रिक होने से बचाता है।

काव्यशास्त्रीय आलोचना का ऐतिहासिक विकास :

काव्यशास्त्रीय आलोचना का इतिहास लगभग 2000 वर्षों का है। इसका क्रमिक विकास इस प्रकार देखा जा सकता है :

भरत मुनि और रस-सिद्धांत :

नाट्यशास्त्र को भारतीय काव्यशास्त्र का आदि ग्रंथ माना जाता है। भरत ने 'विभाव–अनुभाव–संचारीभाव के संयोग से रस–निष्पत्ति' का सूत्र दिया। यहाँ आलोचना का केंद्र कृति का आस्वादन है, न कि केवल उसका शिल्प। भरत की दृष्टि प्रयोगधर्मी थी– रंगमंच पर जो प्रभाव पड़े, वही कसौटी है।

अलंकार संप्रदाय : भामह, दंडी :

छठी–सातवीं शती में भामह ने "शब्दार्थौं सहितौ काव्यम्" और "काव्यं ग्राह्यमलंकारात्" कहकर अलंकार को अनिवार्य माना। दंडी ने काव्य के मार्गध्रीति पर बल दिया और वैदर्भी को श्रेष्ठ कहा। यहाँ आलोचना का ध्यान काव्य के बाह्य सौंदर्य पर केंद्रित हुआ।

रीति संप्रदाय : वामन :

आठवीं शती में वामन ने "रीतिरात्मा काव्यस्य" कहकर पद–रचना की विशिष्ट शैली को काव्य की आत्मा बताया। आलोचना अब शैली–वैज्ञानिक होने लगी। गुण और रीं के संबंध को व्यवस्थित किया गया।

ध्वनि संप्रदाय : आनंदवर्धन :

नौवीं शती में आनंदवर्धन ने 'ध्वन्यालोक' लिखकर क्रांति की। उन्होंने कहा कि काव्य की आत्मा ध्वनि है–

वाच्यार्थ से अधिक व्यंग्यार्थ का चमत्कार। इसने आलोचना को वाच्य से प्रतीयमान की ओर मोड़ा। अब मूल्यांकन की कसौटी यह बनी कि कवि ने कितना 'कहा' नहीं, कितना 'ध्वनित' किया।

वक्रोक्ति संप्रदाय : कुन्तक :

दसवीं शती में कुन्तक ने 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' कहा। उनके अनुसार उक्ति की वक्रता, यानी लोकोत्तर कथन–भंगिमा ही काव्य है। आलोचना का ध्यान कवि–कौशल और भाषा के सृजनात्मक विचलन पर गया।

औचित्य संप्रदाय : क्षेमेन्द्र :

ग्यारहवीं शती में क्षेमेन्द्र ने सभी सिद्धांतों को समेटते हुए कहा कि 'उचित स्थान पर उचित का निवेश' ही काव्य का प्राण है। रस, अलंकार, गुण सब उचित होने पर ही ग्राह्य हैं। इसने आलोचना को संदर्भ–सापेक्ष बनाया।

मम्मट, विश्वनाथ और जगन्नाथ : समन्वय का युग :

मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में दोष, गुण, अलंकार, शब्द–शक्ति, रस का समग्र विवेचन किया। विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" कहकर रस को पुनः केंद्र में रखा। जगन्नाथ ने "रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" कहकर रमणीयता और चमत्कार पर जोर दिया। यह युग आलोचना के समन्वय और प्रौढ़ि का युग था।

काव्यशास्त्रीय आलोचना के प्रमुख मानदंड :

काव्यशास्त्रीय आलोचना किसी रचना को परखने के लिए कुछ निश्चित मानदंड बनाती है :

- **काव्य–हेतु :** प्रतिभा, व्युत्पत्ति, अभ्यास। आलोचक देखता है कि कवि में जन्मजात शक्ति है या नहीं। केवल व्युत्पत्ति से काव्य शास्त्र बन जाता है, कविता नहीं।
- **काव्य–प्रयोजन :** यश, अर्थ, व्यवहार–ज्ञान, अनिष्ट–निवारण, आनंद। आधुनिक आलोचना में 'आनंद' ही प्रमुख माना गया "सकल प्रयोजन मौलिभूत"।
- **काव्य–स्वरूप :** शब्द और अर्थ का सहभाव। केवल शब्द–चातुर्य या केवल विचार काव्य नहीं।
- **काव्य–भेद :** दृश्य–श्रव्य, उत्तम–मध्यम–अधम, ध्वनि–गुणीभूतव्यंग्य–चित्र। यह वर्गीकरण आलोचक व सूक्ष्म भेद करने में मदद करता है।
- **दोष–निरूपण :** श्रुति–कटु, च्युत–संस्कृति, अप्रयुक्त, ग्राम्य आदि दोष। दोष काव्य की आत्मा रस का अपकर्ष करते हैं। पर ध्वनि–सिद्धांत में कहा गया कि यदि रस की प्रतीति हो रही है तो छोटे दोष नगण्य हैं।
- **गुण–विवेचन :** माधुर्य, ओज, प्रसाद। ये रस के धर्म हैं। श्रृंगार में माधुर्य, वीर में ओज, सभी में प्रसाद।
- **अलंकार–योजना :** उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि। ये रस के उत्कर्ष में सहायक होने पर ही ग्राह्य।
- **रस–निष्पत्ति :** अंतिम कसौटी। स्थायी भाव जब विभावादि से पुष्ट होकर आस्वाद्य बन जाए, तभी काव्य सफल।
- **ध्वनि और औचित्य :** उक्ति में व्यंग्य की गहराई कितनी है और हर तत्व अपने उचित स्थान पर है या नहीं।

काव्यशास्त्रीय आलोचना की विशेषताएँ :

- **शास्त्रबद्धता :** यह मनमानी रुचि पर नहीं, स्थापित सिद्धांतों पर चलती है। इसलिए इसमें वस्तुनिष्ठता आती है।

- **आनंदवादी :** इसका चरम लक्ष्य नैतिक शिक्षा या यथार्थ का उद्‌घाटन नहीं, बल्कि 'ब्रह्मानंद–सहोदर' आनंद है।
- **समन्वयवादी :** रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य सबको यह स्थान देती है। विरोध नहीं, विकास मानती है।
- **सहृदय–सापेक्ष :** यह आलोचना कवि और पाठक दोनों को ध्यान में रखती है। 'सहृदय' यानी संवेदनशील प्रबुद्ध पाठक के बिना काव्य पूरा नहीं।
- **लोकोत्तरता का आग्रह :** काव्य को लोक से भिन्न, 'लोकोत्तर आह्लाद' देने वाला माना गया। इसलिए केवल यथार्थ–चित्रण पर्याप्त नहीं।

आधुनिक संदर्भ में काव्यशास्त्रीय आलोचना की प्रासंगिकता :

आधुनिक युग में जब मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी, संरचनावादी आलोचनाएँ आईं, तो लगा कि काव्यशास्त्रीय आलोचना पुरानी पड़ गई। पर आज फिर इसकी ओर लौटना हो रहा है। कारण :

- **रचना–केंद्रित दृष्टि :** नई समीक्षा भी टेक्स्ट को केंद्र में रखती है। ध्वनि–सिद्धांत पहले ही कह चुका था कि कृति के भीतर व्यंग्य की खोज करो।
- **पाठक–प्रतिक्रिया सिद्धांत :** रस–सिद्धांत मूलतःपाठक–प्रतिक्रिया सिद्धांत ही है। सहृदय के हृदय में रस जगता है।
- **भारतीयता की खोज :** उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श में अपनी परंपरा से आलोचना के औजार खोजे जा रहे हैं। औचित्य–सिद्धांत को आज 'संदर्भ–सापेक्षता' कह सकते हैं।
- **कविता की स्वायत्तता :** काव्यशास्त्र कविता को प्रचार, नारा या दस्तावेज बनने से बचाता है। वह 'रमणीयता' और 'चमत्कार' माँगता है। नई कविता की समीक्षा में भी ये कसौटियाँ काम आती हैं।

सीमाएँ :

- यह सिद्धांत–केंद्रित होने के कारण कभी–कभी नई प्रयोगशील रचनाओं के प्रति अनुदार हो जाती है।
- सामाजिक यथार्थ और विचारधारा को यह गौण मानती है, जबकि आधुनिक कविता अक्सर वहीं से ऊर्जा लेती है।
- सहृदय की अवधारणा अभिजात्य है। सर्वहारा पाठक कहाँ खड़ा है, इसका जवाब कठिन है।

इसलिए आज जरूरत है कि काव्यशास्त्रीय आलोचना को जड़ न बनाकर गतिशील बनाया जाए। रस, ध्वनि, औचित्य को नए युगबोध से जोड़ा जाए। दलित कविता, स्त्री कविता, आदिवासी कविता के मूल्यांकन में 'लोकोत्तर' के साथ 'लोक–पीड़ा' को भी रस–निष्पत्ति का आधार माना जा सकता है।

काव्यशास्त्रीय आलोचना का स्वरूप मूलतः विश्लेषणात्मक, तात्त्विक और सौंदर्यपरक होता है। यह काव्य को केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति न मानकर एक सुसंगठित कलात्मक संरचना के रूप में देखती है। इस आलोचना पद्धति में काव्य के प्रत्येक घटक–शब्द, अर्थ, भाव, शैली, संरचना–का सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। यह न केवल काव्य के बाह्य रूप का विश्लेषण करती है, बल्कि उसके आंतरिक तत्वों की भी गहन पड़ताल करती है। काव्यशास्त्रीय आलोचना का स्वरूप वैज्ञानिक भी है, क्योंकि यह निर्धारित सिद्धांतों और मानदंडों के आधार पर काव्य का मूल्यांकन करती है। साथ ही यह संवेदनात्मक भी है, क्योंकि काव्य का मूल उद्देश्य भावों

की अभिव्यक्ति और अनुभूति है। इस प्रकार यह आलोचना बौद्धिकता और संवेदनशीलता का समन्वय प्रस्तुत करती है। यह आलोचना काव्य के शिल्प और उसके प्रभाव–दोनों को समान महत्व देती है। इसी कारण यह साहित्य के गंभीर अध्ययन के लिए एक संतुलित और समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती है।

काव्यशास्त्रीय आलोचना की एक प्रमुख विशेषता इसका सिद्धांत–आधारित होना है। भारतीय काव्यशास्त्र में अनेक सिद्धांत विकसित हुए हैं, जैसे–रस सिद्धांत, अलंकार सिद्धांत, ध्वनि सिद्धांत, रीति सिद्धांत और वक्रोक्ति सिद्धांत। ये सभी सिद्धांत काव्य के विश्लेषण के लिए एक व्यवस्थित ढांचा प्रदान करते हैं। आलोचक इन सिद्धांतों के आधार पर यह निर्धारित करता है कि काव्य में कौन–सा तत्व प्रमुख है और वह किस प्रकार से सौंदर्य और प्रभाव उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी काव्य में भावप्रधानता अधिक है, तो रस सिद्धांत के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाएगा। इसी प्रकार यदि भाषा और शैली का विशेष महत्व है, तो रीति सिद्धांत का सहारा लिया जाएगा। इस प्रकार काव्यशास्त्रीय आलोचना किसी एक दृष्टिकोण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि विभिन्न सिद्धांतों के समन्वय से काव्य का समग्र मूल्यांकन करती है। यही इसकी वैज्ञानिकता और व्यापकता का प्रमाण है।

रस सिद्धांत काव्यशास्त्रीय आलोचना का सबसे महत्वपूर्ण आधार है। आचार्य भरतमुनि ने रस को काव्य का प्राण माना है। रस वह अनुभूति है जो पाठक या दर्शक के हृदय में उत्पन्न होती है। काव्यशास्त्रीय आलोचना में यह देखा जाता है कि काव्य में स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव किस प्रकार से संयोजित होकर रस की सृष्टि करते हैं। उदाहरण के लिए, करुण रस में दुःख की अनुभूति उत्पन्न होती है, जबकि श्रृंगार रस में प्रेम और सौंदर्य का अनुभव होता है। आलोचक यह भी देखता है कि काव्य में रस की अभिव्यक्ति कितनी प्रभावशाली और स्वाभाविक है। यदि रस की निष्पत्ति सफल होती है, तो काव्य को उत्कृष्ट माना जाता है। इस प्रकार रस सिद्धांत काव्य के भावात्मक पक्ष का मूल्यांकन करने का एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाने वाले तत्व होते हैं। काव्यशास्त्रीय आलोचना में अलंकारों का विशेष महत्व है, क्योंकि वे काव्य को आकर्षक और प्रभावशाली बनाते हैं। उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक आदि अलंकार काव्य में सौंदर्य और संगीतात्मकता का संचार करते हैं। आलोचक यह विश्लेषण करता है कि कवि ने अलंकारों का प्रयोग किस प्रकार किया है और वे काव्य के अर्थ को किस प्रकार समृद्ध करते हैं। यदि अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक और अर्थपूर्ण है, तो वे काव्य की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं, लेकिन यदि उनका प्रयोग केवल सजावट के लिए किया गया है, तो वे काव्य को कृत्रिम बना सकते हैं। इस प्रकार काव्यशास्त्रीय आलोचना अलंकारों के उचित और संतुलित प्रयोग पर विशेष ध्यान देती है।

ध्वनि सिद्धांत के अनुसार काव्य का वास्तविक अर्थ उसके प्रत्यक्ष शब्दार्थ में नहीं, बल्कि उसके व्यंजित अर्थ में निहित होता है। आचार्य आनंदवर्धन ने इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया और यह बताया कि काव्य की श्रेष्ठता उसकी ध्वनि में निहित होती है। काव्यशास्त्रीय आलोचना इस गूढ़ अर्थ को समझने का प्रयास करती है। आलोचक यह देखता है कि काव्य में किस प्रकार से संकेत, प्रतीक और लक्षणा के माध्यम से गहरे अर्थ प्रकट किए गए हैं। यह प्रक्रिया पाठक को काव्य के गहन स्तरों तक पहुँचाती है। ध्वनि सिद्धांत काव्य की व्यंजना शक्ति को उजागर करता है और यह सिद्ध करता है कि काव्य केवल शब्दों का समूह नहीं, बल्कि अर्थ की बहुस्तरीय, रीति सिद्धांत काव्य की भाषा और शैली से संबंधित है। आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना है। इस

सिद्धांत के अनुसार काव्य की सुंदरता उसकी शैली में निहित होती है। काव्यशास्त्रीय आलोचना में यह देखा जाता है कि कवि ने किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है—क्या वह सरल है या जटिल, मधुर है या ओजपूर्ण। भाषा के गुण—प्रसाद, माधुर्य और ओज—का विश्लेषण भी इसी के अंतर्गत किया जाता है। शैली काव्य की अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाती है और उसे विशिष्ट पहचान प्रदान करती है।

वक्रोक्ति सिद्धांत काव्य की अभिव्यक्ति की विशिष्टता को स्पष्ट करता है। आचार्य कुंतक ने इसे प्रतिपादित करते हुए कहा कि काव्य की सुंदरता उसकी वक्रता में निहित होती है। वक्रोक्ति का अर्थ है—सीधे न कहकर कलात्मक और अप्रत्यक्ष ढंग से कहना। काव्यशास्त्रीय आलोचना में यह देखा जाता है कि कवि ने किस प्रकार से वक्रता का प्रयोग किया है और वह काव्य को किस प्रकार विशिष्ट बनाती है। यह सिद्धांत काव्य की रचनात्मकता और कल्पनाशीलता को उजागर करता है।

काव्यशास्त्रीय आलोचना का प्रमुख उद्देश्य काव्य के सौंदर्य को समझना और उसका मूल्यांकन करना है। यह आलोचना नैतिक या सामाजिक दृष्टिकोण से अधिक काव्य की कलात्मकता पर ध्यान देती है। इसमें काव्य के रूप, लय, भाषा, भाव और संरचना के माध्यम से उत्पन्न सौंदर्य का विश्लेषण किया जाता है। यह दृष्टिकोण काव्य को एक स्वतंत्र कला के रूप में स्थापित करता है।

काव्यशास्त्रीय आलोचना काव्य की आंतरिक संरचना पर विशेष ध्यान देती है। यह काव्य के बाहरी संदर्भों की अपेक्षा उसके अंतर्निहित तत्वों का विश्लेषण करती है। इसमें काव्य के कथ्य, भाषा, शैली, प्रतीक और संरचना का गहन अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार यह आलोचना काव्य के मूल स्वरूप को समझने में सहायक होती है।

काव्यशास्त्रीय आलोचना साहित्यिक अध्ययन को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करती है। यह आलोचना निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर काव्य का विश्लेषण करती है और उसके गुण—दोषों का निष्पक्ष मूल्यांकन करती है। इसके माध्यम से न केवल काव्य की गुणवत्ता का निर्धारण किया जा सकता है, बल्कि साहित्यिक सृजन की प्रक्रिया को भी समझा जा सकता है। इस प्रकार यह आलोचना साहित्य के गहन अध्ययन के लिए अत्यंत उपयोगी है।

निष्कर्ष :

काव्यशास्त्रीय आलोचना का स्वरूप नियम और रस, बुद्धि और ह्रदय, परंपरा और सृजन का समन्वय है। भरत से जगन्नाथ तक इसने काव्य को समझने की एक पूरी दार्शनिकी विकसित की। इसका केंद्रीय सूत्र है कि काव्य का मूल्य उसकी आस्वाद्यता में है। दोष—गुण, अलंकार—रीति, ध्वनि—वक्रोक्ति सब इसी आस्वाद को पुष्ट करने के उपकरण हैं। आधुनिक युग में भी जब हम पूछते हैं कि ष्कविता अच्छी क्यों लगी?ष्, तो अनजाने में हम रस—सिद्धांत के ही निकट पहुँचते हैं। अतः काव्यशास्त्रीय आलोचना केवल अतीत की वस्तु नहीं, बल्कि भविष्य के लिए भी एक जीवंत संदर्भ—बिंदु है। जरूरत है उसे नए प्रश्नों से टकराने देने की, ताकि वह रूढ़ि न बने, दृष्टि बनी रहे।

संदर्भ सूची :

1. सिंह डॉक्टर इंद्रपाल 'इंद्र' साहित्य चिंतन, प्रकाशक— वागेश्वरी प्रकाशन आगरा, प्रथम—संस्करण—अगस्त, 1990।

2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र सिद्धांत, सिंह डॉक्टर शेर हो रहा है, मिश्र डॉक्टर शंकर, प्रकाशन केंद्र सीतापुर रोड लखनऊ, प्रथम–संस्करण– 1992 ।
3. चौधरी सत्येंद्र 'भारतीय काव्यशास्त्र', प्रकाशक–नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. रवत्ती, डॉक्टर एस.पी, पाश्चात्य सन लोचन के सिद्धांत, प्रकाशन–अमर, 15 जून, 2016 ।
5. चौधरी सत्यदेव, गुप्त शान्तिस्वरूप भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र, प्रकाशन– अशोक दिल्ली, 1 जनवरी 2024।
6. शुक्ल आचार्य रामचंद्र 'हिंदी साहित्य का इतिहास', प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (वाराणसी), प्रकाशन वर्ष : 1929 परिष्कृत होकर स्वतंत्र पुस्तक के रूप में।
7. मिश्र शिव कुमार 'साहित्य का इतिहास एवं संस्कृति', प्रकाशन–वाणी प्रकाशन, 2009 ।
8. परिहार कालूराम 'हिंदी आलोचना की परंपरा और डॉक्टर रामविलास शर्मा' प्रकाशक–अनामिका पब्लिशर्स और डिस्ट्रीब्यूटर प्रकाशन, वर्ष 2009 ।
9. डॉक्टर नागेंद्र, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, प्रकाशक–ओरिएंटल बुक डिपो, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष–1955
10. शुक्ला आचार्य रामचंद्र, 'चिंतामणि भाग –1', प्रकाशक माइनस इंडियन प्रेस, प्रज्ञा, प्रकाशन वर्ष–काशी, नगरी प्रचारिणी सभा, प्रकाशन वर्ष– 1939।
11. मिश्र पं. रामदहिन, काव्यदर्पण प्रकाशक– भारती भवन, स्थान– पटना, प्रथम प्रकाशन–1947 ।
12. मिश्र डॉक्टर भागीरथ, 'काव्यशास्त्र', प्रकाशन– वाराणसी संशोधित एवं परिवर्तित, पंचम संस्करण ।

ईमेल – rekhatripathi1272@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 187-190

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सरकारी महाविद्यालयों के प्रति विद्यार्थियों का घटता रुझान : एक शोध–पत्र

डॉ. कविता शर्मा
सहायक आचार्य,
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ,
शाहपुराबाग, आमेर रोड, जयपुर, राजस्थान।

सारांश :

वर्तमान समय में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति देखने को मिल रही है – सरकारी महाविद्यालयों के प्रति विद्यार्थियों का घटता रुझान। यह शोध–पत्र इस प्रवृत्ति के कारणों, प्रभावों तथा संभावित समाधान पर प्रकाश डालता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि निजी संस्थानों की बढ़ती संख्या, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की अपेक्षा, आधारभूत सुविधाओं की कमी, तथा रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रमों का अभाव इस गिरावट के प्रमुख कारण हैं। यह शोध–पत्र भारत में सरकारी महाविद्यालयों के प्रति विद्यार्थियों के घटते रुझान का विश्लेषण करता है। शोध में सांख्यिकीय डेटा, केस स्टडी और सर्वेक्षण विश्लेषण का उपयोग किया गया है।

1. प्रस्तावना :

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के विकास का आधार होती है। भारत में सरकारी महाविद्यालय लंबे समय से उच्च शिक्षा का प्रमुख स्रोत रहे हैं। परंतु हाल के वर्षों में विद्यार्थियों का झुकाव निजी महाविद्यालयों की ओर बढ़ा है। यह परिवर्तन शिक्षा व्यवस्था के लिए चिंता का विषय है, क्योंकि सरकारी संस्थान अपेक्षाकृत सुलभ और किफायती होते हैं।

भारत में उच्च शिक्षा का विस्तार तेजी से हुआ है, लेकिन इसके साथ ही शिक्षा की गुणवत्ता और पहुंच में असमानता भी बढ़ी है। सरकारी महाविद्यालय, जो कभी शिक्षा का मुख्य आधार थे, आज विद्यार्थियों के लिए कम आकर्षक बनते जा रहे हैं।

2. अध्ययन के उद्देश्य :

1. सरकारी महाविद्यालयों के प्रति घटते रुझान के कारणों की पहचान करना।
2. इस प्रवृत्ति के सामाजिक एवं शैक्षिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

3. अनुसंधान पद्धति :

यह शोध द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें विभिन्न रिपोर्ट्स, शोध–पत्रों, और शिक्षा से संबंधित आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है। साथ ही विद्यार्थियों और शिक्षकों की राय को भी समाहित किया गया है।

प्रकार : वर्णनात्मक।

सैंपल : शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के छात्र।

डेटा स्रोत :

- प्राथमिक डेटा (सर्वेक्षण : 100 विद्यार्थियों पर आधारित)
- द्वितीयक डेटा (रिपोर्ट्स, सरकारी आँकड़े)
- डेटा विश्लेषण (Data Analysis)

तालिका 1 : विद्यार्थियों की प्राथमिकता (% में)

संस्थान का प्रकार	प्रतिशत (%)
सरकारी महाविद्यालय	32%
निजी महाविद्यालय	68%

निष्कर्ष : अधिकांश विद्यार्थी निजी संस्थानों को प्राथमिकता देते हैं।

तालिका 2 : सरकारी महाविद्यालयों से असंतोष के कारण

कारण	प्रतिशत (%)
खराब इंफ्रास्ट्रक्चर	40%
शिक्षकों की कमी	25%
प्लेसमेंट की कमी	20%
पुराना पाठ्यक्रम	15%

4. प्रमुख कारण

4.1 आधारभूत सुविधाओं की कमी :

कई सरकारी महाविद्यालयों में आधुनिक प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय, और डिजिटल संसाधनों का अभाव है। सरकारी संस्थानों में फंडिंग की कमी एक बड़ी समस्या है।

4.2 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की कमी :

शिक्षकों की कमी, नियमित कक्षाओं का अभाव, तथा पारंपरिक शिक्षण पद्धतियाँ विद्यार्थियों को आकर्षित नहीं कर पातीं।

4.3 निजी महाविद्यालयों का आकर्षण :

निजी संस्थान आधुनिक सुविधाएँ, प्लेसमेंट अवसर, और व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं। निजी महाविद्यालय बेहतर प्लेसमेंट और इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रदान करते हैं।

4.4 रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रमों का अभाव :

सरकारी महाविद्यालयों में अक्सर पुराने और सैद्धांतिक पाठ्यक्रम ही पढ़ाए जाते हैं, जो वर्तमान नौकरी

बाजार की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाते। विद्यार्थियों की प्राथमिकता अब कैरियर–ओरिएंटेड शिक्षा की ओर बढ़ रही है।

4.5 प्रशासनिक लापरवाही :

नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन की कमी और प्रबंधन में शिथिलता भी एक महत्वपूर्ण कारण है।

5. प्रभाव

5.1 सामाजिक असमानता में वृद्धि :

निजी शिक्षा महंगी होने के कारण आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के छात्र पीछे रह जाते हैं।

5.2 सरकारी संसाधनों का दुरूपयोग :

सरकारी महाविद्यालयों में घटती छात्र संख्या के कारण उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता।

5.3 शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रभाव :

प्रतिस्पर्धा की कमी से सरकारी संस्थानों में सुधार की गति धीमी हो जाती है।

6. केस स्टडी

केस स्टडी 1 **:**

एक जिला स्तरीय सरकारी महाविद्यालय राजस्थान के एक सरकारी महाविद्यालय में छात्र संख्या पिछले 5 वर्षों में 40% तक घट गई।

मुख्य कारण :

- प्रयोगशालाओं की कमी।
- नियमित कक्षाओं का अभाव।
- प्लेसमेंट सेल का न होना।

परिणाम : छात्र निजी कॉलेजों की ओर स्थानांतरित हो गए।

7. सर्वे प्रश्नावली :

1. आप किस प्रकार के महाविद्यालय को प्राथमिकता देते हैं?
2. क्या आपको सरकारी महाविद्यालय में पर्याप्त सुविधाएँ मिलती हैं?
3. क्या सरकारी महाविद्यालय रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं?
4. आपके अनुसार सबसे बड़ी समस्या क्या है?
5. क्या आप सरकारी महाविद्यालय में सुधार चाहते हैं?

8. चर्चा :

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सरकारी महाविद्यालयों को केवल सस्ती शिक्षा के विकल्प के रूप में देखा जा रहा है, न कि गुणवत्ता के केंद्र के रूप में। यह धारणा बदलने के लिए ठोस सुधार आवश्यक हैं।

9. समाधान

9.1 आधारभूत संरचना का विकास :

सरकार को आधुनिक सुविधाओं के विकास पर ध्यान देना चाहिए।

9.2 शिक्षकों की गुणवत्ता और संख्या में सुधार :

योग्य शिक्षकों की नियुक्ति और प्रशिक्षण आवश्यक है।

9.3 पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण :

रोजगारोन्मुख और तकनीकी पाठ्यक्रमों को शामिल किया जाना चाहिए।

9.4 डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा :

ऑनलाइन लर्निंग, स्मार्ट क्लासरूम, और ई–लाइब्रेरी का विस्तार होना चाहिए।

9.5 उद्योग-शिक्षा सहयोग :

महाविद्यालयों को उद्योगों के साथ जोड़कर व्यावहारिक अनुभव प्रदान किया जाना चाहिए।

10. निष्कर्ष :

सरकारी महाविद्यालयों के प्रति विद्यार्थियों का घटता रुझान एक गंभीर समस्या है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। यदि समय रहते आवश्यक सुधार नहीं किए गए, तो यह प्रवृत्ति शिक्षा प्रणाली को कमजोर कर सकती है। सरकार, शिक्षण संस्थानों और समाज को मिलकर इस दिशा में कार्य करना होगा ताकि सरकारी महाविद्यालय पुनः विद्यार्थियों के लिए आकर्षण का केंद्र बन सकें।

सुझाव :

- PPP मॉडल (Public-Private Partnership) लागू किया जाए।
- स्किल–बेस्ड कोर्स शुरू किए जाएँ।
- डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर विकसित किया जाए।
- प्लेसमेंट सेल को मजबूत किया जाए।
- शिक्षकों की नियमित भर्ती और प्रशिक्षण किया जाए।

संदर्भ :

1. UGC रिपोर्ट।
2. AISHE (All India Survey on Higher Education)
3. विभिन्न शिक्षा जर्नल्स।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 191-200
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Parental Stress, Mental Health, and Coping Strategies (A Review Paper)

Akanksha Tiwari
Research Scholar, (Session 2021-2022)
Department of Social Work, University of Lucknow
Snehlata Jaiswal
Research Scholar, (Session 2021-2022)
Department of Social Work, University of Lucknow
Minaxi Sharma
Research Scholar, (Session 2021-2022)
Department of Social Work, University of Lucknow

1.0 Parenting a child with autism spectrum disorder by Malhi et al. (2022) :

This qualitative study published in the Indian Journal of Public Health, explores the lived experiences, perceptions, and challenges of parents raising a child with Autism Spectrum Disorder (ASD) in India. The primary objective of the study was to understand parents' experiences related to the process of obtaining an ASD diagnosis, their emotional responses at different stages, post-diagnosis challenges, and the perceived needs for formal and informal support.

The study employed a qualitative research design using semi-structured interviews to collect in-depth data. Participants included 28 caregivers (predominantly mothers) of children aged 3–8 years who had received an ASD diagnosis within the previous year. The participants were recruited from a pediatric psychology and neuro developmental clinic at a tertiary care center in North India.

Findings revealed that parents' experiences could be understood across three broad stages: before diagnosis, at the time of diagnosis, and after diagnosis. Prior to diagnosis, many parents noticed early developmental concerns such as delayed speech, poor social interaction, and atypical behaviors. However, these signs were often normalized or dismissed by family members, community elders, or healthcare providers. Lack of awareness, misinformation, and inadequate guidance from frontline health workers contributed to delayed help-seeking and prolonged uncertainty.

At the time of diagnosis, parents reported intense emotional reactions, including shock, denial, grief, guilt, fear, and helplessness. The diagnostic process itself was described as stressful and emotionally overwhelming. Many parents consulted multiple healthcare professionals for confirmation, reflecting confusion, distrust, and difficulty accepting the diagnosis. Several parents expressed feelings of blame and self-doubt, questioning their parenting practices or past decisions.

After the diagnosis, parents faced a wide range of challenges that affected their psychological well-being, family relationships, and social functioning. High levels of parental stress were reported due to behavioral difficulties in children, caregiving burden, disrupted daily routines, and concerns about the child's future. Marital relationships were often strained, with increased conflicts, role overload, and reduced emotional intimacy. Mothers, in particular, experienced career disruption, social withdrawal, and emotional exhaustion.

The study concludes that parenting a child with ASD in India is shaped by complex interactions between emotional responses, healthcare barriers, sociocultural norms, and systemic limitations. The authors highlight the urgent need for culturally sensitive, family-centered, and multidisciplinary care models. They recommend improved awareness, early screening, better communication during diagnosis, expanded support services, and policies that reduce stigma and financial burden on families.

2.0 "A Survey of Parents with Children on Autism Spectrum: Experience with Services and Treatments" by Tracy A Becerra, PhD, OTR/L; Maria L Massolo, PhD; Vincent M Yau, PhD; Ashli A Owen-Smith, PhD; Frances L Lynch, PhD; Phillip M Crawford, MS; Kathryn A Pearson; Magdalena E Pomichowski, MPH; Virginia P Quinn, PhD; Cathleen K Yoshida, MA; Lisa A Croen, PhD

The research article explores how parents of children with Autism Spectrum Disorder (ASD) access, use, and perceive various services and treatments. Autism Spectrum Disorder is described as a lifelong neuro developmental condition that affects communication, social interaction, and behavior. While the clinical features of ASD are well documented, comparatively less attention has been paid to understanding parents' experiences in managing the health, developmental, and psychosocial needs of their children. This study addresses that gap by examining treatment patterns and service utilization from a parental perspective.

The primary objective of the study is to describe the development of a large autism research resource across multiple healthcare delivery systems and to analyze the types of services and treatments used by children with ASD and their families. The researchers emphasize the importance of understanding real-world treatment practices, as families often pursue multiple interventions simultaneously, ranging from evidence-based therapies to complementary and alternative treatments.

The study uses survey data collected from parents of children diagnosed with ASD who were enrolled in large healthcare systems. Parents were asked to report their child's use of medical services, behavioral and educational interventions, mental health services, and alternative treatments. Demographic information, clinical characteristics of the child, and patterns of service use were also analyzed.

Findings from the survey reveal that most children with ASD receive a wide range of services rather than a single form of treatment. Commonly used services include speech and language therapy, occupational therapy, behavioral interventions such as Applied Behavior Analysis (ABA), and special education services. Many children also receive mental health services and medication to manage associated symptoms such as anxiety, attention difficulties, or behavioral challenges. The study highlights that service use often varies by the child's age, symptom severity, and presence of co-occurring conditions. In addition to conventional treatments, a substantial number of families reported using complementary and alternative therapies. These included special diets, nutritional supplements, and other non-traditional interventions.

In conclusion, the paper emphasizes that families of children with ASD often rely on a complex combination of medical, behavioral, educational, and alternative services. The authors argue that understanding parental experiences is essential for improving service delivery, care coordination, and policy planning. The study highlights the need for integrated, family-centered care models and stronger evidence to guide treatment decisions.

3.0 "Psychological Stress in Parents of Children with Autism Spectrum Disorder" published in the National Journal of Community Medicine (2024)

It explores the level and nature of psychological stress experienced by parents raising children with Autism Spectrum Disorder (ASD). The study highlights that parenting a child with ASD presents unique emotional, social, and psychological challenges that often place parents under considerable stress.

The main objective of the study was to assess the psychological stress levels among parents of children with ASD and to identify factors contributing to this stress. The authors emphasize that ASD is a lifelong neuro developmental condition characterized by communication difficulties, social interaction impairments, and repetitive behaviors. These characteristics demand continuous care, supervision, and emotional involvement from parents, which can significantly affect their mental well-being.

Using a quantitative research approach, the study collected data from parents of children diagnosed with ASD through standardized psychological stress assessment tools. The participants

included both mothers and fathers, allowing for a broader understanding of parental stress experiences. The study examined various dimensions of stress, including emotional strain, anxiety, feelings of burden, and concerns about the child's future.

The findings revealed that parents of children with ASD experience moderate to high levels of psychological stress. Mothers generally reported higher stress levels compared to fathers, which the authors attribute to mothers often assuming primary caregiving responsibilities. Factors such as the severity of the child's autistic symptoms, behavioral problems, communication difficulties, and lack of independence were strongly associated with increased parental stress. Additionally, social factors such as limited social support, stigma, financial burden, and insufficient access to specialized services further intensified stress levels.

In conclusion, the authors stress that psychological stress among parents of children with ASD is a significant public health concern that requires immediate attention. The study recommends the development of comprehensive support systems, including counseling services, parent training programs, and community-based interventions. The article underscores the importance of addressing parental mental health as a key component of effective ASD management and intervention strategies

4.0 "Investigating the Parenting Style of Parents of Children with Autism Spectrum Disorder" Vali shiri1, Ali S.Hosseini2, Zahra nobakht3, masoud nosratabadi4, Mohsen vahedi5, Ebrahim Pishyareh6†

This systematic review article, examines existing research on parenting styles adopted by parents of children with Autism Spectrum Disorder (ASD) and their influence on child outcomes. The study is grounded in the recognition that parental behavior plays a crucial role in shaping the emotional, social, and behavioral development of children with ASD, whose needs often differ significantly from typically developing children.

The primary objective of the review was to identify the predominant parenting styles used by parents of children with ASD and to understand how these styles affect child behavior and development. To achieve this, the authors conducted a comprehensive literature search across major academic databases, including ProQuest, Scopus, PubMed, and Web of Science. The search covered studies published between 2000 and March 2024 and used keywords related to autism spectrum disorder and various parenting styles such as authoritative, authoritarian, permissive, and supportive parenting.

After removing duplicate records and applying inclusion and exclusion criteria, 23 relevant articles were selected for final analysis. The quality of the included studies was assessed using established appraisal tools, namely the Critical Appraisal Skills Programme (CASP) and the Centre for Evidence-Based Medicine (CEBM). The methodological quality of the studies ranged from low

to moderate, indicating some limitations in the existing research but still providing valuable insights. The findings revealed that the authoritative parenting style—characterized by warmth, responsiveness, structure, and clear expectations—was the most commonly reported and effective style among parents of children with ASD. Out of the reviewed studies, 12 focused on authoritative parenting, highlighting its association with positive child outcomes such as improved social skills, reduced behavioral problems, and better emotional regulation. In contrast, 5 studies examined authoritarian parenting, 3 addressed permissive parenting, and 3 explored supportive parenting styles. Authoritarian and permissive styles were generally found to be less effective and, in some cases, linked to increased behavioral challenges in children with ASD.

The review concludes that adopting an authoritative parenting approach can contribute significantly to positive developmental outcomes for children with ASD. The authors emphasize that, despite the unique challenges associated with ASD, parenting strategies that balance firm guidance with emotional support are beneficial. The study also underscores the importance of educating and training parents about effective parenting practices tailored to ASD. Overall, the review highlights the need for further high-quality research and the development of evidence-based parenting interventions to support families of children with autism spectrum disorder.

5.0 "Experience and coping strategies of parents of children with autism: A qualitative study"

The study "Experience and coping strategies of parents of children with autism: A qualitative study" explores the lived experiences of parents raising children with Autism Spectrum Disorder (ASD) and the strategies they use to cope with the associated challenges. Using a qualitative research design, the authors aim to gain an in-depth understanding of the emotional, social, and practical realities faced by parents, particularly in the Indian context where awareness and support services for autism are still developing.

The researchers employed in-depth interviews with parents of children diagnosed with autism. Through thematic analysis, several key themes emerged that reflect both the difficulties parents encounter and the ways they adapt to their circumstances. One of the central findings relates to the emotional impact of diagnosis. Parents reported feelings of shock, denial, guilt, fear, and sadness upon learning about their child's condition. Many experienced confusion due to limited awareness of autism and uncertainty about their child's future. Mothers, in particular, described higher emotional burden because of their primary caregiving role.

Another major theme was social stigma and lack of support. Parents frequently faced negative attitudes, blame, and misunderstanding from relatives, neighbors, and the wider community. Social isolation was common, as families avoided public spaces due to fear of judgment over the child's

behavior. Participants also highlighted inadequate institutional support, including limited access to trained professionals, high costs of therapy, and lack of autism-friendly educational settings.

The study also documents the daily caregiving challenges faced by parents, such as managing behavioral issues, communication difficulties, and delays in social and academic development. Balancing caregiving responsibilities with employment and household duties added to parental stress, often affecting marital relationships and overall family functioning.

Despite these challenges, parents demonstrated various coping strategies. Acceptance of the child's condition emerged as a crucial step toward emotional adjustment. Many parents relied on problem-focused coping, such as seeking information about autism, consulting specialists, enrolling children in therapies, and developing structured routines. Emotion-focused coping strategies were also evident, including reliance on spirituality, faith, and positive reframing of the child's condition. Support from spouses, immediate family members, and parent support groups played an important role in reducing stress and fostering resilience.

The authors conclude that while parents of children with autism face significant emotional, social, and practical challenges, they also show remarkable adaptability and strength. The study emphasizes the need for increased awareness about autism, early diagnosis, affordable intervention services, and psychosocial support for parents. Policymakers and professionals are urged to develop family-centered support systems that address both the needs of children with autism and the well-being of their caregivers

6.0 Autism Spectrum Disorder (ASD) :

Autism Spectrum Disorder (ASD) is a complex neurodevelopmental condition characterized by persistent difficulties in social communication, interaction, and restricted or repetitive patterns of behavior, interests, or activities. The term "spectrum" reflects the wide variation in symptoms, severity, and functional abilities among individuals with autism. ASD typically manifests in early childhood and continues throughout the lifespan, influencing not only the individual diagnosed but also the family members who provide care and support, particularly parents.

Parents of children with Autism Spectrum Disorder play a central role in their child's development, care, and rehabilitation. From the moment of diagnosis, parents often experience a profound emotional impact that may include shock, denial, guilt, anxiety, and grief over unmet expectations. The process of understanding the diagnosis and adjusting to the lifelong nature of autism can be overwhelming, especially in societies where awareness about ASD is limited. Parents must navigate complex healthcare systems, seek appropriate therapies, and make crucial decisions regarding education and social integration, all of which demand significant emotional, financial, and time-related

resources.

Raising a child with ASD presents unique challenges in daily life. Communication difficulties, behavioral problems, sensory sensitivities, and delayed developmental milestones often require constant supervision and specialized caregiving strategies. These challenges can lead to elevated levels of parental stress, fatigue, and mental health concerns such as depression and anxiety. Mothers frequently report a higher caregiving burden due to traditional gender roles, while fathers may experience stress related to financial responsibilities and social expectations.

Despite these adversities, many parents of children with ASD demonstrate resilience and adaptability. They develop various coping strategies, such as seeking information, building supportive networks, relying on spirituality or faith, and actively participating in their child's therapy and education. Understanding parents' experiences, challenges, and coping mechanisms is essential for designing effective family-centered interventions and support systems.

Therefore, a study on parents having children with Autism Spectrum Disorder is crucial to explore their psychological, social, and practical experiences in depth. Such research can provide valuable insights for healthcare professionals, educators, social workers, and policymakers to develop targeted support services, reduce stigma, and improve the quality of life of both children with ASD and their families.

7.0 "Experience and coping strategies of parents of children with autism: A qualitative study" Archana Bagale 1*, Anil Raj Ojha2, Machhindra Lamichhane3

The study explores the lived experiences of parents raising children with Autism Spectrum Disorder (ASD) and the strategies they use to cope with the associated challenges. Using a qualitative research design, the authors aim to gain an in-depth understanding of the emotional, social, and practical realities faced by parents, particularly in the Indian context where awareness and support services for autism are still developing.

The researchers employed in-depth interviews with parents of children diagnosed with autism. Through thematic analysis, several key themes emerged that reflect both the difficulties parents encounter and the ways they adapt to their circumstances. One of the central findings relates to the emotional impact of diagnosis. Parents reported feelings of shock, denial, guilt, fear, and sadness upon learning about their child's condition. Another major theme was social stigma and lack of support. Parents frequently faced negative attitudes, blame, and misunderstanding from relatives, neighbors, and the wider community. Social isolation was common, as families avoided public spaces due to fear of judgment over the child's behavior. Participants also highlighted inadequate institutional support, including limited access to trained professionals, high costs of therapy, and lack of autism-friendly

educational settings.

Despite these challenges, parents demonstrated various coping strategies. Acceptance of the child's condition emerged as a crucial step toward emotional adjustment. Many parents relied on problem-focused coping, such as seeking information about autism, consulting specialists, enrolling children in therapies, and developing structured routines. Emotion-focused coping strategies were also evident, including reliance on spirituality, faith, and positive reframing of the child's condition. Support from spouses, immediate family members, and parent support groups played an important role in reducing stress and fostering resilience.

The authors conclude that while parents of children with autism face significant emotional, social, and practical challenges, they also show remarkable adaptability and strength. The study emphasizes the need for increased awareness about autism, early diagnosis, affordable intervention services, and psychosocial support for parents. Policymakers and professionals are urged to develop family-centered support systems that address both the needs of children with autism and the well-being of their caregivers.

8.0 Quality of life in parents of children with Autism Spectrum Disorder: Emphasizing challenges in the Indian context

Autism Spectrum Disorder (ASD) is a lifelong neurodevelopmental condition that affects a child's communication, social interaction, cognition, and emotional functioning. Due to its chronic nature and the increasing rate of diagnosis, raising a child with ASD places significant psychological, social, and economic demands on parents. This study focuses on understanding the quality of life (QOL) of parents of children with ASD in the Indian context, where cultural expectations, stigma, and limited support services may intensify parental burden.

The primary purpose of the study was to assess various domains of quality of life among parents and to identify factors that contribute to stress and reduced well-being. The authors emphasize that parental experiences differ across cultures; therefore, findings from Western countries may not fully represent challenges faced by Indian families. In India, caregiving responsibilities largely fall on parents—especially mothers—often without adequate institutional or community support.

The study highlights that parent of children with ASD experience lower quality of life across physical, psychological, social, and environmental domains. Psychologically, parents commonly report high levels of stress, anxiety, depression, frustration, and emotional exhaustion. Social isolation is another major concern, as stigma surrounding disability often leads to reduced social participation and lack of understanding from relatives and the community. Financial strain is also prominent due to long-term therapy costs, special education needs, and limited government support.

Family dynamics are significantly affected, as altered parent–child interactions and constant care giving demands disrupt routine family life. Mothers, in particular, tend to report poorer QOL than fathers, as they are more directly involved in daily care giving. The severity of the child's symptoms and behavioral challenges further influence parental stress and life satisfaction.

The authors conclude that improving parental quality of life is essential not only for caregivers' well-being but also for the effective development and rehabilitation of children with ASD. The study underscores the urgent need for early intervention services, parent counseling, psycho education, social support systems, and culturally sensitive policies in India. Strengthening community awareness and reducing stigma can also play a vital role in enhancing the overall quality of life for parents of children with ASD.

9.0 Stress and Parents of Children with Autism: A Review of Literature (2016) :

It synthesizes existing research to examine the factors that influence parental stress among parents raising children with Autism Spectrum Disorder (ASD). The paper has two primary objectives: first, to identify and integrate key factors shaping parents' experiences of caring for a child with ASD; and second, to examine factors that influence parental stress levels and their decision-making regarding the use of autism-related services.

The review highlights that parents of children with ASD consistently report significantly higher stress levels than parents of typically developing children or children with other disabilities. This heightened stress stems from the persistent and multifaceted challenges associated with ASD, including communication difficulties, behavioral problems, social impairments, and sensory sensitivities. These challenges often require constant supervision and intensive caregiving, which can be emotionally, physically, and mentally exhausting for parents.

Bonis emphasizes that parental stress is influenced by child-related factors such as the severity of autism symptoms, presence of comorbid conditions (e.g., intellectual disability, ADHD, anxiety), and behavioral issues like aggression, self-injury, or sleep disturbances. More severe symptoms and challenging behaviors are strongly associated with higher parental stress, particularly among primary caregivers, most often mothers.

In conclusion, the article demonstrates that parenting a child with ASD places parents at high risk for chronic stress due to child-related challenges, family pressures, and systemic barriers. Understanding these factors is vital for developing effective interventions, guiding clinical practice, and informing future research aimed at improving outcomes for both parents and children with ASD.

References :

- Susan Bonis (2016) Stress and Parents of Children with Autism: A Review of Literature, Issues

in Mental Health Nursing, 37:3, 153-163, DOI: 10.3109/01612840.2015.1116030

- Investigating the Parenting Style of Parents of Children with Autism Spectrum Disorder" Vali shiri1, Ali S.Hosseini2, Zahra nobakht3, masoud nosratabadi4, Mohsen vahedi5, Ebrahim Pishyareh6†
- A Systematic Review of Family Functioning in Families of Children on the Autism Spectrum Gwendoline DESQUENNE GODFREY1 · Naomi DOWNES1 · Emilie CAPPE1,2
- Experience and coping strategies of parents of children with autism: A qualitative study Archana Bagale 1*, Anil Raj Ojha2, Machhindra Lamichhane3
- Quality of life in parents of children with Autism spectrum disorder: Emphasizing challenges in the Indian context Suma Raju [1], PEV Hepsibah [1], MKNiharika [1] PMID: **37213591** PMCID: PMC10198003

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 201-208
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रूप सिंह चंदेल के उपन्यास 'नटसार' में सामाजिक मूल्य–विघटन

मनीषा पाठक, शोधार्थी (हिन्दी)
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, 452001
डॉ. वंदना चराटे, सह प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी),
भेरूलाल पाटीदार शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू।

सारांश :

प्रस्तुत शोध–पत्र में रूप सिंह चंदेल के उपन्यास 'नटसार' के माध्यम से समकालीन समाज में व्याप्त सामाजिक एवं नैतिक मूल्य–विघटन का विश्लेषण किया गया है। उपन्यास में विश्वविद्यालयी राजनीति, भ्रष्टाचार, पारिवारिक विघटन तथा स्त्री–शोषण जैसी समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। उपन्यास का केंद्रीय पात्र श्यामल स्वार्थपरता, अवसरवादिता और नैतिक पतन का प्रतिनिधि पात्र है, जिसके माध्यम से आधुनिक समाज की विकृत मानसिकता उजागर होती है। इसके विपरीत सविता जैसे स्त्री पात्र संघर्षशीलता, आत्मसम्मान एवं नैतिक दृढ़ता का परिचय देते हैं, जो मूल्य–पुर्नस्थापना की संभावना को भी इंगित करते हैं। यह शोध–पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'नटसार' केवल सामाजिक विघटन का चित्रण नहीं करता बल्कि नैतिक मूल्यों के ह्रास के प्रति चेतना जगाते हुए उनके पुर्नस्थापन की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है।

बीज शब्द : नटसार, नैतिक संकट, सामाजिक मूल्य, रूप सिंह चंदेल, पारिवारिक विघटन।

मूल्य शब्द का तात्पर्य जीवन के मानदंडों से होता है। मूल्य समाज की सभ्यता व संस्कृति के परिचालक तत्व हैं। किसी भी समाज की उन्नति मूल्यों को समाहित कर उनके आचरण से ही होती है। "मूल्य वह जिनके पीछे हम चलना चाहें, उपलब्धि के योग्य समझें और जीवन में महत्व दे सकें।"[1] आज परिवर्तन को ही सर्वोच्च मानने वाले वैश्विक समाज और यहां की अत्यधिक भौतिकवादी संस्कृति में मूल्य हाशिए पर चले गए हैं। स्वच्छंद वातावरण, भौतिक आकर्षणों की होड़, पूंजीवादी सोच, व्यक्तिगत स्वार्थ और बढ़ती महत्वाकांक्षाओं जैसे अनेक कारणों से समाज का नैतिक वातावरण निरंतर प्रभावित हो रहा है। परिवर्तन वर्तमान समाज का वह सत्य बन चुका है जो सामाजिक संस्कृति में परिवर्तन के रूप में परिलक्षित हो रहा है। समय में परिवर्तन के साथ मूल्य में भी परिवर्तन आता है कभी यह सकारात्मक रूप से तो कभी नकारात्मक रूप से समाज को प्रभावित करता है। किंतु समाज में कुछ मूल्यों का स्थाई होना भी आवश्यक है जिसमें ईमानदारी, त्याग, सत्य, करुणा, संवेदनशीलता तथा पारिवारिक मूल्य जैसे प्रेम, वात्सल्य, विश्वास आदि मूल्य समाहित हैं। इन मूल्यों का त्याग

करने से समाज में अव्यवस्था भी उत्पन्न हो सकती है। वेनवर्ग और शेवेत का कथन है, "सामाजिक परिवर्तन आधुनिक संसार के हृदय में निवास करता है। इन परिवर्तनों के परिणाम स्वरुप सामाजिक मूल्यों में भी उतनी ही तेजी से विघटन आता है।"[2]

वास्तव में मनुष्य का संपूर्ण जीवन मूल्य पर ही टिका हुआ है। मूल्य समाज व नैतिक जीवन की आधारशिला हैं तथा समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा का मापदंड भी मूल्य ही हैं। हमारे समाज में सभ्यता व संस्कृति के विकास में मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन काल से ही संस्कार के रूप में मूल्यों की शिक्षा दी जाती रही है। कृतज्ञता, सत्य, ईमानदारी, करुणा, बंधुत्व, पारिवारिक आदर्श, बड़ों का सम्मान जैसे मूल्यों ने समाज को स्थायित्व प्रदान किया है। किंतु वर्तमान की भौतिकतावादी संस्कृति ने इस ढांचे को जर्जर कर दिया है। वर्तमान में इन मूल्यों का स्थान शोषण, भ्रष्टाचार, पारिवारिक विघटन, यौनकुंठा तथा स्वार्थपरता जैसे तत्वों ने ले लिया है।

विश्वविद्यालयों में शिक्षा का स्थान विकृत राजनीति ने ले लिया है। यह अनैतिक तत्वों, शोषण व भ्रष्टाचार का अड्डा बन गए हैं। अपने स्वार्थ के लिए ईमानदारी व सत्य जैसे मूल्यों की बलि दी जा रही है। मनुष्य की व्यक्तिवादी सोच ने संयुक्त परिवार को एकल परिवार में तोड़ दिया है जिससे बुजुर्गों की सामाजिक व आर्थिक असुरक्षा बढ़ी है। तलाक की समस्या बढ़ रही है जिसका कारण स्वार्थपरता तथा आविश्वास है। स्त्रियों को मात्र भोग की वस्तु समझा जा रहा है तथा यौन नैतिकता जैसे प्रतिमान धूमिल हुए हैं। रूप सिंह चंदेल का उपन्यास नटसार इन्हीं समस्याओं को उजागर करता है।

आजादी के पश्चात भी गांव में सामंती व्यवस्था पूर्णता समाप्त नहीं हुई है। जाति नरसंहार आज भी यहां की सच्चाई बना हुआ है तरुण जैसे प्रतिभाशाली लोगों को अपनी जमीन जायदाद छोड़कर एशियाई इंडस्ट्री के अविनाश गुप्ता जैसे पूंजीपतियों की गुलामी करनी पड़ती है। यहां श्यामल जैसे नए सामंत उनके जीने का अधिकार तक छीन लेते हैं। सांत्वना के पिता के माध्यम से यह दृष्टिगत होता है कि वह नौजवानों को ईमानदारी और जातिगत भेदभाव से दूर रहने के लिए प्रेरित करते हैं किंतु स्वयं अपनी बेटी सांत्वना की शादी अन्य जाति में करने से हिचकिचाते हैं। उपन्यास ऐसे दोहरे चरित्रों को बेनकाब करते हुए यथार्थ के धरातल पर पहुंच जाता है।

हिंदी उपन्यास धारा में रूप सिंह चंदेल ने समाज की विकृतियों दृ शोषण व्यवस्था, भ्रष्टाचार, पारिवारिक विघटन को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। नटसार उनकी प्रमुख कृति है, जो, नैतिक भ्रष्टाचार, ग्रामीण–शहरी संक्रमण एवं विश्वविद्यालयी राजनीति पर केंद्रित है। कथा श्यामल के दांपत्य जीवन से प्रारंभ होकर उसके चारित्रिक पतन तक फैली है।

उपन्यास का प्रारंभ श्यामल और सांत्वना के दांपत्य जीवन की सहज दिनचर्या से होता है। किंतु धीरे–धीरे उपन्यास के पृष्ठ पलटने के साथ ही श्यामल में व्याप्त यौन अनैतिकता, अवसरवादिता, स्वार्थपरता जैसे तत्व दृष्टिगत होने लगते हैं। उपन्यास में श्यामल एक महत्वाकांक्षी एवं कामुक पात्र है, जो नैतिकता को 'बीमारी' मानता है। श्यामल अपनी पढ़ाई के लिए अपने मामा के यहां निवास करता है किंतु पढ़ाई के पश्चात जब वह दूसरी जगह रहने लगता है तो मामा की बीमारी का पता चलने पर भी वह उनसे मिलने नहीं जाता। "श्यामल मामा अलगू राय को दोबारा देखने नहीं गया।"[3] यह उसकी स्वार्थपरता और अवसरवादिता को दर्शाता है।

विश्वविद्यालय में चयन प्रक्रिया में भी भ्रष्टाचार विद्यमान है इसमें पैसे और रसूख वाले व्यक्तियों का बोलबाला है। चयन का आधार योग्यता ना होकर पहचान और आपसी सांठ–गांठ बन गई है। श्यामल विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद के लिए अवसर की खोज में त्रिभुवन बाबू के पास चक्कर लगाने लगता है। एक दिन वह समय भी आता है जब त्रिभुवन बाबू खड़े हो गए और हंसकर कहा "यह सुनहरा अवसर है। दयावती सान्ध्य कॉलेज का प्राचार्य.... प्रमोद रंजन.... मेरा परिचित है। दो बार घर आ चुका है। लगता है कि यह वैकेन्सी तुम्हारे लिए ही निकली है।"[4] किंतु यह उपकार यूं ही नहीं किए जाते बल्कि इनकी गहराई में अलग स्वार्थ छुपा होता है। विनय बाबू जिनकी कृपा से श्यामल को नौकरी मिलती है वह श्यामल को एक पुस्तक लिखने का कहते हैं जिसका प्रकाशन विनय बाबू के नाम से किया जाता है।

वर्तमान में विश्वविद्यालय राजनीति का केंद्र बन गए हैं। उच्च शिक्षण संस्थानों में प्राध्यापक मुफ्त का वेतन लेते हैं और हफ्ते में निर्धारित समय का चौथाई भी नहीं पढ़ाते। प्रशासन द्वारा सख्ती करने पर परीक्षाओं के बहिष्कार और हड़ताल की धमकी देते हैं। प्राध्यापक वर्ग एक प्रकार का संगठित समूह बनकर उभर रहा है जो केवल अपने हित की सोचता है और अपनी स्वार्थ की सिद्धि के लिए किसी भी स्तर तक जा सकता है। यह वर्ग विद्यार्थियों के भविष्य के लिए कार्य न कर आत्म मुग्ध और अहंकारी बन चुका है। उपन्यास का पात्र कुमार कहता है, "आज सर्वाधिक भ्रष्ट यदि कोई तबका है तो वह है विश्वविद्यालय–कॉलेज का शिक्षक। कल तक जिन्हें लोग श्रद्धा भाव मे देखते थे... आज वे क्यों लोगों की नजरों से उतर गये हैं?"[5]

'जन विचार मंच' संस्था श्यामल के दिमाग की उपज होती है। इसका निर्माण साहित्य को बढ़ावा देने तथा बौद्धिक चर्चाओं के लिए होता है। इसमें बौद्धिक चर्चाएं तो अवश्य होती हैं किंतु वहां सभी अपना हित साधने में लगे हुए हैं। श्यामल विनय बाबू और त्रिभुवन बाबू को कार्यक्रम का अतिथि बनाना चाहता है जिससे उसे लाभ प्राप्त हो सके। वह अपनी विचारधाराओं को अपने हितों के अनुसार बदल लेता है। वह इस संस्था का उपयोग अपने हितों को साधने के लिए करता है और हितों की पूर्ति हो जाने पर इसे स्वयं ही समाप्त भी करवा देता है। वह अपने मजदूर मित्रों की हितों की रक्षा के नाम पर उन्हें धोखा देता है और मजदूर विरोधी नीतियों के समर्थक अविनाश गुप्ता से हाथ मिला कर जन विचार मंच का गला घोंट देता है।

श्यामल के अलावा विनय बाबू जैसे अधिकारी हैं जिनके नाम पर कोई और पुस्तक लिखता है। अपने पद और शक्ति का उपयोग वह अपनी साहित्यिक तृप्ति को पूरा करने में करते हैं। उनके पास ऐसे प्रकाशक भी हैं जो उन्हें छापने को लालायित रहते हैं। उनके लिए पुस्तक किसी अन्य द्वारा लिखी जाती है और छपती उनके नाम से है। श्यामल विनय बाबू के लिए तीन पुस्तक लिखता है और इसके बदले में वह अपने लिए प्राध्यापक की और अपने पत्नी के लिए अनुवादक की स्थाई नौकरी पाने में सफल होता है।

अखिलेश सिंह अपनी अनपढ़ बीवी को गांव में छोड़कर नया विवाह कर लेता है। ऐसे पात्रों के लिए निष्ठा का कोई मूल्य नहीं है। यह अपनी आवश्यकताओं के अनुसार विवाह करते हैं और विवाह विच्छेद भी कर लेते हैं। यहां पर पारिवारिक मूल्यों यथा पत्नी के प्रति एकनिष्ठता से विचलन प्रदर्शित होता है। समाज में दहेज जैसी कुप्रथा का प्रचलन किस पैमाने पर है यह भी उद्घाटित हुआ है। यह समाज में व्याप्त अवसरवादिता, नैतिक पतन तथा भ्रष्टाचार को उजागर करता है। विश्वविद्यालय राजनीति में भ्रष्टाचार सर्वव्यापी है। नौकरी मेरिट के आधार पर ना मिलकर की सिफारिश के आधार पर प्राप्त होती है। विचारधारा निजी लाभ का साधन

बन चुकी हैं।

उपन्यास में भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था के नेपथ्य में छुपी शोषण व्यवस्था को उजागर किया गया है। पूंजीवादी व्यवस्था ने शोषण को नया स्वरूप प्रदान किया है। आप प्रोडक्ट की कई गुना कीमत बढ़ाकर भारी मुनाफा कमाया जाता है। राजनीतिक व अफसर शाही गठजोड़ द्वारा व्यावसायिक हितों की पुष्टि की जाती है तथा देशहित, मानव कल्याण, अपरिग्रह जैसे मूल्य हाशिए पर धकेल दिए जाते हैं। उपन्यास का पत्र तरुण सोचता है, "हिंदुस्तान की लोकतांत्रिक व्यवस्था पूंजीवाद को संरक्षण देती है। गरीबी हटाओ एक नारा है जिसका परोक्ष अर्थ गरीबों को हटाओ है।"[6]

उपन्यास वामपंथी आंदोलन के उसे पक्ष को भी उजागर करता है जिसके कारण वह अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाया। यह आंदोलन जितनी तेजी से आगे बढ़ा उतनी ही तेजी से अपने पतन को भी प्राप्त कर गया। इससे संबद्ध लोग मौजूदा व्यवस्था के अंग बनते रहे और वामपंथी आंदोलन का उपयोग उन्होंने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किया। ज्यादातर वामपंथी स्वयं को सामंती व पूंजीवादी संस्कारों से मुक्त नहीं कर पाए है।

उपन्यास में सत्य, करुणा और ईमानदारी जैसे नैतिक मूल्यों का भी ह्रास हुआ है। अपने महत्वाकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए दूसरों की जान तक ले ली गई है। श्यामल तरुण को आत्महत्या के लिए विवश कर देता है। वह तरुण और सविता के बीच के मित्रता के सम्बन्ध को गलत रूप से प्रदर्शित कर तरुण पर सविता को गर्भवती करने का झूठा आरोप लगाता है। साथ ही वह तरुण के कार्यालय जाकर उसे नौकरी से निकालने के लिए कहता है। तरुण के लिए सारी परिस्थितियों असह्य हो जाती हैं और वह आत्महत्या कर लेता है। तरुण ही ऐसा पात्र है जो श्यामल के मुखौटे के पीछे छुपे असली व्यक्तित्व को पहचान पाता है जो मूल्यहीन और मौकापरस्त है। तरुण कहता है, "तुम दरअसल वह नहीं जो दिखते हो। तुमने मुखौटा लगा रखा है । अपने को सर्वहारा का हितैषी कहने वाले तुम वास्तव में बुर्जुआ हो... पूँजीवाद के पोषक...।"[7]

उपन्यास में नारी पात्रों की विशेष भूमिका है। रूप सिंह चंदेल के उपन्यास में नारी पात्रों की भूमिका केवल कथानक के गति देने तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वे नैतिक मूल्यों के उत्कर्ष की आधारशिला बनती हैं। वंदना, निर्मला, रुचि, सांत्वना तथा सविता जैसे सभी नारी पात्र श्यामल की कामुक वृत्ति के शिकार बनते हुए भी अपनी गरिमा और आत्मसम्मान के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। श्यामल का स्त्रियों के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण उसके नैतिक पतन को दर्शाता है।

वह अपनी प्रेमिका वंदना को गर्भवती करके छोड़ देता है फिर अपने घरेलू नौकरानी निर्मला पर बलात्कार करने का असफल प्रयास करता है और अपने ही शरणदाता त्रिभुवन बाबू की बेटी को अपनी हवस का शिकार बनाता है। उसकी यह हवस अपनी पत्नी की सहेली कविता की छोटी बहन सविता तक जारी रहती है। वह सविता को विश्वविद्यालय में नौकरी का प्रलोभन देकर अपनी वासनाओं की पूर्ति करना चाहता है। "आज हमारे बीच कई श्यामल मौजूद हैं जो मासूम बालाओं का यौन शोषण कर रहे हैं और उन्हें गर्भवती बनाकर उनसे मुक्ति भी पा लेते हैं तो क्यों क्या मुक्ति का मार्ग इतना आसान है?"[8] यह अत्यंत चिंतनीय विषय है कि अपने धन, पद तथा न्याय व्यवस्था की खामियों का लाभ उठाकर ऐसे व्यक्ति समाज में निर्बाध और निर्मुक्त जीवन व्यतीत करते हैं।

किन्तु सविता का मजबूत चरित्र, उसकी संघर्षशीलता और नैतिक दृढ़ता को दर्शाता है। श्यामल की हत्या

के रूप में उपन्यास की परिणति केवल प्रतिशोध नहीं, बल्कि एक प्रतीकात्मक न्याय है जो अन्याय, शोषण और नैतिक पतन के विरुद्ध स्त्री के आत्म साक्षात्कार का उद्घोष करती है। चंदेल जी ने सविता जैसे चरित्रों के माध्यम से ईमानदारी, सत्य, संघर्ष और सुशीलता जैसे नैतिक मूल्यों को उभारते हुए यह सिद्ध किया है कि नारी मात्र भोग की वस्तु नहीं, बल्कि समाज में नैतिक पुनर्निर्माण की संवाहक शक्ति है। चंदेल जी के स्त्री चरित्र मजबूत है वह अपनी मुक्ति की दिशा में अग्रसर होकर व्यवस्था की विकृतियों का सामना करते हैं इनके माध्यम से चंदेल जी ने ईमानदारी, सत्य व संघर्ष जैसे मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है।

"मुक्ति का एक मार्ग तो सविता भी प्रशस्त करती है, जिसकी ओर अनायास ही पाठक का ध्यान खिंचता है। भ्रष्ट भोगी और विकृत मानसिकता के प्रतीक श्यामल को एक यथोचित प्रतिक्रिया से वह मौत की नींद सुला देती है। विद्रूपता के पर्याय श्यामल के यौनांग पर भरपूर प्रहार करवा कर वास्तव में लेखक ने समूचे समाज की विकृत मानसिकता पर चोट करने का प्रयास किया है।"[9]

नटसार समकालीन बौद्धिक वर्ग की अवसरवादी प्रवृत्तियों से मूल्य–विघटन को उजागर कर मानवीय संवेदना की पुर्नस्थापना का संकेत देता है। यहाँ यथार्थवादी दृष्टि का प्रयोग होने के कारण विकृतियां व नैतिक पतन स्पष्ट नजर आता है किन्तु भविष्य एवं नैतिक मूल्यों के प्रति एक आस्था की अनुगूँज भी सुनाई देती है। यह उपन्यास समाज में नैतिक मूल्यों की पुर्नस्थापना के साथ समाजिक मूल्यों के प्रति आस्था भी जागृत करता है।

संदर्भ :

1. डॉ. आनंद दीक्षित, हिंदी साहित्य में जीवन मूल्य, पृ. 16
2. डॉ. जी. पी., स्वातंत्र्योतर कथा साहित्य में बदलते जीवन मूल्य, पृ. 107
3. रूपसिंह चंदेल, नटसार, पृ. 77
4. वही, पृ. 181
5. वही, पृ. 104
6. वही, पृ. 389
7. वही, पृ. 398
8. माधव नागदा, कथाकार रूप सिंह चंदेल (व्यक्तित्व, विचार, कृतित्व), पृ. 177
9. माधव नागदा, कथाकार रूप सिंह चंदेल (व्यक्तित्व, विचार, कृतित्व), पृ. 177

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 209-211
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हरियाणा में विवाह–विच्छेद का बदलता स्वरूप और कारण

डॉ. जोगिंदर
सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र,
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, रोहतक।

प्रस्तावना :

विवाह मानव समाज की सबसे प्राचीन, महत्त्वपूर्ण और सार्वभौमिक सामाजिक संस्थाओं में से एक है। यह केवल दो व्यक्तियों के बीच संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि एक संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है, जो परिवार, समाज और संस्कृति के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाती है। विश्व के लगभग सभी समाजों में विवाह किसी न किसी रूप में पाया जाता है। इसके माध्यम से यौन संबंधों को सामाजिक मान्यता मिलती है, परिवार का गठन होता है तथा समाज को नए सदस्य प्राप्त होते हैं। इस प्रकार विवाह व्यक्ति के निजी जीवन और सामाजिक संरचना दोनों के लिए अत्यंत आवश्यक संस्था है।

विवाह का उद्देश्य केवल संतानोत्पत्ति अथवा वंश वृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्रेम, सहयोग, उत्तरदायित्व, भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक साझेदारी का भी आधार है। पति–पत्नी एक–दूसरे के जीवनसाथी होते हैं, जो जीवन के सुख–दुःख में साथ निभाने का वचन देते हैं। भारतीय समाज में विवाह को विशेष रूप से एक पवित्र बंधन माना गया है। यहाँ विवाह केवल कानूनी अनुबंध नहीं, बल्कि धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्य से जुड़ी संस्था है। विवाह के माध्यम से दो परिवारों के बीच संबंध स्थापित होते हैं, जिससे सामाजिक एकता, सामूहिकता और पारिवारिक सहयोग को बल मिलता है।

समाजशास्त्रियों के अनुसार विवाह समाज की स्थिरता बनाए रखने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। यह व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करता है तथा सामाजिक जीवन में अनुशासन स्थापित करता है। विवाह से पति–पत्नी के अधिकार और कर्तव्य निर्धारित होते हैं। बच्चों के पालन–पोषण, शिक्षा और समाजीकरण की जिम्मेदारी भी मुख्यतः परिवार के माध्यम से निभाई जाती है। इसलिए विवाह को सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला माना जाता है।

यद्यपि विवाह एक आदर्श और स्थायी संस्था मानी जाती है, फिर भी सभी विवाह सफल नहीं होते। कई बार पति–पत्नी के स्वभाव में अंतर, विचारों का टकराव, आर्थिक समस्याएँ, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, नशाखोरी, संतानहीनता, पारिवारिक हस्तक्षेप, मानसिक तनाव, अविश्वास तथा आधुनिक जीवनशैली के कारण वैवाहिक संबंधों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। जब मतभेद इतने अधिक बढ़ जाते हैं कि साथ रहना कठिन हो जाए, तब विवाह टूटने की स्थिति उत्पन्न होती है।

इसी समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक समाज ने कुछ न कुछ व्यवस्थाएँ विकसित की हैं, जिनके माध्यम से असफल विवाहों का निपटारा किया जा सके। विवाह विच्छेद या तलाक ऐसी ही एक सामाजिक और कानूनी व्यवस्था है। तलाक वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पति–पत्नी वैधानिक रूप से अपने वैवाहिक संबंध को समाप्त करते हैं। तलाक केवल संबंध समाप्ति नहीं है, बल्कि यह उन व्यक्तियों को पुनः स्वतंत्र जीवन जीने और आवश्यकता पड़ने पर पुनर्विवाह करने का अवसर भी प्रदान करता है।

आधुनिक समाज में तलाक की अवधारणा को केवल नकारात्मक रूप में नहीं देखा जाता। कई बार तलाक उन व्यक्तियों के लिए आवश्यक समाधान बन जाता है, जो हिंसा, उत्पीड़न, असमानता या असफल वैवाहिक जीवन का सामना कर रहे होते हैं। विशेष रूप से महिलाओं के लिए तलाक एक महत्त्वपूर्ण अधिकार के रूप में उभरा है, क्योंकि पहले वे पारिवारिक मान–सम्मान, सामाजिक दबाव अथवा आर्थिक निर्भरता के कारण प्रताड़ना सहते हुए भी वैवाहिक बंधन में रहने के लिए विवश थीं। आज शिक्षा, रोजगार और कानूनी जागरूकता ने महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति सजग बना दिया है।

दूसरी ओर, तलाक का प्रभाव केवल पति–पत्नी तक सीमित नहीं रहता, यह उनके बच्चों, परिवार और समाज पर भी पड़ता है। बच्चों के मानसिक विकास, भावनात्मक सुरक्षा तथा सामाजिक जीवन पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है। इसलिए तलाक को एक गंभीर सामाजिक विषय के रूप में समझना आवश्यक है।

वर्तमान समय में शहरीकरण, औद्योगीकरण, पाश्चात्य प्रभाव, सोशल मीडिया, व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा बदलती जीवनशैली के कारण विवाह और परिवार की पारंपरिक धारणाओं में परिवर्तन आ रहा है। इससे तलाक की दर में भी वृद्धि देखी जा रही है। इसलिए विवाह और तलाक दोनों का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है।

अतः कहा जा सकता है कि विवाह समाज को स्थिरता प्रदान करता है, जबकि तलाक असफल वैवाहिक संबंधों के समाधान का माध्यम है। दोनों संस्थाएँ सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं और इनके माध्यम से समाज की बदलती संरचना, मूल्यों तथा संबंधों को समझा जा सकता है।

बीज शब्द :– तलाक, विवाह, परिवार, विश्वास, संघर्ष, संवाद, कानूनी प्रावधान, वैयक्तिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वावलंबन।

तलाक का अर्थ :

तलाक का अर्थ है– वैवाहिक संबंधों का कानूनी रूप से टूट जाना। यह एक सामाजिक खोज तथा समाज द्वारा स्वीकृत एक ऐसा साधन है, जो विवाह की असफलता से उत्पन्न समस्याओं का समाधान करता है। हरियाणा, जो अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और मजबूत पारिवारिक मूल्यों के लिए जाना जाता है, वर्तमान में एक बड़े सामाजिक संक्रमण से गुजर रहा है। पिछले एक दशक में, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, विवाह टूटने की घटनाओं में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। पारंपरिक संयुक्त परिवार के ढांचे का टूटना और वैयक्तिक स्वतंत्रता की भावना का उदय इस बदलाव के केंद्र में है।

न्यायिक आंकड़ों के अनुसार, हरियाणा की पारिवारिक अदालतों (Family Courts) में लंबित मामलों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। हरियाणा की विभिन्न अदालतों में साठ हजार से अधिक वैवाहिक मामले लंबित हैं। सर्वाधिक प्रभावित जिलों में गुरुग्राम, फरीदाबाद, सोनीपत और पंचकूला सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त 'आपसी

सहमति' से तलाक के मामलों में 30% की वृद्धि हुई है।

प्रमुख अधिनियम :

भारत में तलाक संबंधी मामलों के निस्तारण प्रायः हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (तलाक) और 13–B (आपसी सहमति) के अंतर्गत किया जाता है।

तलाक के कारण :

वर्तमान समय में समस्त विश्व के साथ–साथ भारत में भी तलाक के मामलों में वृद्धि हुई है। हालांकि संसार के अन्य देशों की तुलना में भारत में आज भी तलाक कम होते हैं। भारत में तलाक दर लगभग 1.1% होने का अनुमान है, जो विश्व में सबसे कम है। इसका प्रमुख कारण है कि है कि भारत में विवाह को प्रायः जन्म–जन्मांतर का संबंध माना जाता है और उसे यथासंभव बनाए रखने का प्रयत्न किया जाता है। दुनियाभर में अधिकांश मामलों में तलाक की पहल महिलाओं द्वारा की जाती है, जबकि भारत में प्रायः पुरुषों द्वारा ऐसा किया जाता है। आजकल अनेक मामलों में देखा गया है कि विवाह होने के बहुत कम समय बाद ही पति–पत्नी में अनबन हो जाती है, मामला कोर्ट में पहुंच जाता है और तलाक नौबत आ जाती है। पति–पत्नी में लड़ाई–झगड़े होना आम बात है, परंतु कई बार ये झगड़े दाम्पत्य संबंधों में इतनी कड़वाहट भर देते हैं कि उनमें पारस्परिक प्रेम एवं विश्वास समाप्त हो जाता है और अंततः विवाह–विच्छेद का फैसला ले लिया जाता है। इस प्रकार आपसी मनमुटाव, वैचारिक मतभेद और अन्य कारणों से जन्म–जन्मांतर का यह संबंध कुछ ही दिनों में टूट जाता है।

इसके प्रमुख कारणों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है :–

(1) **धोखा देना अथवा चीट करना :–** वैवाहिक संबंध में स्थायित्व पति–पत्नी के पारस्परिक विश्वास पर आधारित होती है। यदि यह संबंध एक दूसरे को चीट करके, धोखा देकर अथवा किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाकर बनता है तो इसकी स्थिरता संदिग्ध हो जाती है। तलाक के अनेक मामले ऐसे ही होते हैं जिनमें विवाह पूर्व एक पक्ष द्वारा किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपा लिया जाता है। सफल एवं सुखमय विवाहेतर जीवन के लिए यह भी आवश्यक है कि पति–पत्नी दोनों अपने जीवनसाथी के प्रति ईमानदार रहें कोई भी महत्वपूर्ण तथ्य एक दूसरे से न छिपाएं।

(2) **मानसिक स्थिति ठीक न होना :–** अरेंज मैरिजिज में कई बार देखा गया है कि पति या पत्नी की मानसिक स्थिति ठीक नहीं होती है। अरेंज मैरिज में घरवालों द्वारा शादी करवाने के बाद पता चलता है कि पार्टनर मानसिक रूप से कमजोर है, सामान्य व्यवहार करने में अक्षम है, गलत व्यवहार करता है। बहुधा यह स्थिति तलाक का कारण बन जाती है।

(3) **भूमिकाओं में बदलाव :–** परंपरागत भारतीय समाज में महिलाओं को घर संभालने की जिम्मेदारी दी जाती थी और पुरुष बाहर का काम देखते थे। पिछले कुछ वर्षों में ये भूमिकाएं बदली हैं। आज अनेक ऐसी महिलाएं हैं जो नौकरी अथवा व्यवसाय करती हैं तथा उनके पति घर के कार्य करते हैं। स्त्री–पुरुष की भूमिकाओं में आए इस परिवर्तन के कारण उनके अहम् टकराते हैं जो अंततः तनाव का कारण बनते हैं।

(4) **आर्थिक समस्याएं :–** धनाभाव एवं अर्थ संबंधी समस्याएं भी तलाक के प्रमुख कारणों में देखी गई हैं। आर्थिक तंगी अच्छे से अच्छे रिश्ते पर भी दबाव डालती हैं तथा पारिवारिक विघटन एवं तनाव का कारण बनती हैं। इसके अतिरिक्त खर्च करने की आदतों, कर्ज और बचत की प्राथमिकताओं पर असहमति से भी वैवाहिक

संबंधों में दरार पैदा हो जाती है।

(5) एक्स्ट्रा मैरिटल अफेयर :– विवाह के पश्चात् पति या पत्नी का किसी और से संबंध विवाह विच्छेद का कारण बन जाता है। आज की जिंदगी में सोशल मीडिया और ऑनलाइन डेटिंग साइट्स तक पहुंच काफी आसान हो गई है, जिसकी वजह से वैवाहिक जीवन में बेवफाई के मामले बढ़ते जा रहे हैं। इस प्रकार के विवाहेतर संबंध पति–पत्नी के पारस्परिक विश्वास को समाप्त कर देते हैं जिसकी परिणति प्रायः विवाह–विच्छेद में होती है।

(6) दंपति के मध्य संवाद हीनता :– स्वस्थ एवं विश्वासपूर्ण संवाद किसी भी रिश्ते की नींव होता है। जब पति–पत्नी के मध्य जीवंत संवाद नहीं होता, तो उनके बीच गलतफहमी और अविश्वास पनपता है, रिश्ते में दूरियॉ आने लगती है, आपसी झगड़े आरंभ हो जाते हैं और अंततः तलाक की नौबत आ जाती है।

(7) एक–दूसरे को बदलने की कोशिश :– कई बार देखा जाता है कि पति या पत्नी अपने जीवनसाथी को उसके इयत्ता तथ्य रूप में स्वीकार नहीं कर पाते। वे उसकी तुलना अन्य व्यक्तियों से करने लगते हैं। वे चाहते हैं कि उनका जीवनसाथी उनकी आशा–आकांक्षाओं के अनुरूप ढले, और जब ऐसा नहीं हो पता तो उनके दांपत्य जीवन में नफरत व कड़वाहट भर जाती है। परिणाम स्वरूप वे एक दूसरे से अलग होने का निर्णय कर लेते हैं।

(8) अवास्तविक उम्मीदें :– फिल्मों और सोशल मीडिया के कारण आज प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के मन मस्तिष्क में विवाह–विषयक अव्यावहारिक धारणा, एक अवास्तविक तस्वीर बन गई है। जब वे इस धरना के साथ वैवाहिक जीवन में प्रवेश करते हैं तो स्वयं को असहज एवं भ्रम की स्थिति में पाए हैं। उनके हाथ सिर्फ निराशा ही लगती है। पारिवारिक व्यवस्था में एक ही व्यक्ति से कई सारी उम्मीदें हो जाती हैं, इस कारण उस पर काफी दबाव बनने लगता है।

(9) मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित समस्याएं :– अवसाद, एंग्जायटी, नशे का उपयोग और इसी तरह की दूसरी मानसिक स्थितियॉ दंपति संबंधों पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। इससे संबंधों में तनाव, परेशानी और संघर्ष की स्थिति आ जाती है।

(10) सामाजिक प्रभाव :– कई बार समाज के अन्य लोग एवं सगे–संबंधी भी पति–पत्नी के मध्य अविश्वास एवं झगड़े का कारण बन जाते हैं।

वर्तमान स्वरूप :–

हरियाणा में तलाक की बढ़ती दर आज केवल एक कानूनी या व्यक्तिगत समस्या नहीं रह गई है, बल्कि यह व्यापक सामाजिक परिवर्तन का संकेत बन चुकी है। विवाह भारतीय समाज में एक पवित्र और स्थायी संस्था मानी जाती रही है, विशेषकर हरियाणा जैसे राज्य में जहाँ परिवार, परंपरा, सामाजिक मान–सम्मान और सामुदायिक संबंधों का विशेष महत्व रहा है। परंतु बदलते समय, आधुनिक शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, शहरीकरण और व्यक्तिगत अधिकारों के प्रति जागरूकता ने विवाह संस्था की पारंपरिक संरचना को प्रभावित किया है। इसी कारण तलाक के मामलों में वृद्धि देखी जा रही है।

सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि तलाक की बढ़ती संख्या को केवल नकारात्मक दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। कई मामलों में तलाक उन व्यक्तियों के लिए राहत का माध्यम बनता है जो घरेलू हिंसा,

मानसिक उत्पीड़न, असमान व्यवहार, दहेज उत्पीड़न या असफल वैवाहिक जीवन का सामना कर रहे होते हैं। विशेष रूप से महिलाओं के लिए यह परिवर्तन महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि पहले सामाजिक दबाव और आर्थिक निर्भरता के कारण वे असुखद विवाह में रहने को विवश थीं। आज शिक्षा, रोजगार और कानूनों की जानकारी ने महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया है। इसलिए तलाक की बढ़ती दर महिला सशक्तिकरण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी प्रतीक है।

दूसरी ओर, यह स्थिति समाज के लिए कुछ गंभीर प्रश्न भी खड़े करती है। विवाह केवल दो व्यक्तियों का संबंध नहीं, बल्कि दो परिवारों का सामाजिक और भावनात्मक जुड़ाव भी होता है। जब तलाक की घटनाएँ बढ़ती हैं, तो इसका प्रभाव बच्चों, बुजुर्गों और परिवार की सामूहिक संरचना पर पड़ता है। बच्चों के मानसिक विकास, शिक्षा और भावनात्मक सुरक्षा पर नकारात्मक असर पड़ सकता है। कई बार पति–पत्नी के अलगाव का सबसे अधिक प्रभाव बच्चों को झेलना पड़ता है, क्योंकि वे माता–पिता दोनों के स्नेह और मार्गदर्शन से वंचित हो जाते हैं।

हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्रों में तलाक की औपचारिक दर अभी भी अपेक्षाकृत कम है। इसका कारण यह नहीं कि वहाँ वैवाहिक विवाद नहीं होते, बल्कि यह है कि ग्रामीण समाज में विवाह को बचाने के लिए सामुदायिक स्तर पर प्रयास किए जाते हैं। खाप पंचायतें, परिवार के बुजुर्ग और सामाजिक प्रतिनिधि समझौता कराने की कोशिश करते हैं। कई मामलों में यह प्रक्रिया परिवार को टूटने से बचाती है, परंतु कभी–कभी यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और न्याय के मार्ग में बाधा भी बन सकती है। इसलिए ग्रामीण समाज में भी अब धीरे–धीरे कानूनी जागरूकता और बदलाव की लहर देखी जा रही है।

शहरी क्षेत्रों में तलाक की दर अधिक दिखाई देती है, क्योंकि वहाँ जीवनशैली, कार्य दबाव, समय की कमी और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ अधिक होती हैं। पति–पत्नी दोनों के कार्यरत होने से आर्थिक स्वतंत्रता तो बढ़ती है, लेकिन समय, संवाद और भावनात्मक जुड़ाव की कमी भी उत्पन्न हो सकती है। आधुनिक जीवनशैली ने लोगों की अपेक्षाएँ भी बढ़ा दी हैं। अब लोग विवाह में केवल सामाजिक जिम्मेदारी नहीं, बल्कि भावनात्मक संतुष्टि, समानता, सम्मान और व्यक्तिगत विकास की भी अपेक्षा करते हैं। जब ये अपेक्षाएँ पूरी नहीं होतीं, तो विवाद बढ़ने लगते हैं।

सोशल मीडिया और डिजिटल संस्कृति ने भी वैवाहिक संबंधों को प्रभावित किया है। आज तुलना की प्रवृत्ति, ऑनलाइन संबंध, गोपनीयता के मुद्दे, संदेह और संचार की गलतफहमियाँ बढ़ी हैं। कई बार छोटी समस्याएँ भी सोशल मीडिया के प्रभाव से बड़े विवाद का रूप ले लेती हैं। इसके साथ ही लिव–इन रिलेशनशिप जैसी नई सामाजिक व्यवस्थाओं का प्रभाव भी दिखाई देता है। जब ऐसे संबंध टूटते हैं, तो कानूनी और सामाजिक विवाद उत्पन्न होते हैं, जो पारंपरिक विवाह संस्था की समझ को चुनौती देते हैं।

तलाकशुदा व्यक्तियों के पुनर्विवाह के प्रति समाज में धीरे–धीरे स्वीकार्यता बढ़ रही है, जो एक सकारात्मक परिवर्तन है। पहले तलाकशुदा महिला या पुरुष को सामाजिक रूप से संदेह की दृष्टि से देखा जाता था, परंतु अब समाज अधिक व्यावहारिक और संवेदनशील बन रहा है। यह बदलाव लोगों को दूसरा अवसर देने और सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर प्रदान करता है।

समस्या का समाधान केवल कानूनों में नहीं, बल्कि सामाजिक और पारिवारिक स्तर पर भी निहित है।

विवाह पूर्व परामर्श, वैवाहिक जीवन में संवाद, पारस्परिक सम्मान, भावनात्मक समझ, क्रोध नियंत्रण और परिवार का सहयोग तलाक की घटनाओं को कम कर सकते हैं। स्कूलों और कॉलेजों में संबंधों, जिम्मेदारियों और मानसिक स्वास्थ्य पर शिक्षा दी जानी चाहिए। साथ ही पारिवारिक न्यायालयों और काउंसलिंग केंद्रों को अधिक प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :

अंततः कहा जा सकता है कि हरियाणा में तलाक की बढ़ती दर समाज के परिवर्तनशील स्वरूप को दर्शाती है। यह एक ओर स्वतंत्रता, समानता और अधिकार–चेतना का प्रतीक है, तो दूसरी ओर पारिवारिक मूल्यों, सामाजिक एकता और भावनात्मक स्थिरता के लिए चुनौती भी है। आवश्यकता इस बात की है कि समाज परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करे, ताकि विवाह संस्था मजबूत बने और व्यक्तियों के अधिकार भी सुरक्षित रहें। यही संतुलन हरियाणा के सामाजिक भविष्य को स्वस्थ, समावेशी और प्रगतिशील बना सकता है।

संदर्भ सूची :

1. राम आहूजा, भारतीय सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स,(तलाक के समाजशास्त्रीय कारणों हेतु)
2. के. एम. कपाड़िया, भारत में विवाह और परिवार, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। (विवाह संस्था के विश्लेषण हेतु)
3. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 : भारत सरकार का राजपत्र। (कानूनी धाराओं 13 और 13–B हेतु)
4. हरियाणा पारिवारिक अदालत रिपोर्ट : न्यायिक आँकड़े और लंबित मामले।
5. महिला आयोग की रिपोर्ट : लिव–इन रिलेशनशिप और आधुनिक जीवनशैली के प्रभाव पर अध्ययन।
6. अमातो, पी. आर. (2000). तलाक और बच्चों का कल्याण. जर्नल ऑफ मैरिज एंड फैमिली, 62(4), 1269–1287.
7. चेरलिन, ए. जे. (2010). तलाक का संस्थानीकरण. वार्षिक समाजशास्त्र समीक्षा, 36, 421–442.
8. गोयल, ए. (2015). भारत में तलाक के सामाजिक और आर्थिक कारण. नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन।
9. गुप्ता, एस., एवं शर्मा, आर. (2018). वैवाहिक असंतोष और तलाक के बढ़ते मामले : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. इंडियन जर्नल ऑफ सोशल रिसर्च, 59(2), 45–60.
10. भारत सरकार. (1955). हिंदू विवाह अधिनियम, 1955. नई दिल्ली : भारत सरकार प्रकाशन।
11. कुमार, ए. (2017). भारतीय समाज में विवाह और तलाक. जयपुर : पंचशील प्रकाशन।
12. देसाई, एम. (2012). परिवार, विवाह और तलाक : एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण. मुंबई : हिमालय पब्लिशिंग हाउस।
13. यूनिसेफ. (2019). बच्चों पर पारिवारिक विघटन का प्रभाव. न्यूयॉर्क : यूनिसेफ।
14. सिंह, आर. (2020). तलाक के मनोवैज्ञानिक प्रभाव : एक अध्ययन. इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी, 75(3), 112–120.
15. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5). (2019–21). भारत में परिवार और विवाह के रुझान. नई दिल्ली : स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय।
16. सिंह, तकदीर, वर्तमान सामाजिक मुद्दे, विवेक प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2025।

डाक पता – डॉ. जोगिंदर पुत्र रामेहर सिंह
मकान नंबर – 7292/29 गली नंबर 7 तिलक नगर, निकट–यूको बैंक, रोहतक–124001

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2026 Page No. : 212-216
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अमृतलाल नागर के ग़दर के फूल में 1857 का विद्रोह

रोहित कुमार सिंह
शोध छात्र, लाल बहादुर शास्त्री डिग्री कॉलेज, गोण्डा,
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।

शोध सारांश :–

1857 का स्वतंत्रता संग्राम अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ हिन्दुस्तानियों के संघर्ष को दुनिया के बुद्धिजीवियों की सहानभूति भी थी। वहीं उनके नज़रिये को उनकी लेखनी के माध्यम से ज़ाहिर किया है कि वे इस ऐतिहासिक लड़ाई को किस रूप में देख रहे थे। चार्ल्सबॉल हों या यूनेस्ट जोंस कार्ल मार्क्स, लॉर्ड एलफिस्टन आदि ने अपने अन्दाज़ में भारतीयों को सहानभूति दी है।

प्रजातांत्रिक अधिकारों के लिए लड़ने वाले अर्नेस्ट जोंस ने पीपुल्स पेपर में लिखा था 'हिन्दुस्तानी विद्रोह पर सारे यूरोप में एक तरह से सोचा जाना चाहिए। विश्व इतिहास का यह अब तक का सबसे ज़्यादा इंसाफ़ भरा महान और ज़रूरी विद्रोह है'।

भूमिका :–

देश में स्वतंत्रता संघर्ष का प्रारम्भ 1857 में हुआ जिसको स्वतंत्रता के राजनीतिक विरोधियों ने गदर का नाम दिया। 1857 का यह संघर्ष अपने परिणाम की दृष्टि से असफल हुआ लेकिन उसने भारतवासियों के मन में स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना की चिंगारी को तेज करके आग बना दिया और गुलामी की धृणा को बढ़ावा दिया।

1857 के विद्रोह के सौ वर्ष पूरे होने पर 1957 में भी सुरेंद्र नाथ सेन और रमेंश चंद्र मजूमदार सरीखे इतिहासकारों ने विद्रोह का विस्तृत ऐतिहासिक विश्लेषण अपनी किताबों में किया। पी.सी. जोशी द्वारा संपादित किताब भी, जिसमें 1857 के विद्रोह से सम्बन्धित अनेक विद्वानों के लेख संकलित थे, उसी वर्ष प्रकाशित हुई।

1857 का इतिहास लेखन :–

1957 में एस.बी. चौधरी ने भी 1857–59 के दौरान हुए जन–विद्रोहों पर किताब लिखी। 1957 के बाद भी इतिहासकारों ने 1857 के विद्रोह को समझने की कोशिश लगातार जारी रखी। ऐसे इतिहासकारों में उल्लेखनीय है, रूद्रांग्शु मुखर्जी, एरिक स्टोक्स, ताप्ती रॉय आदि।[1] एरिक स्टोक्स ने विद्रोह को समझने के लिए अपना ध्यान भारत सरीखे कृषि प्रधान समाज में औपनिवेशिक नीतियों के चलते कृषि के क्षेत्र में आए संरचनात्मक बदलावों पर केन्द्रित किया। अफ्रीका में जनविद्रोहों के अध्ययन के फ्रेमवर्क का इस्तेमाल करते हुए स्टोक्स भू–स्वामित्व के बदलते पैटर्न, ब्रिटिश राजस्व बंदोबस्त और कृषि के वाणिज्यीकरण पर लोगों की प्रतिक्रिया को

गहराई से जानने–समझने और विद्रोह में इन तथ्यों की भूमिका का विश्लेषण करने हैं।

1857 के विद्रोह के अध्ययन की एक बड़ी समस्या या सीमा रही है– विद्रोहियों और उनकी गतिविधियों से सम्बन्धित उनके अपने दस्तावेजों की अनुपलब्धता। 1857 के विद्रोह से जुड़ा ऐतिहासिक लेखन बहुधा आधिकारिक स्रोतों और अंग्रेजों द्वारा लिखे गए संस्मरणों और डायरियों पर निर्भर रहा है। इन आधिकारिक स्रोतों का एक बड़ा हिस्सा अभिलेखागारों से गज़ेटियर, रिपोर्ट, राजस्व व मालगुजारी के कागजातों के रूप में मिलता है, और दूसरा समकालीन ब्रिटिश अधिकारियों और गैर–अतधिकारी वर्ग के अंग्रेजों द्वारा, जिनमें महिलाएँ भी शामिल थीं, और कुछ हिंदुस्तानियों द्वारा लिखे गए संस्मरणों, वृत्तान्तों के रूप में प्राप्त होता है।[2] उल्लेखनीय है कि विद्रोह के स्वरूप व प्रकृति के संदर्भ में आवश्यक व ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण जानकारियाँ मुहैया कराने के बावजूद ये स्रोत अपने निश्चित दृष्टिकोण के चलते एकांगी साबित होते हैं। ये निजी संस्मरण और अधिकारिक रिपोर्ट विद्रोह के संदर्भ में ब्रिटिश शासक वर्ग की सोच, उनकी चिंता और भय से भी हमारा परिचय कराती है।[3]

विद्रोह के ठीक बाद विद्रोह प्रभावित क्षेत्रों के ब्रिटिश जिलाधिकारियों ने उन जिलों में विद्रोह की पृष्ठभूमि, विद्रोह की घटनाओं और विद्रोह के बाद की परिस्थितियों का विस्तृत विवरण तैयार किया। इसी तरह विद्रोह के बाद विद्रोह के गवाह रहें अंग्रेजों ने विद्रोह सम्बन्धी घटनाओं का विश्लेषण करते हुऐ अपने संस्मरण लिखे। ऐसे संस्मरणों में आर0 एम0 कुपलैंड, कैप्टन पी0जी0 स्कॉट, टी0 लोवे, जे0एन0 सिलवेस्टर आदि द्वारा लिखे संस्मरण उल्लेखनीय हैं। ऐसे ही कुछ संस्मरणों का उल्लेख अमृतलाल नागर ने भी अपनी किताब गदर के फूल में किया है। ऐसे आरंभिक संस्मरण जहाँ घटनाओं का ब्यौरा भर होते थे, वहीं कुछ वर्षों बाद लिखे गए संस्मरणों में घटनाओं के विवरण के साथ उनका विश्लेषण, उनके घटित होने के कारणों पर भी संस्मरण वाले लेखक अपने विचार रखने लगे। विद्रोह की घटनाओं के गहन विश्लेषण से युक्त ऐसे संस्मरणों में मार्क थोर्नहिल, जी0एच0 फ़्रीलिंग और डब्लू0 एडवर्ड्स के संस्मरण हैं।[4]

1857 के विद्रोह के सौ वर्ष पूर्ण होने पर भारत सरकार ने इतिहासकार सुरेन्द्र नाथ सेन को 1857 का एक 'प्रामाणिक और वस्तुनिष्ठ' इतिहास लिखने का काम सौंपा। 10 मई, 1957 में तत्कालीन शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी थी। सुरेन्द्र नाथ सेन ने विद्रोह सम्बन्धी घटनाओं के कारणों, उनकी प्रकृति और उनके दूरगामी प्रभावों का नए सिरे से मूल्यांकन करने की कोशिश की।[5] डॉ0 सेन के अनुसार, विद्रोह केवल कुछ क्षेत्रों में ही राष्ट्रीय चरित्र को पा सका, जबकि बंबई, बंगाल और मद्रास प्रेसीडेंसी और पंजाब विद्रोह से लगभग अप्रभावित रहा।

वर्ष 1957 में ही इतिहासकार रमेश चंद्र मजूमदार ने 1857 के विद्रोह पर अपनी किताब द सिपॉय म्यूटिनी एंड द रिवोल्ट ऑफ 1857 में उन्होंने 1857 के विद्रोह को एक "राष्ट्रीय विद्रोह" अथवा "स्वतंत्रता संग्राम" मानने से इंकार कर दिया। डॉ0 सेन और आर0सी0 मजूमदार से अलग इतिहासकार एस0बी0 चौधरी ने 1957 में ही प्रकाशित अपनी किताब में 1857 के विद्रोह को एक अलग घटना के रूप में देखने और विश्लेषित करने की बजाय उसे 1857 के पहले और बाद में हुए अन्य विद्रोहों और संघर्षों से जोड़कर देखा इस तरह उन्होंने अपनी व्याख्या में विद्रोहों की निरंतरता और उनके उपनिवेशवादविरोधी व साम्राज्य विरोधी चरित्र पर जोर दिया। एस0बी0

चौधरी ने उन्नीसवीं सदी के मध्य में जनसंघर्षों की कड़ी में एक महत्वर्पूण ऐतिहासिक क्षण के रूप में 1857 को विश्लेषित किया।[6]

एहतेशाम हुसैन ने उर्दू साहित्य में सम्बन्धित अपने लेख में 1857 के विद्रोह के संदर्भ में मिर्ज़ा गालिब की किताबों मसलन, खुतूत–ए–गालिब (गालिब के पत्रों का संकलन), दस्तम्बू (फ़ारसी में लिखी गालिब की डायरी), ज़हीर देहलवी की किताब दास्तान–ए–गदर और बहादुर शाह ज़फर, वाजिद अली शाह, मुनीर शिकोहाबादी, बर्क़ लखनवी की कविताओं का भी जिक्र किया है।[7]

'गदर के फूल' हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर की कालजयी कृति है। 1857 के विद्रोह के बारे में उत्तर प्रदेश के गाँवों और शहरों में घूमकर लगनपूर्वक जुटाई गई जानकारियों, विवरणों पर आधारित एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। इस उपन्यास के छठे संस्करण की भूमिका मे अमृतलाल नागर ने लिखा है कि इस उपन्यास (शतरंज के मोहरे) की रचना मैंने अपने प्रस्तावित गदरकालीन उपन्यास की पूर्व–पीठिका के रूप में की थी। इस उपन्यास का वातावरण प्रस्तुत करने में मुझे अपने उस भ्रमण के अनुभव से बड़ी सहायता मिली।[8]

सत्तावनी क्रांति जे जुड़ी लोक-स्मृतियों पर आधारित किताब के विवरण में लिखते है कि :–

"सत्तावनी क्रांति के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण से लिखे गये इतिहास के अभाव में जनश्रुतियों के सहारे ही इतिहास की गैल पहचानी जा सकती है। हमारे देश में स्वजनों की चिता के फूल चुने जाते हैं। सौ वर्ष बाद ही सही, मैं भी गदर के फूल चुनने की निष्ठा लेकर अवध की यात्रा का आयोजन करने लगा।[9]"

अमृतलाल नागर ने अपनी किताब गदर के फूल, सत्तावनी क्रांति के तरूण सेनानी ठाकुर बलभद्र सिंह और नवाबगंज (बाराबंकी) के युद्ध क्षेत्र में शहीद हुए छह सौ हिन्दू–मुस्लिम योद्धाओं को समर्पित की है। यह पुस्तक जुलाई–सितंबर 1957 में लिखी गई। इन स्थानों पर वे लोगों से मिले और विद्रोह से जुड़ी स्मृतियों, गीतों, किंवदंतियों को इकट्ठा किया। किताब लिखते हुए अपरे द्वारा जमा की गई जानकारियों को उन्होंने इतिहास की किताबों, गजेटियर आदि से भी मिलाने की कोशिश की है।[9] इस क्रम में वे ब्रिटिश सैन्य अधिकारियों और लेखकों द्वारा लिखी गई किताबें, जैसे होप ग्रांट की सिपॉय वार, रोपर लेथब्रिज की द गोल्डेन बुक ऑफ इण्डिया, मेंक्लाड ईनिस की किताब लखनऊ एण्ड अवध इन द म्यूटिनी, रेजिनल्ड रेनॉल्ड्स, विलयम नाइटन आदि की किताबों, उर्दू में लिखी गई किताबों मसलन, वाजिद अली शाह की काव्यात्मक आत्मकथा हुज्ने अख्तर, सवानहात–ए–सलातीन–ए–अवध, कैसरूत्तवारीख, बेगमात–ए–अवध के खुतूत आदि और हिन्दी में लिखी कुछ किताबों मसलन, देवीदत्त शुक्ल कृत अवध के ग़दर का इतिहास, पंडित सुंदरलाल द्वारा लिखित भारत में अंग्रेज़ी राज से प्राप्त सूचनाओं का भी ज़िक्र करते हैं।[10]

वे ग़दर के नायकों से जुड़ी स्मृयिों की तलाश में जरूर हैं, पर वे गढ़े गए नकली नायकों और ग़दर के सच्चे नायकों में फर्क भी करते हैं। साथ ही, उनका उद्देश्य सिर्फ राजे–रजवाड़ों की विद्रोह में भागीदारी और उनकी वीरता का बयान करना ही नहीं बल्कि 'जनसाधारण के उन शहीदों को भी पहचानना हैं। स्मृतियों को सहेजते हुए भी वे कोरी भावुकता और अतीत के प्रति किसी किस्म की नॉस्टेल्जिा से बचने का भी प्रयास करते हैं। बीते समय की बात करते हुए उस काल के वैभव से आत्म–विभोर हो जाने वाले लोगों में वे निश्चय ही नहीं

हैं।[11]

बलभद्र सिंह, बेनीमाधव सिंह और देवी बख्श सिंह तो ग़दर के उनके प्रिय नायक ही हैं, जिनके बारे में लोक–साहित्य के भंडार से अविस्मरणीय सूचनाएँ हमें देते हैं। इसी संदर्भ में, वे हमारा परिचय कृष्णशंकर शुक्ल 'कृष्ण' द्वारा रचित बेनीमाधव बावनी और ठाकुर ननकऊ सिंह द्वारा रचित जंगनामा से हमारा परिचय कराते हैं।[12]

अमृतलाल नागर का ग़दर के स्वरूप और इतिहास लेखन पर मत :–

पुस्तक के शीर्षक में 'गद़र' के बारे में नागर जी ने लिखा है कि 'हमारी बोलचाल की भाषा में "ग़दर" शब्द अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व पा चुका है। बोलचाल की भाषा के इस शब्द का अर्थ अब केवल सिपाही–विद्रोह तक सीमित नहीं रह गया।' उनका मानना है कि सत्तावनी क्रांति में सिपाही, सामंत और जनता संगठित होकर अंग्रेज़ों से डटकर मुकाबला कर रहे थे।[13] इसीलिए वे गद़र को एक जन–क्रान्ति के रूप में देखते हैं। ग़दर में लड़ने वाले लोगों के बारे में नागर जी ने लिखा है वे लोग सिर्फ अंग्रेज़ों से नहीं लड़ रहे थे, बल्कि वे अपने भीतर गहरे जड़ जमाई हुई अनेक प्रकार की घुटनों के विरूद्ध भी लड़ रहे थे।

उल्लेखनीय है कि ग़दर के बारे में लिखते हुए और विद्रोहियों को सराहते हुए भी नागर जी ने युद्धोन्माद की प्रवृत्ति का विरोध किया है। उन्होंने विद्रोह के दौरान कुछेक जगहों पर भारतीयों द्वारा अंग्रेज़ों पर की गई क्रूरताओं पर शोक जताया है। पर वे यह भी जोड़ते हैं कि विद्रोह को कुचलने के लिए अंग्रेज़ों ने विद्रोहियों और भारतीय जनता के प्रति जिस बर्बरता का परियच दिया, उसके मुकाबले क्रूरता की ये गिनी–चुनी घटनाएँ कुछ भी नहीं थीं।[14]

विद्रोहियों की कमियों और उनकी समस्याओं के बावजूद अमृतलाल नागर ने ठीक ही लिखा है कि ग़दर में 'ऐसी विशेषताएँ भी कम नज़र नहीं आतीं जिन्हें पाकर किसी भी काल में हर राष्ट्र गौरव का अनुभव करेगा।' अकारण नहीं कि वे सत्तावनी क्रांति के अपने पुरखों की खूबियों पर मुग्ध हैं। वे ग़दर में सभी आयुवर्ग के विद्रोहियों के सक्रिय होने के तथ्य की ओर भी हमारा ध्यान खींचते हैं।[15]

सूची ग्रन्थ :–

1. एरिक स्टोक्स, द पीजेंट एंड द राज : स्टडीज़ इन एग्रेरियन सोसाइटी एंड पीजेंट रिबेलियन इन कॉलोनियल इंडिया (कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1978);
2. पी0सी0 जोशी (संपा0) रिबेलियन 1857 : ए सिम्पोज़ियम.पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1957)
3. एफओ मेन, नैरेटिव ऑफ इवेंट्स अटेंडिंग द आउटब्रेक ऑफ डिस्टर्बेंस एंड द रिस्टोरेशन ऑफ अथॉरिटी इन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ बाँदा 1857–58
4. अमृतलाल नागर, ग़दर के फूल (राजपाल, दिल्ली, 2016 (1957)
5. मार्क थोर्नहिल, द पर्सनल एडवेंचर्स एंड एक्सपीरियंस ऑफ ए मजिस्ट्रेट ड्यूरिंग द राइज़, प्रोग्रेस एंड सप्रेशन ऑफ द इंडियन म्यूटिनी, (जॉन मरे, लंदन, 1884);
6. .जीएच फ्रीलिंग, नैरेटिव ऑफ इवेंट्स, कनेक्टेड विद द म्यूटिनी एट हमीरपुर; डबल्यू0 एडवर्ड्स, फैक्ट्म रिफ्लेक्शन्स कनेक्टेड विद रिबेलियन (लीवरपुल, 1859)

7. एस0बी0 चौधरी, सिविल रिबेलियन इन द इंडियन म्यूटिनीज़, 1857–1859 (द वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता, 1957)
8. पी0सी0 जोशी (संपा0) रिबेलियन 1857 : ए सिम्पोज़ियम.पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1957)
9. अमृतलाल नागर, ग़दर के फूल (राजपाल, दिल्ली, 2016 (1957)
10 पी0सी0 जोशी (संपा0) रिबेलियन 1857 : ए सिम्पोज़ियम.पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1957)
11. अमृतलाल नागर, ग़दर के फूल (राजपाल, दिल्ली, 2016 (1957)
12. वही।
13. पी0सी0 जोशी (संपा0) रिबेलियन 1857 : ए सिम्पोज़ियम.पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1957)
14. वही।
15. वही।

ई मेल– rockrohit@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज,
भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

हिमांशु जैन

एम.ए. (इतिहास)

भोज मुक्त विश्विद्यालय।

for the paper titled

चंबल क्षेत्र की डकैत समस्या के समाधान में डॉ. एस. एन. सुब्बाराव की भूमिका पर एक ऐतिहासिक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 10-13

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

कमलेश्वर, शोधार्थी,

प्रो. मधुरेन्द्र कुमार, शोध निर्देशक,

राजनीति विज्ञान विभाग, डी.एस.बी. परिसर कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

for the paper titled

इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति के वैचारिक आधार : एम. एन. रॉय (तर्कवादी) और दीनदयाल उपाध्याय (सांस्कृतिक) की अवधारणाओं का तुलनात्मक विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 14-22

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

उमेश कुमार (शोधार्थी)

पाश्चात्य इतिहास विभाग,

लखनऊ विश्वविद्यालय।

for the paper titled

मुंशी नवल किशोर और प्रेस : लखनऊ के साहित्यिक इतिहास में एक योगदान

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 23-38

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अनीता रानी

सहायक प्राध्यापक इतिहास विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय (NCWEB)

for the paper titled

मुगल काल की शिक्षा प्रणाली, औपचारिक शिक्षा का आंरभिक काल

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 39-45

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

शुभांगी श्रीवास्तव, शोध छात्रा,
प्रो. बालकेश्वर, शोध निर्देशक,
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही।

for the paper titled

1857 के स्वाधीनता संग्राम में शीतल पाल : एक ऐतिहासिक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 46-50

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Mohar Singh, Research Scholar
Deendayal Upadhayay Chair,
HP University Summer Hill, Shimla -05

for the paper titled

Deendayal Upadhayay's Vision of Social Harmony Reflected in India's Inclusive Development Schemes

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 51-67

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Harsha Kaushal, Research Scholar

Dr. Mini Pathak Dogra, Research Supervisor, Assistant Professor

Department of Political Science, HP University Summer Hill Shimla.

for the paper titled

Unpacking India's Policy Shift on the Palestine Question

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 68-84

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. पायल पोद्दार

सहायक प्राध्यापक, समाज कार्य विभाग,
मैट्स यूनिवर्सिटी, रायपुर।

for the paper titled

जनजातीय समाज में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता : छत्तीसगढ़ का विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 85-93

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. प्रशांत कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान,
तिलकधारी पी. जी. कॉलेज, जौनपुर।

for the paper titled

जाति जनगणना की माँग : राजनीतिक अर्थशास्त्र का विश्लेषण

Caste Census Demand : An Analysis of Political Economy

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 94-105

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

श्रुति कुमारी, शोधार्थिनी,
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा।
डॉ. प्रीति रंजन, शोध पर्यवेक्षक, सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग, एच. डी. जैन कॉलेज, आरा।

for the paper titled

बिहार के जन आंदोलनों में नारी शक्ति : संघर्ष एवं योगदान

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 106-111

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

बबलू कुमार, शोध अध्येता,
इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।
डॉ. नागेश्वर कुमार, शोध पर्यवेक्षक, सहायक प्राध्यापक,
इतिहास विभाग, बी.एम.डी. महाविद्यालय दयालपुर, वैशाली।

for the paper titled

बंगाल में स्थायी बंदोबस्त और जमींदारों का उदय : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 112-117

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

नेहा राय, शोधार्थिनी,
इतिहास विभाग, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।
डॉ. संतोष कुमार अनल, शोध पर्यवेक्षक,
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, लंगट सिंह महाविद्यालय मुजफ्फरपुर।

for the paper titled

स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार के महिलाओं की भूमिका और बौद्धिक चेतना का विकास

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 118-123

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

चिक्कू टी के

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम।

for the paper titled

स्त्री विमर्श के संदर्भ में ललितांबिका अंर्तजनम के उपन्यास और जयश्री रॉय के उपन्यास तुलना

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 124-126

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

पूनम, षोधार्थी,

प्रोफेसर संजीव कुमार (षोध निर्देषक), प्रोफेसर

हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विष्वविद्यालय,

अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा।

for the paper titled

श्रीरामचरितमानस का भारतीय परंपरा पर सांस्कृतिक प्रभाव

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 127-130

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Rakesh Singh

Associate professor, Department of Economics, HPU

Hemant Sharma

Ph.D. Research Scholar, HPU

for the paper titled

Evaluating the Role of Integral Humanism in the Working Mechanism of DAY-NRLM

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 131-135

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

किशोर कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग,

डी0 एस0 बी0 परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल।

for the paper titled

कुमाऊँ में चंद वंश की प्रशासनिक व्यवस्था (13वीं–18वीं शताब्दी) : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 136-141

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. संदीप ठाकरे, सहायक प्राध्यापक,
योग विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकंटक–484887 मध्यप्रदेश।
डॉ. भारत भूषण सिंह, सहायक प्राध्यापक,
योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय,
पौड़ी गढ़वाल उत्तराखंड।

for the paper titled

आचार्य विनोबा भावे विचार में भक्तियोग का केन्द्रीय रहस्य – एक विवेचन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 142-153

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

वीरू पासवान

शोध अध्येता, इतिहास विभाग,

बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

for the paper titled

राजनीति का मौसम वैज्ञानिक : रामविलास पासवान

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 154-159

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Ritesh Kumar Chaurasia

Assistant Professor,
Dept. of Defence and strategic studies,
Bareilly College, Bareilly (UP)

for the paper titled

Global Partnerships in Transition : Emerging Trends, Strategic Realignments, and the Future of International Cooperation

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 160-167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

यश पाल सिंह, शोधार्थी,
मणिपुर अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय एवं शैक्षणिक अनुसंधान केन्द्र (RERF), शान्तिवन, आबू रोड, राजस्थान।

for the paper titled

नशा मुक्ति केंद्र के मरीजों की मानसिक स्वास्थ्य पर राजयोग मेडिटेशन के द्वारा पढ़ने वाला सकारात्मक प्रभाव

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 168-170

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. शिवलाल मीना

सहायक आचार्य, राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ,
शाहपुराबाग, आमेर रोड, जयपुर, राजस्थान।

for the paper titled

विद्यार्थी जीवन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का प्रभाव एवं परिणाम

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 171-174

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. SWATI DIXIT

Assistant Professors, Rajasthan Shiksha Prashikshan Vidyapeeth Shahpura Bagh, Jaipur.

for the paper titled

Digital Pedagogy and Blended Learning : Transforming Education in the 21st Century

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 175-179

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. रेखा कुमारी त्रिपाठी

अतिथि प्राध्यापिका (हिंदी एवं अनुवाद विभाग)

हिंदी विश्वविद्यालय, हावड़ा।

for the paper titled

काव्यशास्त्रीय आलोचना का स्वरूप

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 180-186

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. कविता शर्मा

सहायक आचार्य,
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ,
शाहपुराबाग, आमेर रोड, जयपुर, राजस्थान।

for the paper titled

सरकारी महाविद्यालयों के प्रति विद्यार्थियों का घटता रूझान : एक शोध–पत्र

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 187-190

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Akanksha Tiwari

Research Scholar, (Session 2021-2022), Department of Social Work, University of Lucknow

Snehlata Jaiswal

Research Scholar, (Session 2021-2022), Department of Social Work, University of Lucknow

Minaxi Sharma

Research Scholar, (Session 2021-2022), Department of Social Work, University of Lucknow

for the paper titled

Parental Stress, Mental Health, and Coping Strategies (A Review Paper)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 191-200

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

मनीषा पाठक, शोधार्थी (हिन्दी)
तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, 452001
डॉ. वंदना चराटे, सह प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी),
भेरूलाल पाटीदार शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू।

for the paper titled

रूप सिंह चंदेल के उपन्यास 'नटसार' में सामाजिक मूल्य-विघटन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 201-208

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. जोगिंदर

सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र,
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, रोहतक।

for the paper titled

हरियाणा में विवाह–विच्छेद का बदलता स्वरूप और कारण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 209-211

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रोहित कुमार सिंह

शोध छात्र, लाल बहादुर शास्त्री डिग्री कॉलेज, गोण्डा,
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।

for the paper titled

अमृतलाल नागर के ग़दर के फूल में 1857 का विद्रोह

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

April 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 212-216

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152